: 302, 'Krishna-Kunj', Plot No.30, Navyug CHS Ltd., V. L. Mehta Marg, Vile Parle(w), Mumbai–400056
Phone No. : (022) 2613 0820. **Website:** www.vitragvani.com **Email:** vitragva@vsnl.com

"Dravya Drashti Jineshwar" has been published by us & the PDF version of the same has been put on our website www.vitragvani.com

We have taken due care, while preparing the same. However, if you find any typographical error, you may kindly inform us on info@Vitragvani.com

By "Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust"
(Shri Shantilal Ratilal Shah-Parivar, Mumbai)

www.vitragvani.com

ॐ

परमात्मने नमः ।

द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर

[पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन, तत्त्वचर्चा तथा विविध प्रसंगों-
पर निकले हुए आत्मानन्दसे भरपूर स्वानुभूतिमार्ग-प्रकाशक वचनामृत]

: संकलनकार :
नागरदास बी. मोदी
उमेदराय बी. मोदी
जितेन्द्र ना. मोदी
[सम्पादक-परिवार, 'आत्मधर्म' गुजराती]

: अनुवादक :
मगनलाल जैन

: प्रकाशक :
शारदाबेन शान्तिलाल शाह-परिवार, बम्बई

प्रथम संस्करण प्रतियाँ : ३०००

कहान संवत-१६ ★ वीर संवत् २५२२ ★ विक्रम संवत् २०५२, ★ ई. सन् १९९६

द्वितीय संस्करण प्रतियाँ : २०००

कहान संवत-१७ ★ वीर संवत् २५२३ ★ विक्रम संवत् २०५३, ★ ई. सन् १९९७

द्रव्यदृष्टिका उपदेश प्रथम क्यों ?

जैसे जेलमें पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धके कारणोंको सुनकर डर जाता है और हताश हो जाता है, परन्तु यदि मुक्तिका उपाय बतलाया जाता है तो उसे आश्वासन मिलता है और वह आशान्वित हो बंधनमुक्तिका प्रयास करता है। उसीप्रकार अनादि कर्मबंधनबद्ध प्राणी प्रथम ही बंधके कारणोंको सुनकर डर न जाये और मोक्षके कारणोंको सुनकर आश्वासनको प्राप्त हो इस उद्देश्यसे मोक्षमार्गका निर्देश सर्वप्रथम किया है।

(—आचार्य अकलंकदेव, 'तत्त्वार्थवार्तिक' भाग-१, पृष्ठ-२६६)

प्रत्येक जीव भगवानस्वरूप है

इस सत्यको प्रकाशित करते हुए असत्यके आग्रहवालोंको दुःख होगा, किन्तु भाई! क्या किया जाये? हमारा उदय ऐसा है कि सत्य बातको प्रगट करना पड़े। इससे विरुद्ध श्रद्धावालोंको दुःख हो तो मुझे क्षमा करना भाई! किसी जीवको दुःख हो उसका अनुमोदन कैसे करें? मिथ्याश्रद्धाके चार गतियोंके दुःख बहुत कठिन हैं, उन दुःखोंका अनुमोदन कैसे हो? अरे! सर्व जीव भगवानस्वरूप हैं और वे पूर्णानन्दरूप परिणमित होकर भगवान होओ! कोई दुःखी न रहो!

—करुणासागर पूज्य गुरुदेव

मूल्य : स्वाध्याय

Type Setting :
Arihant Computer Graphic
SONGADH-364250 (Saurastra)
Mo : 98249 44401

Printed by :
SMURTI OFFSET
SONGADH-364250 (Saurastra)
Phone : (02646) 244081

www.vitragvani.com

अर्पण

जो वर्तमानयुगमें 'क्रमबद्धपर्यायका शंखनाद'कर्ताके रूपमें विख्यात हैं, जो
जैनजगतमें समयसारके प्रखर प्रवक्ता एवं प्रचारकके रूपमें प्रसिद्ध हैं;
जो द्रव्यदृष्टिप्रधान अध्यात्मयुगके सर्जक हैं, जिन्होंने इन शास्त्रोंके
शब्दोंमें सन्निहित आचार्योंके भावोंके स्पष्टीकरणकी अपूर्व
शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर परम उपकार किया है;
हमारे आत्महितचिन्तक पूज्य पिताश्री शांतिभाई
जिनके चरण सेवक होनेको अपना परम
सौभाग्य मानते थे उन उपकारमूर्ति
धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्रीको यह
पुस्तक समर्पित करते हुए
हम जीवनकी धन्यताका
अनुभव करते हैं ।

—नेमिष, केतन एवं परिवार

श्रुतकी लब्धिवंत पूज्य गुरुदेव

शास्त्रोंमें भरे हुए गहन भावोंको खोलनेकी गुरुदेवमें अद्भुत शक्ति थी; उनको श्रुतकी लब्धि थी। व्याख्यानमें आनेवाले गंभीर भावोंको सुनते हुए कई बार ऐसा लगता था मानों—कोई श्रुतका सागर उछल रहा हो! ऐसे गम्भीर भाव कहाँसे निकल रहे हैं? गुरुदेव जैसी वाणी कहीं सुनी नहीं है। उनकी अमृतवाणीकी ध्वनि इतनी मधुर थी कि सुनते ही रहें। आत्माका स्पर्श करके निकलता हुआ उनके जैसा एक वाक्य भी कोई बोल नहीं सकता। अनुभवरससे सराबोर गुरुदेवकी सचोट वाणीकी ललकार कोई अद्भुत थी; —पात्र जीवोंके पुरुषार्थको जागृत करे और मिथ्यात्वका चूरा कर दे ऐसी दैवी वाणी थी। हमारा सौभाग्य है कि गुरुदेवकी वाणी टेपमें उतरकर जीवंत है।

—पूज्य बहिनश्री

www.vitragvani.com

आत्मार्थीकी पात्रता

निश्चयके उपासक जीवकी व्यवहारशुद्धि कैसी होती है उस सम्बन्धमें पूज्य गुरुदेवने एकबार विशेष भारपूर्वक समझाया था—"जो जीव निश्चयकी उपासना करनेको कटिबद्ध हुआ है उसकी परिणतिमें पहलेकी अपेक्षा वैराग्यकी अत्यन्त वृद्धि होती जाती है। उसे दोषोंका भय होता है, अकषायस्वभावको साधनेमें तत्पर हुआ वहाँ उसके कषाय शांत होने लगते हैं। उसकी कोई प्रवृत्ति या आचरण ऐसे नहीं होते कि रागादिका पोषण करें। पहले रागादिकी मन्दता थी उसके बदले अब रागादिकी तीव्रता हो तो वह स्वभावकी साधनाके समीप आया है ऐसा कैसे कहा जाये? अकेला ज्ञान–ज्ञान करता रहे किन्तु ज्ञानके साथ रागकी मन्दता होनी चाहिये, धर्मात्माके प्रति विनय–बहुमान–भक्ति–नम्रता–कोमलता होना चाहिये, अन्य साधर्मियोंके प्रति अंतरमें वात्सल्य होना चाहिये, वैराग्य होना चाहिये, शास्त्राभ्यास आदिका प्रयत्न होना चाहिये....इसप्रकार चारों ओरके सभी पक्षोंसे पात्रता लाना चाहिये; तभी यथार्थ परिणमता है। वास्तवमें, साक्षात् समागमकी बलिहारी है; सत्संगमें तथा संत–धर्मात्माकी छत्रछायामें रहकर उनके पवित्र जीवनको दृष्टि समक्ष ध्येयरूप रखकर, चारों ओरसे सर्वप्रकार उद्यम करके अपनी पात्रताको पुष्ट करना चाहिये।" —सचमुच हमारा सद्भाग्य है कि सर्वपक्षोंसे पात्रता प्रगट करके आत्माकी उपासना किसप्रकार करना वह पूज्य गुरुदेव जैसे संतने साक्षात्रूपसे सदा समझाकर, हमारे जीवनका निर्माण कर गये हैं। गुरुदेवश्रीके असीम उपकारके सम्बन्धमें कुछ भी कहते हुए वाणी अटक जाती है। [उनकी अनुपस्थितिमें उनके भक्तरत्न प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीने गुरुकृपासे प्राप्त उन संस्कारोंको दृढ़ता प्रदान करके हमारे ऊपर महान उपकार किया है।] पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा बतलाये गये मार्गपर चलकर उनके उपकारको अति शीघ्रतासे सार्थक करें यही भावना....

* * *

विचारवानको संगसे व्यतिरिक्तपना परम श्रेयरूप है

- प्रत्यक्ष सत्समागममें भक्ति-वैराग्य आदि दृढ़ साधन सहित मुमुक्षुओंको सद्गुरु-आज्ञासे द्रव्यानुयोग विचारने योग्य है।
- अनन्तबार देहके अर्थ आत्माको लगाया है। जो देह आत्माके अर्थ लगायेगा उस देहसे आत्मविचार जन्म लेने योग्य जानकर, सर्व देहार्थकी कल्पना छोड़कर, एकमात्र आत्मार्थमें ही उसका उपयोग करना, ऐसा निश्चय मुमुक्षु जीवको अवश्य होना चाहिये।
- सत्संगकी अर्थात् सत्पुरुषकी पहिचान होनेपर भी योग निरन्तर न रहता हो तो सत्संगसे प्राप्त हुआ है ऐसा जो उपदेश वह प्रत्यक्ष सत्पुरुष तुल्य जानकर विचारना तथा आराधना, कि जिस आराधनासे जीवको अपूर्व ऐसा सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।
- अचिंत्य जिसका माहात्म्य है ऐसा सत्संगरूपी कल्पवृक्ष प्राप्त होने पर भी जीव दरिद्र रहे ऐसा बने तो इस जगतके लिये ग्यारहवाँ आश्चर्य है।
- जो अनित्य है, जो असार है और जो अशरणरूप है वह इस जीवको प्रीतिका कारण कैसे होता है यह बात दिनरात विचारने योग्य है।
- चक्रवर्तीकी समस्त सम्पदाकी अपेक्षा जिसका एक समयमात्र भी विशेष मूल्यवान है ऐसा यह मनुष्यशरीर और परमार्थके अनुकूल ऐसे योग सम्प्राप्त होनेपर भी यदि जन्म-मरणसे रहित ऐसे परमपदका ध्यान नहीं रहा तो इस मनुष्यत्वको अधिष्ठित ऐसे आत्माको अनन्तबार धिक्कार हो!

—श्रीमद् राजचन्द्र

शुद्धात्माकी चिन्ता करनेवाला भी धन्य है

अहो! मेरे आत्माका क्या होगा? इस जड़ शरीरसे मैं भिन्न हूँ, यह शरीर तो यहाँ रह जायेगा और मैं तो अकेला जाऊँगा; जब शरीर भी मेरे साथ रहनेवाला नहीं है तो फिर स्त्री-पुत्रादि परिवार एवं लक्ष्मी आदिकी तो बात ही क्या है? विकार भी मेरा स्वरूप नहीं है; मेरा आत्मा नित्य शुद्ध चिदानन्द है, सिद्ध भगवान जितना परिपूर्ण सामर्थ्य मुझमें भरा है उसे मैं पहिचानूँ—ऐसा रटन अंतरमें निरन्तर चलता है ऐसे धर्मकी चिन्तावाले भव्यात्माओंकी देव भी सेवा करते हैं। आत्मस्वभावके लक्षवाला जीवन ही आदरणीय है; उसके सिवा अन्य जीवनको आदरणीय नहीं माना गया है। इसलिये भव्यात्माओंको बारम्बार शुद्धात्माकी चिन्तामें तथा उसके स्मरणमें रहना चाहिये—ऐसा श्री आचार्यदेवका उपदेश है। शरीर–पैसा–परिवारादिका जो होना हो वह हो, उन्हें संयोगरूप रहना हो तो रहें या जायें, मेरे आत्मासे तो वे सब भिन्न हैं; मैं नित्यस्थायी चैतन्यबिम्ब हूँ; उसे पहिचानकर उसीमें स्थित रहूँ—यही मेरा कर्तव्य है। ऐसी रुचि एवं अभिलाषा जिसे प्रगट हुई है उसका जीवन धन्य है! करने योग्य हो तो यही है।

—अनन्त उपकारमूर्ति पूज्य गुरुदेव

मैं स्वयं ही वर्तमानमें भगवान हूँ

❁ पूज्य गुरुदेवश्री अपने लिये तो अनन्त तीर्थंकरोंसे अधिक हैं, क्योंकि कार्य होनेमें निमित्त हुए—इसलिये।

दूसरा उन्होंने यह बताया कि भैया! "तुम सिद्ध तो क्या?....सिद्धसे भी अधिक हो; अनन्त सिद्धपर्यायें जहाँसे निकलती रहें ऐसे तुम हो।" —ऐसा उत्कृष्ट वाच्य पूज्य गुरुदेवश्रीने बतलाया!

❁ "हे गुरुदेव! आपकी वाणीका स्पर्श होते ही मानो विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो गई। क्या मैं मुक्त होनेवाला हूँ?—अरे! शास्त्रोंमें जिस मुक्तिकी इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्दमात्रने इतना सरल कर दिया!"

❁ दरिद्रीको चक्रवर्तीपनेकी कल्पना नहीं होती। पामरदशावालेको 'भगवान हूँ...भगवान हूँ'की रट लगाना हे प्रभो! आप जैसे असाधारण निमित्तका ही कार्य है। परिणतिको आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान...भगवानकी गुंजार करते आप; अन्य संग नहीं यही भावना!

❁ निवृत्ति लेकर एकान्तमें आचार्योंके शास्त्र पढ़े तो उनमेंसे बहुत (ऊंडी) बातें निकलती हैं; उनमें (शास्त्रोंमें) बहुत भरा है!! आचार्योंके जो शब्द हैं न...वे आनन्दकी बूँद...बूँद हैं; एक-एक शब्दमें आनन्दकी बूँद...बूँद टपकती है....तो हमें रस आता है।

—पूज्य सोगानीजी

प्रकाशकीय निवेदन

तीर्थंकरोंका जन्म जगतके कल्याण हेतु होता है; वैसे ही अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका जन्म इस निकृष्टकालमें यहाँ जन्मे और भविष्यमें भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्पसंसारी जीवोंको भाग्यशाली बनानेके लिये, उन्हें संसार-समुद्रसे पार उतारनेके लिये हुआ था। पिछले सैकड़ों वर्षोंका जैन-इतिहास कहता है कि भव्य जीवोंको तारनेवाले ऐसे महान संत कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युगको अध्यात्मयुगमें परिवर्तित करके पंचमकालके अन्ततक अक्षुण्ण रहे ऐसे अध्यात्मयुगका सृजन किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगस्रष्टा, अध्यात्मक्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्रीकी पैंतालीस वर्षोंतक प्रवाहित अध्यात्मगंगाका अमृतपान करनेवाले महाभाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओंको तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञानके अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात्‌रूपसे अनुभवमें आ रहे हैं; परन्तु उनके दर्शन–श्रवण या सत्संगका जिन्होंने साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ ऐसे भव्यजीवोंको, उन महापुरुषने जो द्रव्यदृष्टिप्रधान दिव्य देशनाका स्रोत बहाया उसका साक्षात् सदृश लाभ मिले वह इस ''द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर''के प्रकाशनका मुख्य हेतु है।

यह जीव अनन्तबार नववें ग्रैवेयक हो आया, अनंतबार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्तबार समवसरणमें गया फिर भी कोरा रह गया। उसका मुख्य कारण तो यह एक ही है कि इस जीवने द्रव्यदृष्टिप्रधान देशनाको कभी ग्रहण नहीं किया।–ऐसा पूज्य गुरुदेव करुणापूर्वक बारम्बार कहते थे और इसीलिये उन्होंने जीवन पर्यन्त इस द्रव्यदृष्टिप्रधान देशनाका स्रोत प्रवाहित किया। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि—''मानो कोई महान आचार्य उपदेश दे रहे हों तदनुसार दृष्टिके विषयका अपूर्व स्पष्टीकरण होता था।''.....''दृष्टिका विषय आनेपर उल्लसित हो उठते थे।'' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश-गंगामें न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवोंको आत्मलाभ हो ऐसा निश्चय-व्यवहारका समस्त उपदेश प्रवाहित हुआ है। मुमुक्षुकी पात्रता कैसी होती है, संसार-भोगसे कैसी विरक्ति होती है, देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति कैसी होती है, अशुभसे बचनेके लिये शुभमें कैसी संलग्नता होती है—इत्यादि उपदेश देनेपर भी कहीं किसीको मुख्यता न हो जाये इसप्रकार उसमें जोर दिये बिना व्यवहारमार्गप्रकाशनके साथ मुख्यतः तो, द्रव्यदृष्टिमार्गप्रकाशक निश्चयकी ही घनघोर वर्षा की है, ताकि भद्र जीव अनादि-संस्कारवश मन्द

कषायादि व्यवहारमार्गमें न अटककर, निश्चय मोक्षमार्गको यथार्थ समझकर, उसीका ग्रहण करके, यह भव सफल करनेके लिये स्वानुभूतिका सत् पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्रीने अध्यात्मयुगका सृजन किया ही है, किन्तु अधिक स्पष्ट करें तो सचमुच वे द्रव्यदृष्टिप्रधान अध्यात्मयुगके सर्जक हैं; क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टिप्रधान निश्चयके बोधसे लोगोंको निश्चयाभासका भय लगता था। उसके बदले उनके प्रतापसे वे दिन-रात निश्चयका चिन्तन–मनन एवं श्रवण करनेमें ही जीवनकी धन्यताका अनुभव करते हैं। यद्यपि यह पुस्तक विशेषतः पूज्य गुरुदेवश्रीके सान्निध्यमें अधिक रहे अध्यात्मपिपासुओंको मार्गदर्शक हो ऐसे लक्षपूर्वक तैयार की गई है। अल्प परिचित मुमुक्षुओंको इस पुस्तकका मर्म समझनेके लिये विशेष सत्संगकी आवश्यकता होगी, तथापि पूज्य गुरुदेवश्रीके उपलब्ध ८५०० टेप-प्रवचनोंके कारण मर्म समझनेमें कठिनाई नहीं होगी।

हमारे पूज्य पिताश्रीको कि जिन्होंने हमें भौतिकतासे बचाकर अध्यात्मके संस्कारोंका सिंचन करके हम पर असीम उपकार किया है उन्हें पूज्य गुरुदेवश्रीके दृष्टिप्रधान उपदेशका अत्यंत मनन–मंथन एवं पठन–श्रवण रहता था और समस्त भव्यआत्मा भी इस प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञानका लाभ लें ऐसी उनकी भावना रहती थी; उसी भावनाकी स्मृतिरूप यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए हम प्रसन्नताका अनुभव कर रहे हैं।

हमारे पूज्य पिताश्रीके आध्यात्मिक जीवनमें पूज्य गुरुदेवश्रीके अतिरिक्त जिन ज्ञानी सत्पुरुषोंका विशेष उपकार वर्तता था वे ज्ञानी पुरुष श्रीमद् राजचन्द्रजी, पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन तथा पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानीको इस अवसर पर उपकृतभावसे स्मरण करके उन सबको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वंदन करते हैं।

अन्तमें, पूज्य गुरुदेवश्री ९१ वर्षकी उम्रमें भी देश-विदेशमें जिस द्रव्यदृष्टिकी प्ररूपणा करते हुए अंतरसे उल्लसित हो उठते थे उस द्रव्यदृष्टिप्रधान उपदेशको ग्रहण करके हम सब अनन्तकालपर्यंत उनका सान्निध्य प्राप्त करें—ऐसी भावना सहित.....

–प्रकाशक

* * *

दो शब्द

जैनजगतके अध्यात्म-गगनमें तत्त्वज्ञानकी प्ररूपणाका सूर्य अस्त हो गया था; क्रियाकाण्डरूपी अंधकार छा गया था उस काल भव्यजीवोंके महाभाग्यके प्रबल योगवश इस भरतक्षेत्रमें एक कहानसूर्यका उदय हुआ। पूज्य बहिनश्री कहती थीं कि—''सत्पुरुषकी एक क्षणकी संगति भवका अभाव करनेवाली है।''—ऐसे एक सत्पुरुषने भवोदधि-उद्धारकके रूपमें यहाँ जन्म धारण करके जिनके प्रतापसे यहाँ चौथाकाल प्रवर्तता हो तदनुसार ४५-४५ वर्ष तक स्वानुभूतिमूलक द्रव्यदृष्टिप्रधान निश्चयमोक्षमार्गकी दिव्य देशनाकी देश–विदेशमें वर्षा करके वर्तमान लाखों भव्यजीवोंकी अध्यात्म–तृषा शांत की तथा आगामी कालमें पीढ़ी–दर पीढ़ी निश्चयमोक्षमार्ग सदा दृष्टिगोचर बना रहे ऐसी अध्यात्मकी वसीयत जो छोड़ गये हैं ऐसे कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्रीकी छत्रछायामें निवृत्तिपूर्वक स्थायी रहकर उनके उपदेश-उदधिमेंसे अध्यात्मरत्न बीन लेनका जो परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था उसमेंसे, स्वानुभूतिके लिये विशेष पुरुषार्थ कर रहे मुमुक्षुओंको, उनके द्रव्यदृष्टिप्रधान चिन्तन–मनन–मंथनमें विशेष उपयोगी हो ऐसे द्रव्यदृष्टि प्रेरक अध्यात्म रत्नोंके संकलनरूपमें यह 'द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर' पुस्तक तैयार करते हुए उनके उपकारके प्रति उपकृतभाव व्यक्त करनेका योग प्राप्त होनेसे प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है।

पुरुषार्थ–प्रेरणामूर्ति पूज्य गुरुदेवश्रीने साक्षात् सीमंधरस्वामीकी दिव्यध्वनिका वर्षोंतक श्रवण करके तथा सीमंधरस्वामीके समवसरणमें पधारे हुए श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेवके प्रत्यक्ष दर्शन करके यहाँ भरतक्षेत्रमें आकर लगातार ४५ वर्ष तक अध्यात्मकी जो गंगा बहायी उसमें क्रियाकाण्ड तथा व्यवहारमें धर्मकी मान्यताका निषेध करके प्रधानरूपसे तो, प्रमाणके लोभमें भोले जीव निश्चयका पक्ष ग्रहण नहीं कर पाते उस बातको भलीभाँति परखकर, निश्चयाभासके भयसे प्रमाणके लोभमें व्यवहारको ही पकड़ रखनेवाले अनादिके सहज अभ्यासको भव्यजीव त्वरासे खण्डित कर सकें तदर्थ निश्चयके उपदेशका ही स्रोत बहाया है। कोई कहता कि—सभाको देखकर उपदेश दीजिये! तब कहते कि हम तो आत्मा देखकर उपदेश देते हैं। उसका अर्थ यह था कि उनकी दृष्टिमें वे ही आत्मा थे कि जो उनके द्वारा प्ररूपित द्रव्यदृष्टिका निश्चयमोक्षमार्ग अत्यन्त प्रसन्नतासे ग्रहण कर लेते थे।

उनके परमभक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन बार-बार कहतीं कि पूज्य गुरुदेवको श्रुतकी लब्धि है। शास्त्रके गहनभाव खोलनेकी अद्भुत शक्ति है, इत्यादि...वह बात प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करनेवाले सर्व मुमुक्षुओंको अनुभवगम्य है कि शास्त्रके शब्दोंमें ज्ञात न होते हों तथापि, आचार्यदेवके हार्दमें जो भाव भरे हों उन गहन भावोंको चौथी कक्षा तक पढ़ा हुआ भी समझ जाये ऐसी अत्यन्त सरल भाषा द्वारा, भाषा एवं भावोंके समन्वयपूर्ण उनकी देशनाका स्रोत बहता रहता था। जिसप्रकार श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेवने श्री समयसार शास्त्रकी रचना प्रारम्भ करते हुए पहली गाथामें मंगलाचरणके रूपमें 'वंदित्तु सव्व सिद्धे' पाठ लिया है परन्तु उनके एक हजार वर्ष पश्चात् हुए श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने उस पाठमेंसे अद्भुत भाव निकाले हैं; उसीप्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीको भी श्रुतकी लब्धि

होनेसे, शास्त्रोंके शब्दोंमें–पाठमें दृष्टिगोचर न हों ऐसे भावोंको, जैसे कि—क्रमबद्धपर्यायकी स्वीकृतिमें अनन्त पुरुषार्थ, पर्यायके षट्कारकों द्वारा पर्यायका स्वतंत्र परिणमन, उत्पाद–व्ययरहित परमार्थ आत्मा वह दृष्टिका विषय, इत्यादि मूलभूत गूढ़ रहस्य जोकि पाठके शब्दोंमें अपनेको दिखायी न दें परन्तु आचार्यदेवके हार्दमें भरे हों उन सब भावोंको, कहीं भी भाषा एवं भावकी भूलभूलैया उपस्थित न हो इसप्रकार निरंतर ४५ वर्ष तक डंकेकी चोटसे जगतके समक्ष जिसप्रकार उन्होंने प्रकाशित किये हैं वे यदि महाविदेहसे यहाँ न पधारे होते तो मुमुक्षुओंको द्रव्यदृष्टिका मार्ग कौन समझाता? दर्शनसारमें जैसा कहा है कि—''श्री सीमंधरस्वामीसे प्राप्त हुए दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथने (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने) बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते?'' उसीप्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीके सम्बन्धमें मुमुक्षुजीवोंको अनुभव हो रहा है कि—''यदि पूज्य गुरुदेवश्री यहाँ पधारे न होते तो अपनेको स्वानुभूतिप्रेरक द्रव्यदृष्टिका मार्ग कौन बतलाता?''

पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानी कह गये हैं तदनुसार पंचमकालके अन्ततक जीवोंको द्रव्यदृष्टिप्रधान उपदेशका सिंहनाद मिलता रहे ऐसा अद्भुतकार्य पूज्य बहिनश्रीकी प्रेरणा, प्रसन्नता एवं प्रबल अनुमोदनसे दीर्घद्रष्टा स्व. श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल झवेरीकी अध्यक्षताके समयमें श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्टने पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रतिदिन दो बारके प्रवचनोंको टेपमें संग्रहित कर लिया है, वे ८५०० प्रवचन सतत सुरक्षित रहें ऐसी उदात्त भावना जिन्हें वर्तती थी उन स्व. श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह (सायन–मुम्बई)की स्मृति हेतु उनके परिवारने इस दिव्य देशनाको आधुनिक टेक्नालॉजी अनुसार कॉम्पेक्ट डिस्कमें संग्रहित करनेका भव्य आयोजन प्रारम्भ कियाहै। उन ८५०० प्रवचनोंके उपरान्त रात्रिचर्चामें, निवृत्तिकालमें, चलते–फिरते या किसी अन्य प्रसंग पर जब–जब उनकी अध्यात्ममय अस्तिकी मस्तीमें जो सहज ही प्रवाहित हुए हैं वे उद्गार जिज्ञासु भव्यजीवोंको सांसारिक उलझनमें मार्गदर्शन करायें तथा द्रव्यदृष्टिका पुरुषार्थ सहजरूपसे चल पड़े ऐसी भावनासे यह ''द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर'' पुस्तक स्व. श्री शान्तिभाईकी प्रथम पुण्यतिथिके निमित्त प्रकाशित की गई है।

कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्रीके साक्षात् समागममें आये हुए मुमुक्षुओंको दृष्टिके विषयका पुरुषार्थ उग्र बना रहे तथा उनके उपदेशकी प्रधानशैली दृष्टिके विषयको हस्तामलकवत् स्पष्ट प्रकाशित करनेवाली थी उसका ख्याल भावी पीढ़ीको आ सके तथा सर्व मुमुक्षु उस द्रव्यदृष्टिके मार्गको प्राप्त करके आत्मकल्याण साध सकें ऐसी भावनासे तैयार किये गये इस संकलनमें जो भी त्रुटियाँ रह गई हों वह मात्र हमारा ही दोष गिनकर, सुधारकर, गुरुदेवश्रीके प्रथम बोलको–मंगल आशीषको–सब सार्थक करें ऐसी भावना सहित...

–संकलनकार

सर्व आत्माओंको शान्ति....शान्ति....शान्ति....होओ!

किसी जीवको दुःख हो ऐसा नहीं होता, सर्व जीव परमानन्दस्वरूप हैं। ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मा हैं। उनके स्वभावमें दुःख कहाँ है? भाई! विपरीत श्रद्धा करनेसे तुझे पर्यायमें दुःख होगा। सत्यकी प्ररूपणा करते हुए तुझे वह न रुचे और दुःख हो वह हम नहीं चाहते। क्षमा करना भाई! अहाहा! मार्ग ऐसा है। कोई भी जीव, एकेन्द्रियसे लेकर उसी भवमें सिद्ध होनेवाले सभी जीव, परमानन्दस्वरूप आत्मा हैं फिर किसका अनादर हो! अपनेको दुःख हो तो वह अच्छा नहीं लगता, वैसे ही दूसरोंको दुःख हो वह हम क्यों चाहेंगे? विपरीत श्रद्धा–प्ररूपणा करके दुःखी हो उसका कैसे अनुमोदन करें? भगवान द्वारा कही गई साधुपनेकी सत्य प्ररूपणा होनेपर, अट्ठाईस मूलगुण स्वच्छ न हों उसे साधु नहीं कहा जाता, द्रव्यलिंगी भी नहीं कहा जा सकता—ऐसी सत्य प्ररूपणासे किसीको दुःख लगे ऐसा नहीं होना चाहिये! भाई! घासका एक तिनका भी चुभ जाये तब भी दुःख होता है, तो मिथ्याश्रद्धाका तुझे कितना दुःख होगा! उसका अनुमोदन कैसे हो? सर्व आत्माओंको शान्ति....शान्ति....शान्ति....होओ! हमें तो किसीका विरोध नहीं है; कोई हमारा विरोध नहीं करता। सर्व आत्मा द्रव्यस्वभावसे तो साधर्मी हैं। विरोधी भाव अपनेको हानिकारक है दूसरोंको नहीं, और अविरोधी भाव भी अपनेको लाभकारी है दूसरोंको नहीं। अहाहा! आत्मा तो सर्वसे उदास....उदास है!

—करुणामूर्ति पूज्य गुरुदेव

* श्री सद्गुरुदेव-स्तुति *

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना अे नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरुकहान तुं नाविक मळ्यो.

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना!
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां.

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदघन विषे कांई न मळे.

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयुं 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
—रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां–अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा.

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं.

(स्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं,—मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

ॐ

परमात्मने नमः।

द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर

सर्व जीव साधर्मी हैं। सर्व जीव पूर्णानन्दको प्राप्त होओ! कोई जीव अपूर्ण न हो, कोई जीव अल्पज्ञ न रहो, कोई जीव विरोधी न रहो, कोई जीव विपरीत दृष्टिवंत न रहो। सर्व जीव सत्यके मार्गमें आ जाओ और सुखी होओ! किसी जीवमें विषमता न रहो, सर्व जीव पूर्णानन्दरूप प्रभु हो जाओ! श्री समयसार गाथा ३८के कलशमें अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि सर्व जीव आत्मामें मग्न होओ। अहाहाहा! देखो, ज्ञानीकी भावना! स्वयं पूर्णानन्द स्वरूप आत्मामें मग्न होते हैं इसलिये समस्त जीव भी पूर्णानन्द स्वरूपमें मग्न होकर सुखानुभव करो ऐसा कहते हैं।

–पूज्य गुरुदेवश्रीके मंगल आशीर्वचन

❀ प्रभु! तेरे द्रव्यके बड़प्पनकी तो क्या बात करें! किन्तु अनंत सिद्धोंको तूने अपनी पर्यायमें स्थापित किया इसलिये अब तुझे रागका आदर तो रहेगा नहीं, अब तू अल्पज्ञरूपमें भी नहीं रह सकेगा, अब तो तू सर्वज्ञ स्वभावमें ही जायगा और सर्वज्ञ होगा–ऐसा तू निस्संदेह जान। हम यह बात कहते हैं वहाँ तू भव्य-अभव्यका तो प्रश्न ही नहीं रखना; किन्तु सिद्ध होनेमें अनंतकाल लगेगा यह भी नहीं रखना; जैसे सम्यग्दर्शनके पश्चात् सिद्ध होनेमें असंख्य समयकी ही आवश्यकता होती है, अनन्त समयकी नहीं; वैसे ही यहाँ तुझमें सिद्धोंको स्थापित करते हैं तब प्रभु! विश्वास रखना। प्रभु! अंतरमें विश्वास करना कि हम आत्माकी ऐसी बात सुनने योग्य हुए और प्रभुने हमारी योग्यता देखकर हममें अनंत सिद्धोंकी स्थापना की है। प्रभुने श्रोताओंको सामूहिक निमंत्रण दिया है कि तुम सब श्रोताजन सिद्ध होने योग्य हो! इसलिये तुममें हम सिद्धत्व की स्थापना करके यह बात प्रारंभ करते हैं अर्थात् तुम्हें भी तब तक सुननेकी तैयारी रखना पड़ेगी। १.

www.vitragvani.com

❁ पंचम कालके मुनि पंचमकालके अप्रतिबुद्ध श्रोताओंको सम्बोधते हैं कि नित्यनिगोदके जीवमें भी अंतरमें स्वभावरूप परिणमित होनेकी शक्ति है, भले ही निगोद दशामें परिणमित नहीं हो सके किन्तु निगोदको अनादि-सांत करके, मनुष्य होकर, पंचम पारिणामिकभावका अनुभव करके सिद्धका सादि-अनंत भाव प्रगट कर सकता है, तो हे जिज्ञासु! तू तो निगोदसे बाहर निकल चुका है, मनुष्यपना प्राप्त करके पंचम परमभावको बतलानेवाली जिनवाणी श्रवण करने आया है, श्रवण कर रहा है तो तू परिणमित होने योग्य ही है इसलिये सन्देह मत कर, निस्सन्देह हो। हम तुझसे कहते हैं कि तू स्वभावरूप परिणमित होने योग्य है, तो फिर तू निःशंक क्यों नहीं होता? हम तो भगवानका अनुसरण करके तुझसे यह कह रहे हैं इसलिये तू निःशंक हो, विश्वास कर, पंचमकाल या अल्प पुण्य या कमीको लक्षमें न ले, तू पूर्ण परमात्मतत्त्व है और तद्रूप परिणमनके योग्य है। जैसे अभव्य परिणमित होने योग्य नहीं है वैसे ही नित्यनिगोदके जीव परिणमित नहीं हो सकते ऐसा नहीं है। फिर जब तू जिज्ञासापूर्वक सुनने आया है इसलिये तू परिणमन कर सके ऐसा है–ऐसे निःशंक हो, भले कोई रागादि हों किन्तु वे तुझे बाधक नहीं हैं, वे तो ज्ञानके ज्ञेयरूप विषय हैं। इसलिये हीनता और न्यूनताका आश्रय छोड़ और मैं स्वभावरूप परिणमित होने योग्य ही हूँ–इस प्रकार निःशंक हो! २.

❁ धर्मधुरंधर योगीन्द्रदेव पुकारते हैं कि–अरे आत्मा! तू परमात्मा समान है तथापि तू जिनमें और अपनेमें क्यों अंतर करता है? अंतर करेगा तो फिर वह अंतर कब छूटेगा? इसलिये कहते हैं कि मैं तो राग सहित अल्पज्ञता युक्त हूँ ऐसा मनन मत करो, किन्तु जो जिनेन्द्र हैं सो ही हम हैं ऐसा चिन्तन करो! अरेरे! मैं अल्पज्ञ हूँ, मुझमें क्या ऐसी शक्ति हो सकती है?–यह बात रहने दो भाई! मैं पूर्ण परमात्मा होने योग्य हूँ–ऐसा नहीं, किन्तु वर्तमानमें पूर्ण परमात्मा हूँ–ऐसा मनन करो! आहाहा!! ३.

❁ अहा! महाविदेहमें प्रभु समवसरणमें विराजते हैं। सौ–सौ इन्द्र, चक्रवर्ती आदि तथा जंगलके सैकड़ों केसरी सिंह और वाघोंके झुण्ड भगवानकी वाणी सुनने आते हैं। अहा! परमात्माकी वह वाणी कैसी होगी! सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि–इस जगतमें जिसे परमात्मा कहते हैं वह कौन है?–कि तू स्वयं ही परमात्मा है। पर्यायमें जो प्रगट परमात्मा हुए वह पद आया कहाँसे? स्वयं शक्ति-अपेक्षासे परमात्मस्वरूप है उसमेंसे वह परमात्मपर्याय प्रगट हुई है। अहा! जीवने स्वयंको शक्तिहीन स्वीकार किया है कि–दयादिका पालन करनेवाला मैं हूं; किन्तु प्रभु! तू रागकी क्रिया करनेवाला है? ज्ञायकको रागका कर्तृत्व सौंपना वह तो अज्ञान

www.vitragvani.com

और मिथ्याभ्रम है। ''सर्वोत्कृष्ट जो परमात्मा कहा जाता वह तू स्वयं है''–ऐसी जिनेश्वरदेवकी पुकार दिव्यध्वनि द्वारा गणधरों एवं इन्द्रोंके समक्ष आयी है। ४.

❁ श्रेणीबद्ध पर्याय है इसलिये तू ज्ञाता ही है। ज्ञाता....पूर्ण ज्ञाता....फिर विकार या अपूर्णता क्या! एकरूप परिपूर्ण ही है.....परिपूर्ण परमात्मा ही है। ५.

❁ आहाहा! आत्मा अर्थात् स्वयं ही परमेश्वर! अनंत-अनंत केवलज्ञान एवं सिद्ध पर्यायें आत्मामें भरी हैं। स्वयं ही परमेश्वर है। दूसरे परमेश्वर कौन थे!.....स्वयं ही अपना परमेश्वर है। ६.

❁ दे पछाड़ पहलेसे! तू पामर है या प्रभु है? तुझे क्या स्वीकारना है? पामरताकी स्वीकृतिसे पामरता कभी जायगी नहीं! प्रभुताका स्वीकार करनेसे पामरता कभी खड़ी नहीं रह सकती। भगवान आत्मा–मैं स्वयं–द्रव्यसे परमेश्वर स्वरूप ही हूं, इस प्रकार जहाँ परमेश्वर स्वरूपका विश्वास आया वहाँ तू वीतराग हुए बिना नहीं रहेगा ही नहीं। ७.

❁ आत्माकी पूर्ण वीतरागदशाको प्राप्त हुए जो परमात्मा हैं वह मैं ही हूं, क्योंकि मैं स्वयं ही परमात्मा होने योग्य हूं। आचार्य योगीन्द्रदेव कहते हैं कि–यदि तेरा मुक्तिका प्रयोजन हो तो पहले ऐसा निर्णय कर!...निश्चय कर कि ''मैं ही परमात्मा हूं।'' ८.

❁ अहो! मैं ही तीर्थंकर हूं, मैं ही जिनवर हूं, मुझमें ही जिनेश्वर होनेके बीज पड़े हैं; परमात्माका इतना उल्लास.....कि मानो परमात्मासे मिलने जा रहा हो। परमात्मा बुलाते हों कि–आओ!.....आओ!.....चैतन्यधाममें आओ! अहाहा! चैतन्यका इतना आह्लाद और प्रह्लाद होता है, चैतन्यमें अकेला आह्लाद ही भरा है, उसकी महिमा, माहात्म्य, उल्लास, उमंग असंख्य प्रदेशोंसे आना चाहिये। ९.

❁ अरे जीव! दूसरा सब भूल जा और अपनी निजशक्तिको संभाल! पर्यायमें संसार है, विकार है वह भूल जा और निजशक्तिके सन्मुख देख तो उसमें संसार है ही नहीं। चैतन्यशक्तिमें संसार था ही नहीं, है ही नहीं और होगा भी नहीं। लो, यह मोक्ष! ऐसे स्वभावकी दृष्टि करे तो आत्मा मुक्त ही है। इसलिये एक बार अन्य सब लक्षमेंसे छोड़ दे और ऐसे चिदानन्द स्वभावमें लक्षको एकाग्र कर तो तुझे मोक्षकी शंका नहीं रहेगी, अल्पकालमें अवश्य मुक्ति प्राप्त करेगा। १०.

❁ ध्रुवके ध्येयकी धुन सो धर्म। निहालभाईको ध्रुवका ही रटन था; उन्होंने मुख्यतः पर्यायकी एकदम गौणता करके सब बात कही है। बात झूठी नहीं सच्ची है। ''ववहारो

www.vitragvani.com

अभूयत्थो'' जो समयसारमें कहा है वही बात है। पर्यायमात्रको उन्होंने अभूतार्थमें ले लिया है; क्योंकि ध्रुवमें पर्याय नहीं है ना! इसलिये भिन्न है.....भिन्न है–ऐसा कहा है। खास तो गौणता करायी है। ११.

(कार्तिक शुक्ला १, संवत् २०२४ के मंगल सुप्रभातकी भेट)

❁ मैं सिद्ध समान ही हूं, तथा अरिहंत समान ही हूँ–ऐसे विश्वासमें शुद्ध अस्तित्वका जोर है। जैसे अरिहंत–सिद्ध हैं वैसा ही मैं हूँ इस प्रकार दोकी समानतामें शुद्ध-अस्तित्वके विश्वासका बल है। १२.

❁ मैं ज्ञायक हूँ....ज्ञायक हूँ....ज्ञायक हूँ–ऐसा रटन अंतरमें रखना, ज्ञायकके सन्मुख ढलना, ज्ञायकके सन्मुख एकाग्रता करना। अहाहा! उस पर्यायको ज्ञायकोन्मुख करना अति कठिन है, उसके लिये अनंत पुरुषार्थकी आवश्यकता है। ज्ञायकतलमें पर्याय पहुँच गई....अहाहा! उसकी तो क्या बात है। ऐसा पूर्णानन्द प्रभु! उसकी प्रतीतिमें, उसके विश्वासमें–भरोसेमें–आना चाहिये कि अहा! एक समयकी पर्यायके पीछे इतना बड़ा भगवान वह मैं ही हूँ। १३.

❁ वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकीनाथ परमात्मा समवसरणमें सौ इन्द्रोंकी उपस्थितिमें लाखों–करोड़ों देवोंके सामने पुकारते थे कि ''तू परमात्मा है ऐसा निर्णय कर! परमात्मा है ऐसा दृढ निश्चय कर! ओहोहो!! भगवान! किन्तु पहले आप परमात्मा हैं इतना तो निर्णय करने दो!–फिर वह परमात्मा हम हैं ऐसा निर्णय कब होगा?–तो कहते हैं कि–तू स्वयं परमात्मा है ऐसा अनुभव होगा पश्चात् यह परमात्मा हैं ऐसा व्यवहार निर्णय तुझे होगा। निश्चयके निर्णय बिना व्यवहारका निर्णय नहीं होगा। १४.

❁ सिद्ध भगवानमें जैसी सर्वज्ञता, जैसी प्रभुता, जैसा अतीन्द्रिय आनन्द तथा जैसा आत्मवीर्य है वैसी ही सर्वज्ञता, प्रभुता, आनन्द और वीर्यकी शक्ति तेरे आत्मामें भी भरी ही है। भाई! एक बार हर्षित तो हो कि अहो! मेरा आत्मा ऐसा परमात्मस्वरूप है, ज्ञानानन्दकी शक्तिसे भरा है, मेरे आत्माकी शक्तिका घात नहीं हुआ है। अरेरे! मैं हीन हो गया, विकारी हो गया.....अब मेरा क्या होगा!–ऐसे डर मत, उलझनमें न पड़, हताश न हो....एक बार स्वभावकी महिमा लाकर अपनी शक्तिको स्फुरित कर! १५.

❁ जैसा सिद्धालय है वैसे ही देहालय है। देहदेवालयमें अखण्ड आनन्दरसकी पोर पूर्णानन्दसे भरपूर भगवान विराजमान है। सिद्धदशा तो एक समयकी पर्याय है और सिद्धस्वभाव ऐसी अनंत पर्यायोंका पिण्ड है। उस देहदेवालयमें स्थित सिद्धस्वभावका ध्यान करने योग्य है।

www.vitragvani.com

वंदन-स्तुति करने योग्य जो गणधरादि देव हैं वे भी जिसका वंदन–स्तवनादि करते हैं ऐसे शुद्धात्माका हे प्रभाकर भट्ट! तू ध्यान कर; सिद्ध परमात्मा और देहमें स्थित अपने आत्मामें भेद न कर। १६.

❁ श्रोता :—यह आत्मा भगवानकी जातिका ही है?

पूज्य गुरुदेव :—यह भगवान ही है, भगवानकी जातिका क्या? भगवान ही है।

श्रोता :—साहब! आपने तो भगवान ही बना दिया!

पूज्य गुरुदेव :—बनाया नहीं है, वह भगवान ही है। भगवान है ऐसा बतलाया है। १७.

❁ भाई! तू विश्वास ला!–कि मेरे स्वभावके आनन्दके समक्ष सारी प्रतिकूलता और सारी दुनिया विस्मृत हो जाय ऐसी अद्भुत वस्तु मैं हूँ। मैं वर्तमानमें परमात्मा ही हूँ, मुझमें और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं है–ऐसा विश्वास आने पर अन्तर छूट जायगा और पर्यायमें परमात्मा प्रगट हो जायगा। १८.

❁ बंध-मोक्षके परिणामसे शून्य और उसके कारणसे भी शून्य ऐसी त्रैकालिक वस्तु सो मैं हूँ। ऐसी स्वीकृतिका आना वही पुरुषार्थ है। पूर्णानन्दका नाथ, राग और विकार रहित, मोक्षमार्ग और मोक्षकी पर्याय रहित, एक अखण्ड ज्ञायकरसका पिण्ड त्रैकालिक वस्तु वही मैं हूँ–इसप्रकार स्व-वस्तुकी महिमापूर्वक उसकी स्वीकृति आना ही सम्यक्-पुरुषार्थ है, सम्यग्दर्शन है। १९.

❁ सिद्ध है वे ज्ञाता-दृष्टा हैं उसीप्रकार तू भी जानने-देखनेवाला ही है। अधूरे-पूरेका प्रश्न ही नहीं है। ज्ञाता-दृष्टासे किंचित् भी हटा तो कर्तृत्वमें गया अर्थात् सिद्धसे पृथक् हो गया। एक क्षण भी सिद्धसे पृथक् हो वह मिथ्यादृष्टि है यह यथार्थ बात है। २०.

❁ पहलेसे ही संस्कार डालना चाहिये कि मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, परमात्मा हूँ। २१.

❁ अरे आत्माओ! तुम साधारण हो ऐसा न मानो! जिन्हें पूर्णदशा प्रगट हो गई है ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि–अरे जीवो! तुम हमारी जात–पाँतके पूर्ण प्रभु हो, तुम अपनेको उतरता या हीन मत समझो। अंतरमें पूर्ण प्रभु हो ऐसा मानो! २२.

❁ विकारीपना तो आत्मामें नहीं है किन्तु अल्पज्ञता भी वास्तवमें नहीं है। पहली चोटमें सिद्धत्व स्थापित करेगा उसीको सम्यग्दर्शन होता है। २३.

www.vitragvani.com

❁ भगवान आत्मा पूर्णानन्दका नाथ महा परमात्माके अंतरस्वरूपसे भरपूर ऐसा परमात्मा ही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही परमात्मा है। मैं सो परमात्मा और परमात्मा सो मैं–अहाहा! यह स्वीकृति कैसे पुरुषार्थमें आती है! २४.

❁ सिद्धनगरमें अनंत सिद्ध विराजते हैं। उन्होंने प्रथम बाह्यसे दृष्टि हटा कर अन्तरका विस्तार किया था। तू भी बाहरसे समेट ले। मैं तो पूर्ण अभेद परमात्मा ही हूँ, मुझमें और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं है–इसप्रकार अंतर निकाल देनेवालेका अंतर मिट जायगा। अहाहा! दिगम्बर संतोंकी कथनशैली अलौकिक है! २५.

❁ छहों द्रव्य ज्ञेय हैं, उनका स्वभाव ऐसा है कि जिस काल जो हो वह उसका जन्मक्षण है। छहों द्रव्य ज्ञेय हैं, उनकी पर्याय उनके स्वकालमें–जन्मक्षणमें जो होती है उसे करना कहाँ है? उसे जानता है; उसे जानता है वह मैं हूं, किन्तु उसे करता हूँ वह करना भी कहाँ है? करना वह वस्तुमें ही नहीं है, होता है उसे करता हूँ वह क्या? त्रैकालिक द्रव्यका आश्रय किया वह बस! उसमें सब आ गया, द्रव्यकी दृष्टि हुई इसलिये सब हो गया। ऐसे वस्तुस्वभाव पर दृष्टि न गई तो जीवनमें किया क्या? कुछ नहीं किया। २६.

❁ बाल-युवा-वृद्ध सब वास्तवमें तो ज्ञाताको ही जानते हैं, किन्तु उन्हें जाननेवाले—ज्ञाता—का जोर दिखाई नहीं देता, इसलिये वह राग है, पुस्तक है, वाणी है तो ज्ञान होता है, इस प्रकार उनका जोर परमें जाता है। उनकी श्रद्धामें अपने सामर्थ्यका विश्वास ही नहीं आता; इसलिये जाननेवाले—ज्ञाता—को ही जानता है यह नहीं बैठता। २७.

❁ जिसने सर्वज्ञको अपनी पर्यायमें स्थापित किया उसे अब कुछ करना रहा ही नहीं। जैसे सर्वज्ञ ज्ञाता हैं वैसे ही उनको अपनेमें स्थापित करनेवाला भी जो होता है उसका मात्र ज्ञाता ही है। फेरफार करनेकी बात ही नहीं है। द्रव्य सर्वज्ञस्वभावी है, उन सर्वज्ञको जिसने अपनी पर्यायमें स्थापित किया उसे सर्वज्ञ होनेका निर्णय आ गया। बस वह 'ज्ञ' स्वभावमें विशेष स्थिरता करते-करते पर्यायमें सर्वज्ञ हो जायगा। अन्य कुछ करना रहा ही नहीं। २८.

❁ आज आकिंचन्य धर्मका दिन है ना! शरीर खान–पान, रागादि तो मेरे नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय पर्याय भी मेरी नहीं, ध्रुवस्वरूप ही मेरा है। निश्चयमोक्षमार्ग पर्याय-अंश होनेसे–व्यवहार होनेसे परद्रव्य है, परभाव है, हेय है। कैसी गजब बात है!.....बड़ी गजब बात है!! भाई! तेरी लीला कैसी है यह तुझे भी खबर नहीं है! २९.

www.vitragvani.com

❁ शरीर, राग तो आत्मा नहीं है किन्तु एक समयकी शुद्ध पर्याय–क्षायिक पर्याय भी आत्मा नहीं है। वास्तवमें तो त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव परमपारिणामिक भाव ही आत्मा है। संवर–निर्जरा–मोक्ष पर्याय भी आत्मा नहीं है, उपादेय नहीं है, उपादेय तो कारणपरमात्मा ही है। ३०.

❁ अहो! इस मनुष्यभवमें ऐसे परमात्मस्वरूपका सेवन, उसका आदर करना वह जीवनका कोई धन्य क्षण है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञायक ही है ऐसा भास हो, चाहे जैसे प्रसंगमें भी मैं ज्ञायक हूँ....ज्ञायक हूँ–ऐसा भासित हो, ज्ञायकका लक्ष रहे तो उस ओर ढलता ही रहे। ३१.

❁ शास्त्रमें तो अकेले तत्त्वके सिद्धांत ही भरे हैं। भ्रान्ति छोड़कर निर्भ्रान्तिरूपसे ऐसी भावना कर कि–"जो जिनेन्द्र हैं वही मैं हूँ।" अल्पज्ञ और राग-द्वेष अवस्थामें होनेपर भी मैं पूर्ण अखण्ड वीतराग हूँ, भगवान हूँ–ऐसी निर्भ्रांत श्रद्धा करनेमें अति उग्र पुरुषार्थ होना चाहिये। कितना जोर हो तब ऐसा निर्णय हो सकता है! ३२.

❁ भाई! तूने पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें और निर्धन परिवारमें जन्म लिया है इसलिये हमारी आजीविका आदिका क्या होगा? ऐसा विचार न कर! तू वर्तमानमें और जब देख तब सिद्ध समान ही है, जिस क्षेत्रमें और जिस कालमें जब देख तब तू सिद्ध समान ही है। क्या मुनिराजको खबर नहीं होगी कि सब जीव संसारी हैं? भाई, संसारी और सिद्ध तो पर्यायकी अपेक्षासे हैं, स्वभावतः तो यह संसारी जीव भी सिद्ध समान शुद्ध ही हैं। ३३.

❁ इस ओर परमेश्वर पद पड़ा है उसका अज्ञानीको कुछ भी माहात्म्य नहीं है, उसका कोई मूल्य दिखायी नहीं देता, और दूसरी ओर एक विकल्प उठता है वहाँ ओहोहो! हो जाता है। विकल्पमें अपना अस्तित्व एवं माहात्म्य भासित होता है वही मिथ्यात्व है। ३४.

प्रभु मेरे तू सब बाते पूरा,
परकी आशा कहां करे प्रीतम! तू किस बात अधूरा!

अहाहा! प्रभु तू पूर्ण है, तेरे प्रभुत्व आदि समस्त गुण पूर्ण हैं। तेरी शक्तिकी क्या बात करे? तू किसी भी गुणमें अधूरा नहीं है, परिपूर्ण है। तुझे किसका आधार चाहिये? अहाहा! ऐसी धून लगना चाहिए। प्रथम तो ऐसे स्वभावका विश्वास आना चाहिये; पश्चात् दृष्टि और अनुभव होता है। ३५.

www.vitragvani.com

❁ आचार्यदेव कहते हैं कि हम अपनी पर्यायमें अनंत सिद्धोंकी स्थापना करते हैं और जिज्ञासुसे कहते हैं कि प्रभु! तू श्रोता रूपमें हमारे पास श्रवण करने आया है इसलिये तेरी योग्यता देखकर तेरी पर्यायमें भी अनंत सिद्धोंको स्थापित करते हैं। अनंत सिद्धोंको स्थापित कर सके ऐसी तेरी पर्यायकी योग्यता देख रहे हैं। जैसे हम सिद्धत्व प्राप्त करेंगे वैसे ही इन श्रोताओंका समूह भी सिद्धत्वको प्राप्त होगा। तेरी पर्यायमें अनंत सिद्धोंकी स्थापना की है इसलिये तेरा लक्ष अल्पज्ञ पर्याय पर नहीं रह सकेगा। स्वभावमें सर्वज्ञको स्थापित किया है इसलिये अवश्य तू सर्वज्ञ होगा। ३६.

❁ जिसे दुःखका नाश करना है उसे प्रथम क्या करना?–तो कहते हैं कि परकी ओरके विकल्प छोड़कर, रागका प्रेम तोड़कर, मतिको अंतर्मुख करना। बारम्बार बुद्धिपूर्वक स्वोन्मुख होना। पूर्ण ज्ञानानन्द भगवान आत्मामें पुनः पुनः मति–श्रुतिको लगाना; उससे भ्रान्तिका नाश होगा, भ्रान्तिगत अज्ञान दशाका नाश होगा, मिथ्यात्वका नाश होगा–जो कि दुःखका मूल है। ३७.

❁ त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेवके समक्ष भी हितकी कामना करना वह भ्रम है। अन्य देवी–देवताकी तो बात ही क्या? किन्तु सर्वज्ञदेवकी श्रद्धा भी शुभभाव है। अहाहा! गजबकी बात है! त्रिलोकीनाथकी भक्ति भी भवका कारण है? ३८.

❁ 'परमात्मप्रकाश'की ६८वीं गाथा तो मक्खन है, उसमें अमृत भरा है, आनन्दके बाजे बजाये हैं। जीवकी गजब व्याख्या की है। जिनेश्वरदेवने जीवकी व्याख्या की है कि– उत्पाद-व्यय रहित, बंध-मोक्षकी पर्याय एवं बंध-मोक्षके कारण रहित वह जीव है। शुद्ध निश्चययसे भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुव है, वह जन्मता नहीं है। अर्थात् उत्पादकी पर्यायमें नहीं आता, मरता नहीं है अर्थात् व्ययमें नहीं आता। एकेन्द्रियकी पर्याय हो या सिद्धकी पर्याय हो, ध्रुव भगवान तो सदा त्रैकालिक ज्ञानानन्दकी मूर्तिस्वरूप ही रहा है। ३९.

❁ अहा! त्रैकालिक सहज ज्ञान एवं आनन्दादिस्वरूप अपने अस्तित्वकी स्थिति, भगवान आत्माका अस्तित्व, कहाँ–किस प्रसंगमें नहीं है? जो-जो प्रसंग आयें वहाँ अपने अस्तित्वका स्मरण करे, विचारे और उसमें रहे, तो उसे अंतरसे शांति मिले। शुभ भावका प्रसंग हो इतना ही नहीं किन्तु अशुभ भावका प्रसंग आये तब भी, उससे भिन्न रहकर 'मैं तो ज्ञाता हूँ' यह बात अंतरसे हटना नहीं चाहिये; तभी उसे शान्ति मिलेगी। परका कुछ कर दूँ तो मुझे शान्ति प्राप्त हो, परकी कोई सुविधा मिले तो मुझे ठीक रहे–ऐसा अभिप्राय होगा तब तक तो अशान्ति और दुःख ही रहेगा। ४०.

www.vitragvani.com

❁ आचार्य भगवान कहते हैं कि–तू सिद्ध है, अपनेमें तू अपनेको सिद्धरूपसे स्थापित करके सुनना। सिद्धसे कमकी याचना हमारे पास नहीं करना। ४१.

❁ एकबार प्रसन्न चित्तसे चैतन्यस्वभावको लक्षगत किया फिर वह निर्वाणका ही पात्र है। निश्चयका पक्ष लिया उस पुरुषको भले ही अभी अनुभव नहीं है तथापि उसका जोर चैतन्यस्वभावकी ओर है। यही स्वभाव है...यही स्वभाव है...इस प्रकार स्वभाव सन्मुख ही जोर होनेसे अनुभव अवश्य ही केवलज्ञान प्राप्त करेगा। ४२.

❁ काल आने पर वर्षा होती है, वृक्ष अंकुरित होते हैं, चन्द्र खिलता है, पशु-पक्षी घर लौटते हैं, स्वातिनक्षत्रके कालमें सीपमें पानीकी बूँद जाने पर मोती बन जाती है, उसी प्रकार उत्तम देव–गुरुके महान योगकालमें तू आया और पूज्य पदार्थ अनुभवमें न आये वह तो अजब तमाशा है! ४३.

❁ जिसे धर्म करना हो, जिसे सम्यग्दर्शन लेना हो उसे पाँच इन्द्रियोंके विषयोंकी अभिलाषा तथा धन कमानेकी अभिलाषारूपी पापभाव तथा दया-दान-व्रतरूप पुण्यभावको एक बार दृष्टिमेंसे छोड़ना होगा। राग होने पर भी उसकी ममता छोड़! वे मेरे लिये अकिंचन हैं–मेरे लिये किंचित् मात्र नहीं हैं, मैं तो पूर्णानन्दका नाथ हूँ; रागका अंशमात्र मेरा नहीं है–इस प्रकार दृष्टिमेंसे धर्म-अर्थ-काम रूपी भावकी ममता छोड़ दे और ज्ञानस्वरूपी भगवानको ज्ञान परिणतिसे जान! इसके विना तीनकालमें भी आत्मा जाननेमें नहीं आयेगा। ४४.

❁ अहा! सहज ज्ञायक निजतत्त्वको समझनेका निर्णय और अनुभव करनेका अवसर मनुष्य भवमें प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार चिन्तामणिकी प्राप्ति दुर्लभ है उसी प्रकार निगोदसे निकलकर त्रस पर्यायकी प्राप्ति भी अति दुर्लभ है। एक शरीरमें अनंत जीव, उनके ज्ञानका विकास अक्षरके अनन्तवें भाग, उनके दुःखोंका वेदन वे स्वयं करते हैं और केवली जानते हैं। एक श्वासप्रमाण कालमें अठारह बार जन्म–मरण करते हैं–इस प्रकार जीव अनंतानंत काल तक निगोदके भवमें जन्म-मरणके दुःख भोगते हैं। वहाँसे कोई जीव बाहर निकलकर चिन्तामणी तुल्य दुर्लभ त्रसपर्याय पाता है। भाई! मनुष्यभव प्राप्त हुआ उसका मूल्य तेरी समझमें नहीं आता! मनुष्य भव विषय-भोग, व्यापार-धंधा और पापके लिये नहीं है। ४५.

❁ भाई! व्यवहारनयके कथन सब ऐसे हैं कि उनमें तू फँस नहीं जाना, नहीं तो अनन्तकालमें प्राप्त हुआ यह अवसर व्यर्थ चला जायगा! ४६.

www.vitragvani.com

❁ इस अनादिकालीन अविवेकके नाटकमें अर्थात् चैतन्यप्रभु आत्मा एवं रागकी एकताके नाटकमें पुद्गल ही नाचता है, ज्ञायक प्रभु तो ज्ञायकरूप ही रहा है। वर्णादिमें पुद्गल नाचता है, रागमें पुद्गल ही नाचता है, अभेद ज्ञानमें पुद्गल ही अनेक प्रकारका दिखाई देता है। जीव तो अभेद एकाकार है। इसलिये वर्णादि– रागादि पुद्गल ही हैं। ४७.

❁ मकान मन्दिरादि पुद्गल द्रव्यका विस्तार प्रगट करते हैं, पिल्ला-कुतियाका विस्तार प्रगट करता है, उँगलि पकड़कर चलने वाला बच्चा अपने पिताका विस्तार प्रगट करता है, धन-संपत्ति धनवानको प्रगट करते हैं; उसी प्रकार पुण्य-पापके भाव, तीर्थंकरगोत्रका भाव पुद्गलके साथ तादात्म्य–बिस्तार प्रगट करते हैं। वे कोई भगवान चिदानन्द आत्माको प्रगट नहीं करते। ४८.

❁ परमार्थसे घड़ेको और मिट्टीको व्याप-व्यापकभावका सद्भाव है, इसलिये घड़ा वह कर्म–कार्य है और मिट्टी उसका करण–कर्ता है; किन्तु कुम्हार उसका कारण नहीं है। उसी प्रकार विकारी परिणाम वे पुद्गलके परिणाम होनेसे विकारी परिणाम और पुद्गलमें व्याप्य-व्यापकपना है, इसलिये राग परिणामका कर्ता पुद्गल है, जीव रागका कर्ता नहीं है। ४९.

❁ प्रथम तो सच्चे गुरु किन्हें कहते हैं?–जिनके उपदेशमें ऐसा कथन हो कि–हे जीव! तेरी परिणतिमें यह राग-द्वेष भले हों, किन्तु वे विकारी परिणाम तू नहीं है। वे परिणाम तू नहीं है और वे परिणाम तेरे स्वभावमें नहीं हैं, उनका कर्ता-भोक्ता भी तू नहीं है। तू तो निर्विकल्प सहज समयसाररूप ज्ञायकभाव हो, उसकी दृष्टि कर, उसकी दृष्टि करनेसे मोक्ष प्राप्त होगा, अन्य किसी प्रकार मोक्ष होगा ही नहीं।–ऐसा उपदेश जिनकी देशनामें आये उन्हें सच्चे गुरु कहा जाता है। ५०.

❁ विकृतभाव एक समयका है, उससे रहित पूर्ण वस्तु विद्यमान है। विकृतभाव वस्तुमें नहीं है ऐसा निर्णय किया कि बस, वह छूट गया! विकृतभावसे भेद करना है, अन्य सब तो पृथक् ही है। ५१.

❁ श्री समयसारकी गाथा १०९–११२में कहते हैं कि–हे ज्ञानके इच्छुक पुरुष! सुन! जो मिथ्यात्वादि भावकर्म हैं उसका कर्ता एक पुद्गल द्रव्य ही है, जीव उसका कर्ता नहीं है। मिथ्यात्वसे लेकर सयोगीकेवली तकके तेरह गुणस्थानभेद जो कि पुद्गल कर्मके

www.vitragvani.com

विपाकके प्रकार होनेसे अत्यन्त अचेतन हैं वे ही व्याप्य-व्यापक भावसे मिथ्यात्वादि भावकर्मको यदि करते हैं तो भले करो! जीवको उसमें क्या आया? जीव तो अकेला शुद्ध ज्ञानान्दमय है। अहाहा! जिस जीवको आत्माकी जिज्ञासा हुई है और श्रवण करने आया है उसे अभी अल्पकाल मिथ्यात्वादि भाव भले हों किन्तु वह शुद्ध जीवका लक्ष करेगा ही, तब मिथ्यात्वादि सब भाव अल्पकालमें हट जायेंगे, इसलिये मिथ्यात्वादि भावोंका कर्ता पुद्गल है शुद्ध जीव कर्ता नहीं है। आहाहा! ५२.

❀ जिस प्रकार दीपक घटपटको प्रकाशित करनेकी दशामें भी दीपक है, वह घटपटादिरूप नहीं हुआ किन्तु दीपकरूप ही है। दीपक स्वको प्रकाशनेमें भी दीपक है और परको प्रकाशनेमें भी दीपक है; उसी प्रकार ज्ञायकभाव रागको प्रकाशनेके कालमें ज्ञायक ही है तथा स्वयंको प्रकाशनेके कालमें भी ज्ञायक ही है। जिसे चैतन्यस्वभावका ज्ञान हुआ है ऐसे सम्यग्दृष्टिको रागका ज्ञान हुआ वह रागका नहीं किन्तु ज्ञानका ज्ञान है, इसलिये राग कर्ता और ज्ञान कार्य–ऐसा नहीं है। स्व और परके प्रकाशन कालमें ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ऐसे ज्ञायकस्वभावी शुद्ध आत्माको हे शिष्य! तू जान! ५३.

❀ हे योगी! देहमें परमात्माका निवास होने पर भी इस देहमें स्थित परमात्माको तू क्यों नहीं देखता? उस परमात्माके दर्शनसे तेरे पूर्वोपार्जित कर्म चूर–चूर हो जायेंगे और तू निर्वाणको प्राप्त होगा। महान पुरुष मिलने आये हों और सामान्य बालक आदिके साथ बातें करनेमें लग जाय तो वह महापुरुषका अपमान है। उसी प्रकार तीनलोकका उत्कृष्ट तत्त्व ऐसा निज परमात्मा देहमें विद्यमान होने पर भी उसे तू देखता नहीं है और पर-प्रपंचकी जानकारीमें पड़कर निज परमात्माका अपमान कर रहा है। ५४.

❀ क्रमबद्धपर्यायके सिद्धांतसे मुख्य तो अकर्तृत्व सिद्ध करना है। जैनदर्शन अकर्तावाद है। आत्मा परद्रव्यका तो कर्ता है ही नहीं, रागका भी कर्ता नहीं और पर्यायका भी नहीं है। पर्याय पर्यायके जन्मक्षणमें षट्कारकसे स्वतंत्र जो होना है वही होती है, किन्तु वह क्रमबद्धका निर्णय पर्यायके लक्षसे नहीं होता। क्रमबद्धका निर्णय करते हुए वहाँ शुद्ध चैतन्य ज्ञायकधातु पर दृष्टि जाती है, तब ज्ञाता जो पर्याय प्रगट होती है वह क्रमबद्धपर्यायको जानती है। क्रमबद्धपर्यायका निर्णय स्वभावोन्मुखताके अनंत पुरुषार्थ पूर्वक होता है, क्रमबद्धपर्यायके निर्णयका तात्पर्य वीतरागता है। वह वीतरागता तब पर्यायमें प्रगट होती है जब वीतराग स्वभाव पर दृष्टि जाती है। श्री समयसार गाथा ३२०में कहा है ना! कि ज्ञान बंध–मोक्षको नहीं

www.vitragvani.com

करता किन्तु जानता ही है। अहाहा! मोक्षको जानता है मोक्षको करता है ऐसा नहीं कहा है। अपने होनेवाले क्रमानुसार परिणामोंको करता है ऐसा नहीं किन्तु जानता है ऐसा कहा है। गजब बात है! ५५.

❁ निर्मल परिणाम हो या मलिन हो, उसके स्वकालमें ही वह होता है, उस परिणामका वह जन्मक्षण है। वास्तवमें जो होता है उसका तू ज्ञाता है; ऐसा कैसे होता है वह तो प्रश्न ही नहीं है। जिस काल जो परिणाम हो उसके ज्ञाता रहो। अहा प्रभु! तेरी गम्भीरताका कोई पार नहीं है, द्रव्यस्वभाव–गुणस्वभाव–पर्यायस्वभाव–महागंभीरस्वभाव है। ५६.

❁ पर्यायमें देखना है अपनी वर्तमान योग्यता और द्रव्यमें देखना है अपना त्रैकालिक सामर्थ्य। परमें तो उसे देखना है ही नहीं। कर्माधीन होकर राग करता है उस परतंत्रताको भोगनेकी योग्यता भी उसकी पर्यायमें है और उसी समय उस रागसे भिन्न द्रव्यस्वभावकी शुद्धताका सामर्थ्य सदा ज्योंका त्यों है ऐसा देखता है। ५७.

❁ जीव प्रमाणज्ञानके लोभसे निश्चयमें नहीं आ सकता–वहाँ ऐसा कहना है कि अज्ञानी पर्यायका और द्रव्यका ज्ञान करने जाता है वहाँ अनादिकालीन अभ्यासके कारण पर्यायमें अहंपनेका जोर रहनेसे द्रव्यका ज्ञान सच्चा नहीं होता। अज्ञानीको ऐसा लगता है कि पर्याय है ना! पर्याय है तो सही! इस प्रकार पर्याय पर जोर देनेसे द्रव्य पर जोर नहीं दिया जा सकता और उससे अंतरोन्मुखता नहीं हो सकती। पर्यायको नहीं मानूँगा तो एकान्त हो जायगा ऐसा भय रहता है। इस प्रकार प्रमाणज्ञानके लोभसे पर्यायको गौण करके द्रव्योन्मुख नहीं हो सकता। ५८.

❁ एक विचार आया कि तीर्थंकर जैसोंको माताके गर्भमें आना पड़े, सवा नौ महीने तक पेटमें सिकुड़कर रहना पड़े, जन्म लेना पड़े! अहाहा! इन्द्र जिसकी सेवा करने आते हैं ऐसे तीर्थंकरकी यह स्थिति! वाह रे संसार! यह क्या है?....वैराग्य....वैराग्य.....सर्वोत्कृष्ट पुण्यके स्वामी ऐसे तीर्थंकरको भी माताके पेटमें रहना पड़े! अहाहा! संसारकी अंतिम स्थितिकी बात है। अरेरे! प्रभु! ऐसा संसार! संसारकी ऐसी स्थिति विचारने पर आँखसे आँसू बहने लगते हैं! जन्म लेने जैसा नहीं है। तीर्थंकरगोत्र कर्मको भी विषवृक्ष कहा है, और जिस भावसे तीर्थंकरगोत्र बँधता है वह भाव भी विष है–विषकुम्भ है। तीर्थंकरके अवतारको विषका फल तो तीर्थंकर ही कह सकते हैं। विषके फलमेंसे विष झरता है और अमृतके फलसे

www.vitragvani.com

अमृत झरता है! अहाहा! तीर्थंकरकी तो जाति ही भिन्न है तथापि तीर्थंकर जैसोंकी यह स्थिति है! अरेरे! जन्म लेने जैसा नहीं है। ५९.

❀ देखो सवेरे एक विचार आया था कि–आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसकी केवलज्ञानकी पाँच पर्यायें हैं। केवलज्ञान अपने गुणके व्यवस्थित कार्यको जानता है, वैसे ही मतिज्ञान भी अपने गुणके व्यवस्थित कार्यको जानता है, परके कार्यको भी व्यवस्थित जानता है। उसी प्रकार श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान भी अपने गुणके व्यवस्थित कार्यको जानते हैं तथा परके कार्यको भी व्यवस्थित जानते हैं। व्यवस्थित जानना ही उनका स्वभाव है। आत्मा मात्र ज्ञानस्वरूप है, इसलिये उसकी पर्याय, गुण और द्रव्य बस ज्ञाता ही हैं फेरफार करनेवाले नहीं हैं। अपनेमें भी कोई फेरफार नहीं करना है। जैसा व्यवस्थित कार्य होता है वैसा जानते हैं। अहाहा! देखो तो सही! वस्तु ही ऐसी है। अंतरमें तो अति गम्भीरतासे चल रहा था किन्तु कहनेमें तो.....६०.

❀ अरे भाई! तू विचार तो कर कि तू कौन है? तू ज्ञानस्वरूप है। जो हो उसे जान! तू कर्ता नहीं, ज्ञाता है। क्रमबद्धका विचार करे तो सब झगड़े मिट जायँ। स्वयं परद्रव्यका कर्ता तो नहीं है, रागका कर्ता तो नहीं है, निर्मल पर्यायका भी कर्ता नहीं है, अकर्ता स्वरूप है। ज्ञातास्वभावकी ओर ढल जानेमें ही अकर्तृत्वका महान पुरुषार्थ है। वास्तवमें पर्यायको द्रव्योन्मुख करना यह एक ही मुख्य वस्तु है, यही सचमुच जैनदर्शन है। अहाहा! जैनदर्शन बहुत कठिन! किन्तु अपूर्व है और उसका फल महान है। सिद्धगति उसका फल है। परका कर्ता तो नहीं है रागका कर्ता तो नहीं है किन्तु निर्मल पर्यायका कर्ता भी नहीं है; क्योंकि पर्याय अपने षट्कारकसे स्वतंत्र परिणमित होती है। उसमें भाव नामकी एक शक्ति है उसके कारण पर्याय होती ही है, करूँ तो होती है ऐसा नहीं है। अहाहा! भाई! मार्ग कठिन है, अचिन्त्य है, अगम्य है, अगम्यको गम्य बना दे ऐसा अपूर्व मार्ग है। पर्याय क्रमानुसार होती है, द्रव्य-गुण भी उसके कर्ता नहीं हैं–ऐसा कहकर अकेली सर्वज्ञता सिद्ध की है। अकर्तापना अर्थात् ज्ञातापना सिद्ध किया है। ६१.

❀ अनंत जिनवर ऐसा कहते हैं कि–जीव बंध–मोक्षको नहीं करता उस जीवको हम जीव कहते हैं। अन्य प्रकारसे कहें तो बंधपर्याय तो आश्रय करने योग्य नहीं है किन्तु निश्चय मोक्षमार्ग भी आश्रय करने योग्य नहीं है। बंध-मोक्षसे रहित वस्तु आश्रय करने योग्य है। मोक्षमार्गकी पर्याय वह व्यवहार जीव है। पर्याय वह व्यवहार होनेसे पर्यायवान जीव व्यवहार जीव है और द्रव्य वह निश्चय जीव है। ६२.

www.vitragvani.com

❁ श्रोता :—त्रैकालिक निष्क्रिय चैतन्य ही परमार्थ जीव है। बंध-मोक्ष पर्यायका कर्ता तो व्यवहार जीव है। तो कितने प्रकारके जीव हैं?

पूज्य गुरुदेव :—दो प्रकारके जीव हैं–एक परमार्थ जीव है और दूसरा व्यवहार जीव है। परमार्थ जीव तो त्रैकालिक निष्क्रिय मोक्षस्वरूप ही है और बंध–मोक्षरूप पर्याय परिणमती है वह व्यवहार जीव है। ६३.

❁ शुद्ध निश्चयनयसे मोक्षमें और संसारमें अन्तर नहीं है। अहाहा! कहाँ तो पूर्णानन्दकी प्रगटतारूप मुक्त दशा और कहाँ अनंत दुःखमय संसार पर्याय! तथापि उस मुक्तिमें और संसारमें अन्तर नहीं है ऐसा शुद्ध तत्त्वके रसिक पुरुष कहते हैं। क्योंकि संसार भी पर्याय है और मोक्ष भी पर्याय है। वह पर्याय चूँकि आश्रय करने योग्य नहीं है इस अपेक्षासे मोक्षमें और संसारमें अन्तर नहीं है ऐसा शुद्ध तत्त्वके रसिक पुरुष अर्थात् शुद्धतत्त्वके अनुभवी पुरुष कहते हैं। नियमसार गाथा ५०में कहते हैं कि शुद्ध निश्चयके बलसे उदयभाव तो हेय है ही किन्तु उपशमादि भावोंकी निर्मल पर्याय भी हेय है। शुद्ध निश्चयके बलसे चारों भाव हेय हैं ऐसा कहा है। यहाँ कहते हैं कि मोक्षमें और संसारमें अन्तर नहीं है ऐसा शुद्धतत्त्वके रसिक अर्थात् अनुभवी पुरुष कहते हैं। ६४.

❁ श्रोता :—एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्पर्श नहीं करता और प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय क्रमबद्ध ही होती है, इस पर आप बहुत जोर देते हो, तो यह सम्यग्दर्शनका कारण है?

पूज्य गुरुदेव :—हाँ, यह तो मुख्य बात है। इन दो बातोंका निर्णय होने पर दृष्टि द्रव्यकी ओर ढलती है। ६५.

❁ हे भव्य! तू शरीरको न देख! रागको न देख! एक समयकी पर्यायको न देख! तेरे पास तो अपना पूर्णानन्द प्रभु विद्यमान है उसे देख! अरे भगवान! तेरा पूर्णानन्द स्वरूप समीप ही होने पर वह दूर कैसे रह सकता है? इस प्रकार दिगम्बर संतोंकी वाणी गर्जना करती–चमकती हुई आ रही है कि तेरे समीप ही तेरा प्रभु विद्यमान है उसे तू आज ही देख! आज ही स्वीकार करके हाँ कह! हाँ कहते ही हालत बदल जाय ऐसा तू पूर्णानन्दका स्वामी है। ६६.

❁ चैतन्यमूर्ति आत्मा परमानन्दस्वरूप है, उसके ध्यानके बिना सब घोर संसारका मूल है। अहाहा! कठिन बात है भाई! अशुभ राग तो घोर संसारका राग है ही, किन्तु यहाँ

www.vitragvani.com

कहते हैं कि आत्मध्यानके अतिरिक्त अन्य सब घोर संसारका मूल है अर्थात् अनेक प्रकारके जो शुभ भाव हैं वे भी घोर संसारका मूल हैं। आत्मध्यान वह मोक्षका मूल है तो उसके समक्ष अन्य सब घोर संसारका मूल है। दया–दान–पूजा– पठन–पाठन–व्रतादि अनेक प्रकारके शुभभाव हैं वे सब घोर संसारका मूल हैं। ६७.

❁ सविकल्पदशाके समय ही मैं द्रव्यस्वभावसे निर्विकल्प सहज परमतत्त्व हूँ–ऐसी स्वीकृति जिसकी पर्यायमें आयी वहीं उस जीवको भावकर्मका कर्ता-भोक्तापना छूट गया और उसका मात्र ज्ञाता रह गया। इस प्रकार भावकर्मका कर्तृत्व–भोक्तृत्व छूट जानेसे उस जीवको द्रव्यकर्मका भी निरोध हो जाता है और द्रव्यकर्मके रुक जानेसे संसारका भी निरोध हो जाता है। एक अखण्ड ज्ञायकभावकी स्वीकृति आनेसे संसार अटक जाता है। ६८.

❁ मोक्षमार्गकी पर्याय जितना तू नहीं है किन्तु परमात्माकी पर्याय–पूर्ण पर्याय जितना भी तू नहीं है। निर्विकल्प त्रैकालिक ध्रुव वस्तु सो तू है। परम पारिणामिक स्वभावभाव ध्रुव वस्तु सो निज परमात्मा है। आत्मा स्वयं परमात्मा है। निश्चयमोक्षमार्गकी पर्याय आत्माकी है ऐसा उपचारसे कहा जाता है। ६९.

❁ उत्पाद-व्ययसे रहित ध्रुव आत्मा ही वास्तविक आत्मा है। एक समयका ध्रुव ही सच्चा आत्मा है, वास्तविक आत्मा है। एक समयकी शुद्ध पर्याय वह वास्तविक आत्मा नहीं है इसलिये अवास्तविक हुआ। अवास्तविक ही परद्रव्य हुआ; इससे परभाव कहा, हेय कहा। ७०.

❁ वीतरागदेव कहते हैं कि तू परमात्मवरूप ही है ऐसी दृष्टि कर। प्रभु! सर्वज्ञदेव कहते हैं कि मेरे और तेरे स्वभावमें अन्तर–फेर है ही नहीं। हमें व्यक्तरूपसे जो दशा प्रगट हुई है वैसा ही तू है। भाई मेरे और तेरे स्वभावमें कोई अन्तर नहीं है किन्तु अपने सामर्थ्यकी खबर नहीं है भाई! ७१.

❁ वस्तु परमात्मस्वरूप है। आत्मा स्वयं ही परमात्मस्वरूप है। स्वयं ही परमात्मस्वरूपसे विद्यमान है। ऐसे वीतरागी परमात्माका–है उसका–आदर किया, स्वीकार किया और आश्रय किया तब अनुभूति होती है। वह एक ही कर्मसे छूटनेसे उपाय है। इसलिये हे जीव! टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक शुद्धस्वभावका स्वीकार कर, यही कर्तव्य है। ७२.

❁ जो पर्याय होनेवाली है उसे करना क्या? और जो नहीं होनेवाली है उसको

www.vitragvani.com

भी क्या करना? ऐसा निश्चय करते ही कर्तृत्वबुद्धि छूटकर स्वभावसन्मुखता हो जाती है। सर्वज्ञ त्रैकालिकके ज्ञाता–दृष्टा हैं उसी प्रकार मैं भी त्रैकालिकका ज्ञाता– दृष्टा ही हूँ। ऐसे त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावका निश्चय करना वही सम्यग्दर्शन है। ७३.

❀ श्रोता :–जीव राग-द्वेषकी पर्यायको नहीं बदल सकता, किन्तु श्रद्धाकी पर्यायको बदल सकता है ना?

पू गुरुदेव :–सब पर्यायोंको बदल सकता है; नहीं बदल सकता ऐसा निर्णय करने जाय वहाँ दृष्टि स्वभाव पर जाती है और पर्यायकी सारी दिशा ही बदल जाती है। ज्ञानस्वभाव हूँ ऐसा निर्णय किया वहां सब जैसा है वैसा है, बदलना और नहीं बदलना क्या? जैसा है वैसा है। नियतका निश्चय करें वहीं स्वभावका पुरुषार्थ साथ ही है और राग भी मन्द हो गया है। ज्ञानस्वभाव हूँ ऐसा निश्चय हो गया पश्चात् जैसा है वैसा है। ग्रहने योग्य सबका ग्रहण हो गया और त्यागने योग्य सबका त्याग हो गया। ज्ञाताका पुरुषार्थ चल ही रहा है। राग कम होता जाता है इसलिये पूर्ण वीतरागता हो जायेगी। ७४.

❀ क्रमबद्धमें पुरुषार्थ उड़ जायेगा ऐसा अज्ञानीको डर लगता है; किन्तु वास्तवमें क्रमबद्ध माने उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। उसीमें पुरुषार्थ है। क्रमबद्ध माननेसे परिवर्तनकी दृष्टि छूटकर सामान्य द्रव्य पर दृष्टि जाये वही पुरुषार्थ है। क्रमबद्धका निर्णय करने जाये वहाँ मैं परका कर दूँ, व्यवहारसे निश्चय होता है वह सब उड़ जाता है और अंतरमें स्थिरताका मार्ग मिलता है। ७५.

❀ अरे प्रभु! तू पूर्णानन्दका नाथ है ना! तेरी सत्ता है...है...है...वहाँ दृष्टि नहीं जाती। दृष्टिके पुरुषार्थमें पूर्ण भगवान दिखता है। यहाँ तो आचार्यदेव कहते हैं कि संसारीमें और सिद्धमें किस नयसे भेद करूँ? शुद्ध नयको ही गिना गया है;–गिनतीमें लिया गया है; व्यवहारका तो उपहास किया है। संसारीमें और सिद्धमें कुछ भी भेद नहीं है तो किस नयसे भेद करूँ? ७६.

❀ सर्वज्ञ परमात्माकी यह पुकार है। सर्वज्ञ परमात्मा सबको निज सत्तासे शुद्ध देखते हैं और सर्वज्ञकी भाँति सब अपनेको निज सत्तासे शुद्ध देखें तो उन्हें वैसा अनुभवमें आयगा। वह थोड़े अक्षरोंमें भगवान आत्माका सम्पूर्ण स्वरूप आ जाता है। यहाँ कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा सबको सदाकाल ज्ञात होता है तथापि अनुभवमें क्यों नहीं आता? ज्ञानकी पर्यायमें ऐसी शक्ति है कि सम्पूर्ण भगवान आत्माको जाने। ज्ञानकी पर्यायमें भगवान आत्माको

www.vitragvani.com

जानता है तथापि क्यों अनुभवमें नहीं आता?–तो कहते हैं कि अंतरमें महाप्रभु विराजमान है वह ज्ञानमें ज्ञात होने पर भी स्वयं रागके वश होकर रागको ही देखता है इसलिये स्वयं ज्ञात नहीं होता। ७७.

❁ भगवान सर्वज्ञके केवलज्ञानमें तीनकाल तीनलोककी पर्याययें ज्ञात होती हैं। जिसप्रकार केवलज्ञानमें तीनकालकी पर्यायें ज्ञात होती हैं तथा पदार्थोमें क्रमबद्धपर्यायें होती हैं, केवलज्ञानने जाना इसलिये नहीं किन्तु पदार्थोंकी पर्यायें स्वयंसे स्वकालमें उसीप्रकार होती हैं और वैसा ही सर्वज्ञ जानते हैं। अहाहा! परद्रव्यका करनेकी तो बात नहीं है किन्तु अपनी अशुद्ध और शुद्ध पर्यायें स्वकालमें क्रमबद्ध जो होना है वे ही होंगी इसलिये अपनेमें भी पर्यायको उलटी–सीधी करना रहा ही नहीं। मात्र जो जैसा होता है वैसा जानना ही रहा। जैसे सर्वज्ञ ज्ञाता है वैसे ही धर्मी भी ज्ञाता हो गया। क्रमबद्धके निर्णयका तात्पर्य अकर्तृत्वरूप वीतरागता है। वह वीतरागता अनंत पुरुषार्थपूर्वक द्रव्य पर दृष्टि जानेसे होती है। अहाहा! आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। ७८.

❁ परमाणुमें रंगगुण त्रैकालिक है। उसकी पर्याय पहले समयमें काली हो वह बदलकर दूसरे समयमें लाल, सफेद, पीली हो जाती है उसका कारण कौन? यदि रंगगुण कारण हो तब रंगगुण तो स्थायी है तथापि परिणमनमें ऐसी विचित्रता क्यों? वास्तवमें तो उस समयकी पर्याय अपने षट्कारकसे स्वयमेव परिणमित हुई है। उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय उस-उस कालमें स्वतंत्र परिणमती है। अहाहा! स्वतंत्रताकी बातें अति सूक्ष्म हैं। ७९.

❁ जैसे मालामें मोती जिस स्थान पर हैं उसी स्थान पर हैं, आगे-पीछे हो जायें तो माला अखण्ड नहीं रहती, उसीप्रकार जिस समय जिस जन्मक्षणमें जो पर्याय क्रमबद्ध होना है वही होगी, दूसरे समयकी पर्याय पहले हो और पहले समयकी पर्याय बादमें हो ऐसा है ही नहीं। जिस समय जो पर्याय होना है उसे काललब्धि कहा जाता है। प्रवचनसारमें उसे जन्मक्षण कहते हैं। तथा प्रवचनसारकी ९९ वीं गाथामें अपने–अपने अवसरमें पर्याय होती है ऐसा पाठ है। सर्वज्ञ भगवान भी अपनी क्रमशः जो पर्याय होना है उसके कर्ता नहीं हैं, ज्ञाता हैं। ८०.

❁ निःसंदेहरूपसे तू ऐसा जान कि देहमें विराजमान देहसे भिन्न परमात्मा स्वयं है। राग-द्वेष तो भिन्न हैं, शरीर भिन्न है, उन्हें तो एक ओर रखो, किन्तु परमात्माको जाननेवाली जो दशा है वह नाशवान है, उसमें अविनाशी प्रभुका वास नहीं है। ऐसा महिमावान

www.vitragvani.com

त्रिलोकीनाथ सच्चिदानन्द प्रभु तुझसे मिलने आया–पर्यायमें भेट करने आया है तब तूने रागके साथ भेट करके उसका अनादर किया है। ८१.

❁ जिसने पर्यायके अस्तित्वको ही स्वीकार किया उसको त्रैकालिक स्वभावके अस्तित्वका अस्वीकार हो जाता है। अनादिसे पर्यायको ही सत्‌रूपसे–अस्तित्वरूपसे देखा था उसे भूल जा! और त्रैकालिक स्वभावको भूल गया था उसे देख! स्मरण कर! पर्यायकी रुचिसे जो पूर्ण ज्ञायकभाव है वह दृष्टिमें नहीं आता। ज्ञायकभावकी रुचि होने पर ज्ञानमें संवर–निर्जरा–मोक्षपर्यायका यथार्थ ज्ञान होता है, परंतु उस पर्यायकी दृष्टि नहीं होती। ८२.

❁ श्रोता :—क्रमबद्धमें क्रमबद्धकी विशेषता है या द्रव्यकी?

पूज्य गुरुदेव :—क्रमबद्धमें ज्ञायकद्रव्यकी विशेषता है। क्रमबद्धमें अकर्तापना सिद्ध करके ज्ञातापना बतलाना है। ८३.

❁ साध्य ऐसा जो आत्मा उसके प्रतिच्छंदके स्थान पर सिद्ध भगवंत हैं। द्रव्यस्तुति द्वारा "हे सिद्ध परमात्मा!" ऐसा कहते हैं वहाँ भावस्तुति द्वारा अपने आत्मामें प्रतिध्वनि आती है कि 'हे सिद्ध परमात्मा!' इस प्रकार साध्य तो मात्र अपना आत्मा ही है, परंतु सिद्ध भगवान साध्यके प्रतिच्छंदके स्थान पर हैं। ऐसे उन सिद्ध परमात्माके स्वरूपका चिंतवन करके, उस समान अपने स्वरूपको ध्याकर, मेरा द्रव्य सिद्ध समान है, मेरा स्वरूप सिद्धस्वरूप ही है,–ऐसे सिद्धस्वरूप निज आत्माको ध्याकर, संसारी जीव उसके समान हो जाते हैं। ८४.

❁ सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे पूर्व जिज्ञासुकी भूमिकामें भी त्रैकालिक ध्रुव आत्माको ही अधिक रखनेका पुरुषार्थ करना। अधिक अर्थात् परसे भिन्न। समयसारकी ३१वीं गाथामें आता है–'णाणसहावाधिअं मुणदि आदं....' ज्ञानस्वभावसे आत्माको अधिक जानता है। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय तथा उनके विषयोंसे–विषयोंमें देव-शास्त्र-गुरु भी आ गये–भिन्न अपने पूर्ण ज्ञानस्वभावी आत्माकी निर्मल श्रद्धा सो सम्यग्दर्शन है और साथका ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान है। ८५.

❁ किसी भी प्रसंगमें प्रतिपल ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान निज आत्माको ही अग्र रखना। प्रतिक्षण पूर्णानन्दके नाथको–ज्ञायक प्रभुको मुख्य रखो। अनादि अज्ञानसे जीवको पर्यायकी, शुभाशुभ रागकी तथा व्यवहारकी मुख्यता रही है; उसे छोड़कर, आनन्दकन्द शुद्ध ज्ञायकको पहिचानकर उसीको दृष्टिमें ऊर्ध्व रखो। दृष्टिमेंसे ध्रुवज्ञायककी मुख्यता छूट जायगी तो सम्यग्दर्शन नहीं रहेगा। ८६.

www.vitragvani.com

❁ नेत्रोंकी भाँति आत्मा मात्र जानता-देखता ही है; परको तो करता नहीं है, रागादिको करता नहीं है, किन्तु संवर-निर्जरा और मोक्षके परिणामको भी नहीं करता। अहाहा! जो हो उसका मात्र ज्ञाता....ज्ञाता और ज्ञाता ही आत्मा है। ८७.

❁ जिस समय जो पर्याय होना है वह होना ही है यह निश्चय है–उसमें अज्ञानीको शंका होती है कि ऐसा माननेसे तो नियत हो गया? अरे! नियत अर्थात् निश्चय है और पर्यायके निश्चयसे पर्यायकी और परकी कर्ताबुद्धि छूट जाती है इसलिये ज्ञातादृष्टि होती है और ज्ञातापना होना वह क्रमबद्धका प्रयोजन है। ८८.

❁ करना-धरना है ही कहाँ? करूँ-करूँकी दृष्टि ही छोड़ना है। रागको करना तो है ही नहीं किन्तु आत्मामें अनंत गुण हैं उनका परिणमन भी प्रतिसमय हो ही रहा है उसे भी क्या करेगा? मात्र उसके ऊपरसे दृष्टि हटाकर अन्तरमें जाना है। ८९.

❁ संसारी जीवमें सांसारिक गुण अर्थात् विकारी पर्याय होती है और सिद्धको सदा निर्विकारी पर्याय होती है। विकार या अविकार दशाका अस्तित्व पर्यायमें है। वर्तमान वर्तती परिणतिमें उन-उन पर्यायोंकी अस्ति है अवश्य; तथापि वे वस्तुस्वभावमें नहीं हैं, त्रैकालिक ध्रुवसामान्य एकरूप द्रव्यमें उनकी अस्ति है ही नहीं। ९०.

❁ अकेला पुरुषार्थ करूँ....पुरुषार्थ करूँ....करूँ.....करूँ....ऐसी एकान्त पुरुषार्थकी बुद्धि रहे–एकान्त पुरुषार्थबुद्धि रहे वह भी मिथ्यात्व है। पाँच समवायका साथ आना चाहिये। उन पांचों समवायका साथ आये तब वह सहजरूप पुरुषार्थसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। ९१.

❁ चैतन्यपिण्ड ज्ञानसूर्य मात्र ज्ञाता ही है, उसे रागादिका कोई लगाव नहीं है, वह परिपूर्णतासे हटा ही नहीं है; राग स्वरूप हुआ ही नहीं है; वह रागको छोड़ता है ऐसा जो कहा जाता है वह भी नाममात्र कथन है। ९२.

❁ अरे प्रभु! तुझमें प्रभुता विद्यमान है, तू स्वयं ही प्रभु है! तेरे उदरमें परमात्मपना विद्यमान है, उसमें से संसारकी उत्पत्ति हो ऐसी शक्ति ही तुझमें नहीं है। तुझमें तो केवली उत्पन्न होनेकी खान है। ९३.

❁ भाई! इस समय तो अपना कार्य कर लेने जैसा है। अरे! माँ-बाप, भाई-बहिन, सगे-सम्बन्धी आदि मरकर कहाँ गये होंगे? उसकी कोई खबर है? अरे! मुझे अपने आत्माका हित कर लेना है–ऐसा उसे अंतरसे लगना चाहिये। अहाहा! सगे-सम्बन्धी सब

www.vitragvani.com

चले गये, उनके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भव सब फिर गये। शरीरके अनन्त रजकण कब कहाँ क्या होंगे उसकी खबर है? इसलिये जो जागता रहेगा वह बचेगा। ९४.

❁ भाई! तू ज्ञायक ही है ऐसा निर्णय ला! ज्ञायक ही है परन्तु उस ज्ञायकका निर्णय करना है। पुरुषार्थ करूँ....करूँ परन्तु वह पुरुषार्थ तो द्रव्यमें भरा है, तो उस द्रव्य पर लक्ष जाये वहाँ पुरुषार्थ प्रगट होता है, परन्तु उसे करूँ....करूँ.....करके कुछ नवीन कार्य करना है। किन्तु जब द्रव्य पर दृष्टि जाती है तब सब जैसा है वैसा जानता है। परका तो कुछ बदलना नहीं है और स्वका भी कुछ फेरफार नहीं करना है। स्वका निर्णय करने पर दिशा ही पलट जाती है। वास्तवमें तो परोक्षज्ञान है वह भी ज्ञाता ही है।

श्रोता :—परोक्षज्ञान तो हीन और न्यून है ना?

पूज्य गुरुदेव :—परोक्ष ज्ञान–मति-श्रुत भी ज्ञाता ही है। जो कुछ है उसे जानते ही हैं। विकल्पको जानते हैं, हीनता और न्यूनताको भी जानते हैं।

श्रोता :—कौन जानता है न्यून ज्ञान?

पूज्य गुरुदेव :—ज्ञान न्यून है ऐसा भी वह ज्ञान जानता है। जो है उसे वही ज्ञान वैसा जानता है। 'जाना हुआ प्रयोजनवान है' यह समयसारकी १२वीं गाथाका शब्द है यह गजब बात है! ९५.

❁ द्रव्यमें विकार नहीं है, गुणमें नहीं है, निमित्तमें नहीं है किन्तु स्वयं जोर करके जबरन् अधरसे लटकता हुआ, समयपर्यंत खड़ा करता है। ९६.

❁ ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञाता जाननेमें आता है तथापि उसे नहीं जानता और जो परज्ञेय जाननेमें आते हैं उन्हें अपना मानता है कि राग सो मैं हूँ,–ऐसी एकत्वबुद्धि करता है वह भूल है, वह महा-अपराध है। अनन्तज्ञान, आनन्दादिका दरबार है उसे नहीं जानता और पुण्य-पापके रागादिको अपना जानता है वह महा-अपराध है, वह छोटा अपराधी नहीं किन्तु बड़ा अपराधी है। ९७.

❁ द्रव्यदृष्टिमें आत्मा ज्ञायक ही है, वह शुभाशुभ भावरूप हुआ ही नहीं है, अचेतनरूप हुआ ही नहीं है। ज्ञायकभाव शुभाशुभरूप परिणमे तो अचेतन हो जाय, इसलिये वह प्रमत्त–अप्रमत्तरूप नहीं हुआ। असंख्य प्रदेशमें ज्ञानका पुंज ज्ञायक है वह शुभाशुभ भावरूप क्यों परिणमेगा? इसलिये शुभाशुभ भाववाला जीव–ऐसा कहना वह 'घीका घड़ा'की भाँति व्यवहार है। ९८.

www.vitragvani.com

❁ भूत और भविष्यकी सभी पर्यायें अविद्यमान हैं तथापि ज्ञानमें विद्यमान ही हैं। ज्ञानमें तो वे विद्यमान ही हैं ऐसा ज्ञानका स्वभाव है। प्रभु! तेरा स्वभाव सर्वज्ञस्वरूपी है। वह सर्वज्ञस्वरूपी पर्याय प्रगट हो उसमें तीनों कालकी पर्यायें स्थिरबिम्ब विद्यमान हैं। अहाहा! यह बात जिसके ज्ञानमें यथार्थ बैठ गई उसके भवका अन्त आ गया! उसे केवलज्ञान होकर ही रहेगा। उसके क्रममें केवलज्ञान आयगा ही और वह केवलज्ञान वर्तमानमें दूसरोंके केवलज्ञानमें अकम्परूपसे अर्पित हो ही गया है। ९९.

❁ त्रैकालिक ज्ञायकभावकी दृष्टि करनेसे परिणतिके षट्कारककी क्रियाका लक्ष छूट जाता है। पर्यायके षट्कारककी प्रक्रियासे पार हुई जो त्रैकालिक निर्मल अनुभूति सो मैं हूँ–ऐसा लक्ष करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। विकारके षट्कारक तो दूर रहे, किन्तु ज्ञानकी पर्यायके षट्कारकके परिणमनका लक्ष भी छोड़कर उससे भिन्न हूँ–ऐसी दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। १००.

❁ शुद्धात्माकी अनुभूतिके सद्भावमें शुद्धोपयोगसे मोक्ष करता है तो उसके अभावमें शुभाशुभ उपयोगसे बंध करता है; तथापि शुद्ध परमपारिणामिकभाव बंध-मोक्षको नहीं करता, शुभाशुभभावको नहीं करता और अनुभूतिको भी नहीं करता। परम-भावकी दृष्टिसे अनुभूतिका तथा शुभाशुभ भावका अकर्ता है। १०१.

❁ इस द्रव्यस्वभावके गहरे संस्कार डालेगा उसका कार्य होना ही है। जिस प्रकार अप्रतिहतरूपसे सम्यग्दर्शन होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व होना ही है, उसीप्रकार अंतरकी साक्षीमें मैं तो ज्ञायक....ज्ञायक....हूँ, रागादि वह मैं नहीं हूँ–ऐसे संस्कार डालेगा उसका कार्य (सम्यग्दर्शन) होना ही है। १०२.

❁ निर्विकल्प होनेवाला जीव निर्विकल्प होनेसे पूर्व ऐसा निर्णय करता है कि मैं सदा रागादिभावरूप नहीं किन्तु ज्ञान-दर्शनरूप परिणमनेवाला हूँ। रागादिभाव अभी होंगे ऐसा जानता है, तथापि मैं उसके स्वामीरूप होनेवाला नहीं हूँ; मुझे भविष्यमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होगा ऐसा मेरा प्रयत्न है, यद्यपि उस समय राग होगा, परंतु मैं उस रूप परिणमनेवाला नहीं हूँ ऐसा निर्णय है। निर्णय करता है पर्यायमें, फिर अनुभव होगा पर्यायमें, किन्तु वह पर्याय ऐसा निर्णय करती है कि मैं तो चिन्मात्र अखण्ड ज्योतिस्वरूप हूँ, पर्यायरूप नहीं हूँ। १०३.

❁ जिसे निज-आत्मज्ञान बिना परलक्षी ज्ञानका विशेष क्षयोपशम हो उसे विकाररूप परिणमना ही भासता है। परसत्तावलम्बी ज्ञानके प्रेममें स्वभावके प्रति द्वेष है। त्रिकालीनाथका

www.vitragvani.com

आदर किये बिना विकाररूप परिणमता है उसे शुभाशुभभावरूप परिणमना भासता है किन्तु चैतन्यरूप परिणमना भासित नहीं होता। १०४.

❀ बालकसे लेकर वृद्ध तक सबको अर्थात् अज्ञानीको सदा स्वयं अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा ही अनुभवमें आता है, वर्तमान ज्ञानकी जो वर्तमान पर्याय है, अज्ञानीके भी जो विकासरूप भावेन्द्रियकी खण्ड-खण्ड ज्ञानरूप पर्याय है उसमें आत्मा ही अनुभवमें आता है, क्योंकि उस पर्यायमें स्व-परप्रकाशक शक्ति है, इसलिये उसमें स्वज्ञेय ही ज्ञात होता है। बालकसे लेकर वृद्ध तक सबको, ज्ञानकी पर्यायका स्वभाव स्व-परप्रकाशक होनेसे, अज्ञानीको भी उसकी ज्ञानपर्यायमें आत्माका ही अनुभव होता है। अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा बालगोपाल सर्वको सदाकाल स्वयं अनुभवमें आता है। पर्यायमें आत्मा ही ख्यालमें आता है। परमात्मा कहते हैं कि प्रभु! तेरे ज्ञानकी पर्यायमें सदा स्वयं आत्मा ही अनुभवमें आता है। ज्ञानकी प्रगट पर्यायमें सबको भगवान आत्मा अनुभवमें आता है। १०५.

❀ नग्नता–द्रव्यलिंग तो सर्वथा आत्माके नहीं हैं परंतु जो मोक्षमार्ग है, जो जिनशासन है वह भावलिंग दशा जो कि पूर्णानन्दकी प्राप्तिमें साधन है उसे भी उपचारसे आत्माका स्वरूप कहा जाता है। ऐसा कहकर निमित्तका लक्ष छुड़ाया है, रागका लक्ष छुड़ाया है। अरे! निर्विकल्प मोक्षमार्गकी पर्यायका भी लक्ष छुड़ाया है। १०६.

❀ आत्मा ज्ञायक और पर ज्ञेय–ऐसा ज्ञेय-ज्ञायक संबंध होनेपर भी ज्ञेय वह आत्माका व्याप्य नहीं है।। ज्ञेय सम्बन्धी ज्ञानमें ज्ञेय निमित्त होनेपर भी ज्ञेय आत्माका व्याप्य अर्थात् कार्य नहीं है। इसप्रकार ज्ञान ही ज्ञाताका कर्म है–इस प्रकार विकारी पुद्गल परिणामोंका मात्र ज्ञाता ही रहता है वह ज्ञानी है। १०७.

❀ मेरी प्रभुता ऐसी है कि मैं रागके स्वामीरूपसे कभी परिणमित नहीं होता। रागका स्वामित्व तो रंकपना–भिखारीपना है। गणधरदेव भी रागरूप परिणमते हैं किन्तु रागके स्वामीरूप नहीं परिणमते। तुरन्त वीतरागता नहीं आयेगी तब तक राग आयगा अवश्य, परंतु रागके स्वामीरूप मैं नहीं परिणमता, क्योंकि स्व-स्वामी नामका मेरा गुण होनेसे द्रव्य-गुण मेरा स्व और मैं उनका स्वामी हूँ। मुझमेंसे जो निकल जाता है और पुद्गल द्रव्य जिसका स्वामी है ऐसे रागका स्वामी मैं सदा नहीं होनेके कारण ममत्वहीन हूँ। रागके स्वामीरूप नहीं होना वह मिथ्यात्वके त्यागकी विधि है। १०८.

❀ अनादिसे इस जीवने अज्ञानदशाके कारण मोह-अनुभवके प्रभावसे मैं स्वयं ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा हूँ ऐसी दृष्टि नहीं की है। अपनी प्रभुताका उसने कभी विश्वास

www.vitragvani.com

नहीं किया है। वर्तमान वर्तती पामरदशाके समय भी मैं शक्तिरूपसे परिपूर्ण परमात्मतत्त्व हूँ ऐसा उसे भासित नहीं हुआ; इसलिये उसे पौद्गलिक कर्म जिसका निमित्त है ऐसे मोहके अनुभवकी ही अनादिसे पर्यायमें प्रबलता रही है। १०९.

❀ श्रोत्रकी भावेन्द्रिय शब्दको जानती है, उसीप्रकार प्रत्येक इन्द्रिय अपने अपने विषयों द्वारा ज्ञानको खण्ड-खण्डरूप बतलाये वह भावेन्द्रिय है। ज्ञानको खण्ड-खण्ड बतलानेवाळी भावेन्द्रिय वह ज्ञायकका परज्ञेय होनेपर भी उस भावेन्द्रियकी ज्ञायकके साथ एकता मानना वह मिथ्यात्व है। खण्ड-खण्डरूपसे परको जाननेकी योग्यतावाला भाव भी वास्तवमें परज्ञेय है, उसके साथ ज्ञायककी एकता करना-मानना वह भी संसार है। ग्यारह अंग और नव पूर्वकी लब्धि वह भी इन्द्रियज्ञान है, वह ज्ञान खण्ड-खण्डरूप बतलाता है। ११०.

❀ प्रत्येक पदार्थकी पर्याय क्रमबद्ध होती है। प्रत्येक जीव या जड़की पर्यायका जो जन्मक्षण है उसी समय वह पर्याय क्रमबद्ध होती है उसे पलटनेमें इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। अहाहा! जीव मात्र ज्ञाता है। यहाँ अकर्तृत्वकी उत्कृष्टता बतलाते हैं कि ईश्वर जगतका कर्ता है यह बात तो मिथ्या है ही तथा एक द्रव्य अन्य द्रव्यका कुछ कर सकता है यह भी मिथ्या है और वह-वह द्रव्य उसकी अपनी पर्यायको जो कि उसके अपने जन्मक्षण–स्वकालमें क्रमबद्ध होनेवाली है उन्हें उल्टी–सीधी अथवा इधर-उधर कर सके ऐसा भी नहीं है। जिस समय जो पर्याय क्रमबद्ध होना है उसे अन्य निमित्तकी अपेक्षा तो नहीं है परन्तु अपने द्रव्यकी भी अपेक्षा नहीं है। ऐसी वस्तुकी स्थिति है। १११.

❀ श्रोता :—साहब, अनुभव नहीं होता तो हमारा क्या दोष है?

पूज्य गुरुदेव :—यह जो परका उत्साह आता है और अपना उत्साह नहीं आता वही दोष है। परमें ही सावधानी रखता है और अपनेमें सावधान नहीं होता यही दोष है। परका माहात्म्य आता है और अपने स्वभावका माहत्त्म्य नहीं आता यही दोष है। लो, संक्षेपमें यह दोष है। ११२.

❀ तू चैतन्यमूर्ति ज्ञाता-दृष्टा आनन्दकन्दमूर्ति है ऐसा भगवानने देखा है; तू रागवाला है ऐसा भगवानने तुझे नहीं देखा। परन्तु मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ ऐसा तूने अपनेको न देखकर परको जानते हुए तुझमें जो रागादि होते हैं वे स्वभावके कारण नहीं हुए है या परको जाननेसे नहीं हुए है तथापि परवस्तुको जानते हुए यह वस्तु मुझे अच्छी लगती है और यह बुरी लगती है ऐसी मिथ्याभ्रान्ति तूने स्वयं पेदा की है। ११३.

www.vitragvani.com

❁ परद्रव्यको और आत्माको अत्यंत अभाव है व्यवहारनीतिके वचनमें आता है, परन्तु अध्यात्मदृष्टिसे तो विकारका आत्मामें अत्यंत अभाव है। चैतन्यपिण्ड विकारसे भिन्न अकेला पृथक् ही पड़ा है उसे देख! जिस प्रकार तेल पानीके प्रवाहमें ऊपर-ऊपर ही तैरता है, पानीकी गहराईमें प्रवेश नहीं करता, उसी प्रकार विकार चैतन्यके प्रवाहमें ऊपर-ऊपर ही तैरता है, चैतन्यकी गहराईमें प्रविष्ट नहीं होता। ११४.

❁ राग वह मुझमें है और मैं उसे घटाना चाहता हूँ–यह दृष्टि ही मिथ्या है। मैं रागका कर्ता नहीं हूँ, राग मुझसे भिन्न है, मैं तो रागका ज्ञाता हूँ। ऐसी दृष्टि करनेसे राग घट जाता है। ११५.

❁ जिस गुणकी जिस काल जो पर्याय विपरीत होना है वह होना है, परन्तु विपरीत पर्यायको हेयरूप जानना चाहिये। छोड़ने-मोड़नेकी बात नहीं है किन्तु मान्यतामें छोड़ना है। ११६.

❁ भाई, तुझे पुण्य-पापके दुःखरूप भावसे निवर्तना हो तो पहले निर्णय कर कि उन पुण्य-पापके भावोंका स्वामी पुद्गल है और पुण्य-पापके भाव होंगे उनके स्वामित्वरूप परिणमन नहीं करनेवाला वह मैं हूँ। तू विकल्प द्वारा ऐसा निर्णय कर कि पुण्य-पापका स्वामी पुद्गलद्रव्य है और भविष्यमें जो पुण्य-पापके भाव होंगे उनके स्वामित्वरूप परिणमित नहीं होनेके कारण मैं ममत्वरहित हूँ। आत्मामें अनन्तानन्त गुण होने पर भी विकारका कर्ता हो ऐसा कोई गुण नहीं होनेसे पुण्य-पापका स्वामी पुद्गलद्रव्य है, उस परिणामके स्वामित्वरूप नहीं परिणमित होनेवाला मैं हूँ–ऐसा विकल्प द्वारा प्रथम भूमिकामें रागमिश्रित विचारदशामें यह निर्णय कर। वर्तमानमें तो पुण्य-पापका स्वामी पुद्गल है, परन्तु भविष्यमें जो पुण्य-पाप होंगे उनके स्वामित्वरूप परिणमित नहीं होनेसे मैं ममत्व रहित हूँ। ११७.

❁ हे योगी! वास्तविक तत्त्वदृष्टिसे विचारा जाये–देखा जाये अर्थात् अनादि- अनन्त वस्तुस्वभावसे परिपूर्ण त्रैकालिक ध्रुवकी दृष्टिसे देखा जाये तो परिपूर्ण ध्रुववस्तु पर्यायकी कर्ता है ही नहीं। ११८.

❁ भूतकालकी अनंत पर्यायें तथा भविष्यकालकी अनत पर्यायें जो कि हो चुकी हैं और जो अभी हुई नहीं हैं वे पर्यायें वास्तवमें प्रगट नहीं हैं, विद्यमान नहीं हैं–अविद्यमान हैं, तथापि केवलज्ञान उन्हें प्रत्यक्ष जानता है इसलिये वे पर्यायें विद्यमान हैं, भूतार्थ हैं ऐसा जानता है। अहाहा! भूत-भविष्यकी पर्यायें अविद्यमान होने पर भी ज्ञानमें प्रत्यक्ष ज्ञात होनेसे

www.vitragvani.com

ज्ञानमें विद्यमान ही है, भूतार्थ ही हैं ऐसा जानता है–यह ज्ञानकी दिव्यता है! यह ज्ञानस्वभावकी अचिंत्यता है। जो पर्यायें विद्यमान नहीं हैं तथापि ज्ञान उन्हें विद्यमानरूपसे जानता है तब चैतन्य महाप्रभु तो विद्यमान ही है, भूतार्थ ही है, उसे ज्ञान विद्यमानरूपसे क्यों नहीं जानेगा? वस्तु सत् है ना! विद्यमान है ना! तो उस महाप्रभुको तू विद्यमानरूपसे जान! अहाहा! जिसका अस्तित्व नहीं है उनका अस्तित्व जाने तो पूर्णानन्दका नाथ प्रभु वर्तमान विद्यमान ही है, मौजूद ही है उसे जान ना! भाई! अपनी दृष्टिके आलस्यमें विद्यमान प्रभुको देखना रह गया। जिसमें ज्ञान-आनन्दादि गुणोंकी अनन्तताका अन्त नहीं है ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु विद्यमान ही है उसे जान! ११९.

❀ ज्ञातापना ही आत्माका स्वरूप होनेसे उसमें रागका कर्तृत्व नहीं आता; क्योंकि उसके अनंत गुणोंमें 'रागको करना' ऐसा कोई गुण नहीं है। जो रागके एक कणका भी कर्तृत्व मानता है वह संपूर्ण लोकका कर्ता है। जो व्रतादि शुभभावका भी कर्ता होता है वह समस्त विश्वका कर्ता होता है; क्योंकि जैसे जाननेवाला एकको जाने तो वह सबको जानेगा ऐसा उसका स्वभाव है; वैसे ही अकर्तास्वभावसे–ज्ञातास्वभावसे भ्रष्ट जीव अपनेको एक अणुमात्र रागका कर्ता माने–राग मेरा कार्य है ऐसा माने–तो उसमें समस्त लोकका कर्तृत्व आ जाता है। १२०.

❀ मैंने अपने परमभावको ग्रहण किया है। उस परमभावके सामने इन्द्र और चक्रवर्तीके वैभवकी तो क्या बात! किन्तु तीनलोकका वैभव भी तुच्छ लगता है। और तो क्या, किन्तु अपनी स्वाभाविक निर्मल पर्याय भी, मैं द्रव्यदृष्टिके बलसे कहता हूँ कि मेरी नहीं है। परद्रव्य तो मेरे है ही नहीं, अंतरमें रागादिभाव होते हैं वे भी मेरे नहीं हैं, किन्तु द्रव्यदृष्टिके बलसे मुझे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई है उसकी भी मुझे कोई विशेषता नहीं है। मेरा द्रव्यस्वभाव तो अगाध....अगाध है, उसके समक्ष निर्मल पर्यायकी क्या विशेषता? दया–दान–भक्ति आदिके शुभ रागकी तो क्या बात, किन्तु अनन्त शक्तिमय अगाध चैतन्यस्वभावके निकट प्रगट हुई निर्मल पर्यायकी भी विशेषता नहीं है। ऐसी द्रव्यदृष्टि कब प्रगट होती है?–कि चैतन्यकी अपार-अपार महिमा लाकर, निमित्तसे, रागसे, पर्यायसे–सबसे विमुख होकर अपने स्वभावकी ओर उन्मुख हो तब प्रगट होगी। अहाहा! १२१.

❀ वस्तु अबंधस्वरूप है, उसे दृष्टिमें लेना वह महान पुरुषार्थ है। निर्विकल्प शुद्ध परिणति द्वारा वस्तु दृष्टिमें आती है। पर्यायमें बंध–मोक्ष है किन्तु द्रव्यमें बंध-मोक्ष हैं ही नहीं। पर्यायमें बंधभाव है और उसके अभावसे मोक्ष होता है, किन्तु त्रैकालिक वस्तुमें बंध

www.vitragvani.com

है ही नहीं। वस्तुस्वभावमें बंध क्यों होगा? वस्तुमें बंध हो तो वस्तुका अभाव हो जाये। शुद्ध निश्चयसे वस्तुमें बंध नहीं है, इसलिये बंधके अभावसे होनेवाला मोक्ष भी वस्तुमें नहीं है। ऐसी वस्तुकी दृष्टि करना वह महा पुरुषार्थ है। ज्ञायकभावमें बंध-मोक्ष कहाँसे आयेंगे? पर्यायके बंध-मोक्ष वस्तुमें नहीं है। निर्मल परिणति भी द्रव्यकी नहीं है। आचार्यदेव द्रव्यका स्वरूप बतलाने, उसकी दृष्टि कराने और पर्याय दृष्टि छुड़ाने हेतु कहते हैं कि पर्यायको द्रव्य करता ही नहीं है। १२२.

❁ सचमुच एक वस्तु दूसरी वस्तुकी नहीं है इसलिये दोनोंके प्रदेश भिन्न हैं। शरीरादि परद्रव्य तो आत्म-वस्तुसे भिन्न हैं ही किन्तु यहाँ तो मिथ्यात्व राग-द्वेषके जो परिणाम हैं वे निर्मलानन्द प्रभु ऐसे आत्मासे भावसे भिन्नस्वरूप हैं। पुण्य-पापभाव वे आत्मासे भावसे भिन्न हैं; भावसे भिन्न होनेके कारण उनके प्रदेश भी भिन्न हैं। असंख्य प्रदेशी आत्मा है उससे आस्रवके प्रदेश भिन्न हैं; वे हैं तो जीवके असंख्य प्रदेशोंमें ही, किन्तु निर्मलानन्द प्रभु असंख्य प्रदेशी ध्रुव है उससे आस्रवभावके प्रदेश भिन्न हैं। आत्मा और आस्रवकी भावसे भिन्नता है इसलिये उसके प्रदेशको भिन्न कहा है और आत्माके आश्रयसे प्रगट हुई निर्मल पर्यायको भी आस्रववस्तुसे भिन्न कहा है। भावसे भिन्न होनेके कारण उसके प्रदेशको भी भिन्न कहकर आस्रववस्तु भी भिन्न है ऐसा कहा। १२३.

❁ भगवान कहते हैं कि भाई! तू परमपारिणामिक वस्तु है, तू पूर्ण है। तू अपनेको पामर न मान। तू विकारी पर्यायका कर्ता नहीं है, अरे! अविकारी पर्यायका भी कर्ता तू नहीं है ऐसा तू अपनेको मान। जिस प्रकार तेरे स्वद्रव्यमें परद्रव्यका अभाव है, परद्रव्यका अंश तेरे स्वद्रव्यमें नहीं आता इसलिये तू परद्रव्यका अकर्ता है, वैसे ही पर्यायकी सत्ता ध्रुवमें एकरूप नहीं होती, पर्यायकी सत्ता ध्रुवकी सत्तासे भिन्न है इसलिये निर्मल पर्यायका कर्ता स्वद्रव्य–शुद्ध पारिणामिक भाव नहीं है। १२४.

❁ राग जीवकी ही पर्यायमें होता है और इसलिये प्रमाण-अपेक्षासे द्रव्य और पर्याय एक वस्तु होने पर भी द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल शुद्ध एवं ध्रुव ज्ञायकरूप है और रागादि पर्याय तो जीववस्तुका क्षणिक विभाव है; इसलिये ध्रुवद्रव्य और क्षणिक विभाव पर्यायके बीच तद्-अभाव स्वरूप अन्यत्व है। दोनों भिन्न हैं। रागादि विभाव तो भिन्न हैं ही, किन्तु सम्यग्दर्शन निर्मल पर्यायें भी त्रैकालिक ध्रुवसे अतद्भावस्वरूपसे भिन्न हैं, क्योंकि एक समयकी निर्मल पर्यायमें पूर्ण ध्रुवतत्त्व नहीं आ जाता, वर्तमान पर्याय जितना नहीं हो जाता। ध्रुवमें जितना भावसामर्थ्य है उतना श्रद्धानमें आता है, किन्तु मूल ध्रुववस्तु क्षणिक पर्यायरूप नहीं हो जाती।

www.vitragvani.com

वस्तुका ध्रुव अंश और पलटता अंश संज्ञा- लक्षण-प्रयोजनकी अपेक्षासे भिन्न है। अहाहा! ऐसी बात कभी सुनी नहीं होगी। १२५.

❁ ध्रुव हूँ, शुद्ध हूँ और परिपूर्ण हूँ यह सब विकल्प हैं; भोगीके भोगका मूल हैं। पहले अशुभसे चिपका था फिर शुभसे चिपक गया, परन्तु वह तो ज्योंकी त्यों दशा है! दृष्टिको ध्रुव पर ले जानेवाली बात है। १२६.

❁ हे दुरात्मन्! हे दुष्ट आत्मा!! अरे तू क्या मान रहा है! रागसे भिन्न चैतन्यचमत्कार तेरी वस्तु है उसे तो तू जानता और मानता नहीं है और रागादिको अपनी चीज मानता है! तेरी दृष्टि मूढ़ है। रागमें सुखबुद्धिके कारण आनन्दकन्द प्रभु ढँक गया है। रागके विकल्पमें सुख है, आनन्द है ऐसा माननेवालेको स्वभावभावका लोप हो गया है। अन्य प्रकारसे कहा जाय तो राग है वह अजीव है, उस अजीवभावमें रुक जानेसे उसका जीवभाव विलुप्त हो गया है। जो रागको देखता है वह अजीवको देखता है–अचेतनको देखता है। राग है वह चैतन्यरूपी सूर्यकी किरण नहीं है इसलिये रागको अचेतन कहकर पुद्गल कहा है। श्रवण करनेका जो राग है वह भी पुद्गल है, वह चैतन्यस्वभावसे विपरीत स्वभाव है। हे दुरात्मन्! तू उस पुद्गलको क्यों अपना मानता है? १२७.

❁ वस्तु तो अजीव और आस्रव रहित है अब, उसकी जो दृष्टि पर्याय पर है उसे द्रव्य पर ले जाना है इतनी सी बात है। वस्तुमें तो अजीव और आस्रव हैं ही नहीं। पर्याय पर उसकी दृष्टि है उसे द्रव्य पर लगाना है। पर्याय सो मैं नहीं, ऐसा नहीं, किन्तु पर्याय ही भीतर ध्रुव पर जाये तब दृष्टि बदलेगी। पर्याय ध्रुव पर गई है उसे स्वयंको कब विश्वास होगा? कि जब ध्रुव पर पर्याय जानेसे आनन्दका अनुभव हो, अर्थात् उसका फल आये तो ध्रुव पर उसकी पर्याय गई है उसका स्वयंको विश्वास होता है। पर्यायके ऊपर तो उसकी दृष्टि अनादिसे है ही, अब द्रव्यके ऊपर दृष्टि ले जाये वह करना है। लाख बातकी बात यह है! १२८.

❁ संत कहते हैं कि जिनेन्द्रदेव गणधरोंकी सभामें ऐसा कहते थे कि–ध्रुव भगवान उत्पाद–व्ययकी या बंध-मोक्षकी पर्यायको नहीं करता, उसे जिनेद्रदेव जीव कहते हैं। बंध-मोक्षकी पर्यायको जो नहीं करता उसे हम जीव कहते हैं–ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। १२९.

❁ यह (–श्री समयसार गाथा ३०८) बहुत अच्छी गाथा है यह गाथा मोक्ष अधिकारकी चूलिका है। यहाँ आचार्यदेव आत्माका अकर्तापना बतलाते हैं। अकर्तापना अर्थात्

www.vitragvani.com

क्रमबद्ध द्वारा ज्ञायकस्वभावकी सिद्धि की है। एकके बाद एक हो और जिस समय जो पर्याय होना है वही हो उसका नाम क्रमबद्ध है। प्रत्येक द्रव्यकी जिस समय जो पर्याय होना है वही होती है अर्थात् उसे अन्य द्रव्य तो नहीं करता किन्तु उस पर्यायको वह द्रव्य भी इधर-उधर कर सके–बदल सके ऐसा भी नहीं है। क्रमबद्ध तो महासिद्धान्त है। क्रमबद्धका सच्चा निर्णय करते हुए दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर जाती है और तभी क्रमबद्धका यथार्थ निर्णय होता है। क्रमबद्धपर्यायके आश्रयसे क्रमबद्धका निर्णय नहीं होगा। अकर्तास्वभावकी दृष्टि करनेसे क्रमबद्धका यथार्थ निर्णय होता है। इसलिये क्रमबद्धके निर्णयमें पुरुषार्थका निषेध नहीं हो जाता किन्तु क्रमबद्धके निर्णयमें द्रव्यस्वभावका अनंत पुरुषार्थ है। अकर्तापना वह नास्तिका कथन है। क्रमबद्धके द्वारा यहाँ ज्ञायकस्वभावकी सिद्धि की गई है। १३०.

❀ तीनों काल और तीनों लोकमें शुद्ध निश्चयनयसे मात्र ज्ञानरस एवं आनन्दकन्द प्रभु मैं हूँ। ऐसा मैं हूँ वह दृष्टि सो आत्मभावना है। मैं ऐसा हूँ और सर्व जीव भगवत्स्वरूप है, सर्व जीव परमात्मस्वरूप हैं। वस्तुरूपसे सब जीव ऐसे हैं। ऐसे आत्माको अनुभवनेका नाम ही सम्यग्दर्शन–ज्ञान और उसमें स्थिर होना सो सम्यक् चारित्र है। इस प्रकार मन-वचन-कायासे तथा कृत-कारित-अनुमोदनासे सब जीव ऐसे हैं।–इस प्रकार निरन्तर अर्थात् अन्तर किये बिना यह भावना करने योग्य यह कर्तव्य है। इसके सिवा दूसरा कुछ करने योग्य माने वह आत्माका अनादर है। १३१.

❀ शास्त्र पढ़कर करना तो यह है कि–आत्मभावना करना। कैसे?–कि त्रैकालिक ज्ञानानन्द सहजस्वभावी सो मैं हूँ। श्रीमद् राजचंद्रने भी कहा है कि– 'आत्मभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे'.....यह वही आत्मभावना है। स्व-भाविक ज्ञान और आनन्द जिसका एक स्वभाव है वह मैं हूँ परन्तु भेद मैं नहीं हूँ। राग तो मैं नहीं हूँ किन्तु भेद भी मैं नहीं हूँ; मैं तो स्वाभाविक सहज शुद्धज्ञान एवं आनन्द जिसका स्वभाव है ऐसा एक शुद्ध हूँ। शास्त्र पढ़कर करना तो यह है; यही चारों अनुयोगोंका सार है। कैसा है ज्ञानानन्द?— कि स्वाभाविक सहज शुद्ध है, कृत्रिम नहीं है। परका कर्ता तो नहीं है किन्तु रागयुक्त हूँ ऐसा भी नहीं है। अरे! पर्यायवान हूँ ऐसा भी नहीं है। श्री समयसारकी ३२०वीं गाथाकी श्री जयसेनाचार्यकृत टीकामें आता है कि–ध्याता पुरुष ऐसा ध्याता है कि जो सकल निरावरण–अखण्ड–एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वर–शुद्ध–पारिणामिकपरमभावलक्षण निजपरमात्म-द्रव्य सो मैं हूँ,' परंतु ऐसा नहीं ध्याते कि खण्डज्ञानरूप मैं हूँ। १३२.

www.vitragvani.com

❁ श्रोता :—परकी पर्यायको परद्रव्य कहो, किन्तु स्वकी निर्मल पर्यायको भी परद्रव्य क्यों कहते हो?

पूज्य गुरुदेव :—परद्रव्यके लक्षसे होनेवाले रागकी भाँति निर्मल पर्यायके लक्षसे भी राग उत्पन्न होनेसे वह भी वास्तवमें परद्रव्य है। उसे द्रव्यसे सर्वथा भिन्न है–ऐसा जोर दिये बिना दृष्टिका जोर द्रव्य पर नहीं जाता। इसलिये निर्मल पर्यायको भी परद्रव्य, परभाव तथा हेय कहा है। जिसे पर्यायका प्रेम है उसका लक्ष परद्रव्यके ऊपर जाता है, इसलिये उसे परद्रव्यका ही प्रेम है। परम सत्स्वभाव ऐसे द्रव्यसामान्यके ऊपर लक्ष जाना वह अलौकिक बात है। १३३.

❁ वर्णादि पुद्गल जीवमें नहीं हैं यह तो ठीक, तथा रागादि विकार भी जीवमें नहीं हैं यह भी ठीक, परन्तु संयमलब्धिस्थान तथा गुणस्थानके जो भेद होते हैं वे भी जीवमें नहीं हैं क्योंकि अनुभूतिमें भेद भासित नहीं होता, इसलिये वे भेद जीवमें नहीं हैं किन्तु पुद्गलके परिणाम हैं ऐसा कहा है। १३४.

❁ जिसने आत्मामेंसे राग-द्वेषका नाश किया, अल्पज्ञताका नाश किया तथा वीतराग सर्वज्ञपना प्रगट किया है उन परमात्मा जैसा ही मैं हूँ। मेरी और परमात्माकी जातिमें कोई अन्तर नहीं है। भगवान सर्वज्ञने जो दशा प्राप्त की है वैसी दशा धारण करनेवाला शक्तिवान मैं स्वयं ही जिनेन्द्र हूँ। १३५.

❁ वास्तवमें तो विकारी पर्याय पर्यायके कारण होती है। ज्ञायक प्रभु उसका भी ज्ञाता-दृष्टा है, और संवर-निर्जरा पर्याय भी पर्यायके कारण तथा मोक्षकी पर्याय भी पर्यायके कारण होती है। मोक्षमार्गके कारण मोक्ष होता है–ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तवमें तो पर्याय पर्यायकी योग्यताके कारण होती है। १३६.

❁ परमात्मदशा भी द्रव्यमें नहीं है, उससे रहित है। अहाहा! द्रव्य पर लक्ष गये बिना उसे प्रतीतिमें जोर नहीं आ सकता, जोर आता ही नहीं है। पर्यायका लक्ष छोड़कर मैं तो यही वर्तमानमें हूँ–इस प्रकार द्रव्यमें एकमेक हो जाता है तभी प्रतीतिमें जोर आता है। १३७.

❁ ज्ञायकस्वभाव लक्षमें आनेपर क्रमबद्धपर्याय यथार्थ समझमें आ सकता है। जो जीव पात्र होकर अपने आत्महितके लिये समझना चाहता है उसे यह बात यथार्थ समझमें आ जाती है। जिसे ज्ञायककी श्रद्धा नहीं है, सर्वज्ञकी प्रतीति नहीं है, अंतरमें वैराग्य जागृत नहीं हुआ और कषायकी मंदता भी नहीं है ऐसा जीव तो ज्ञायकस्वभावके निर्णयका पुरुषार्थ छोड़कर क्रमबद्धके नामसे स्वच्छन्दताका पोषण करता है, ऐसे स्वच्छन्दी जीवकी यहाँ बात नहीं है। जो जीव

www.vitragvani.com

क्रमबद्धपर्यायको यथार्थरूपसे समझता हो उसे स्वच्छन्दता हो ही नहीं सकती। क्रमबद्धको यथार्थ समझे वह जीव तो ज्ञायक हो जाता है उसके कर्तृत्वके उफान शान्त हो जाते हैं और परद्रव्यका तथा रागका अकर्ता होकर ज्ञायकमें एकाग्र होता जाता है। १३८.

❀ क्रमबद्धपर्यायसे जिसे सचमुच अकर्तृत्वका ख्याल आया हो वह अर्थात् जो कर्तृत्वके दुःखसे थक गया है उसे क्रमबद्धकी प्रतीति होने पर वह परके कर्तृत्वसे हटकर आत्माकी ओर आता है। जिस कालमें जो पर्याय होना हो वही होती है, तीर्थंकरको भी जो पर्याय होना हो वही होती है, उसे ईधर-उधर या आगे-पीछे नहीं कर सकते। इस प्रकार क्रमबद्धकी प्रतीति होने पर जो कर्तृत्वबुद्धिसे थक गया है वह परके कर्तृत्वके अभिमानसे थककर आत्मोन्मुख होता है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। संसारसे सचमुच थके हुएको ही सम्यग्दर्शन होता है। उसे ऐसा लगता है कि मुझे कुछ नहीं चाहिये अर्थात् मैं कुछ करूँ और उससे मुझे कुछ प्राप्त हो ऐसी स्पृहा नहीं है। क्रमबद्धकी दृष्टिवानको प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय स्वयं क्रमबद्ध होती है ऐसा निर्णय हो गया है। १३९.

❀ प्रत्येक पदार्थकी पर्याय क्रमबद्ध होती है इसलिये परद्रव्यकी पर्यायको बदलना तो रहा नहीं, किन्तु अपनी पर्याय जो क्रमानुसार होना है वही होती है इसलिये उसे भी बदलना नहीं रहा। जो पर्यायें क्रमानुसार होना हैं उनका ज्ञाता ही है। अहाहा! यह वीतरागता है। भगवान सर्वज्ञके देखे अनुसार प्रत्येक द्रव्यकी तीनोंकालकी पर्यायें जिस काल जो होना हैं वही होना हैं। भगवानने देखी हैं इसलिये होना हैं ऐसा नहीं, किन्तु प्रत्येक द्रव्यकी पर्यायें स्वयंसे ही क्रमबद्ध जो होना हैं वही होती है। उन्हें दूसरा तो कोई बदल नहीं सकता किन्तु स्वयं भी अपनेमें होनेवाले क्रमानुसार परिणामको बदल नहीं सकता, मात्र जान सकता है। क्रमबद्धपर्यायका निर्णय होने पर दृष्टि द्रव्य पर जाती है तब क्रमबद्धपर्यायका सच्चा निर्णय होता है। पर्यायक्रमकी ओर देखनेसे क्रमबद्धका सच्चा निर्णय नहीं हो सकता। ज्ञायककी ओर ढलता है तब ज्ञायकका सच्चा निर्णय होता है और उस निर्णयमें अनंत पुरुषार्थ आता है। ज्ञानके साथ आनन्दका स्वाद आये तो उसे सम्यग्दर्शन हुआ है। सर्वज्ञने देखा वैसा होता है, पर्याय क्रमबद्ध होती है उस निर्णयका तात्पर्य ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि करना है। आत्मा कर्ता नहीं है किन्तु ज्ञाता ही है। १४०.

❀ अहाहा! सारी दुनियाका विस्मरण हो जाय ऐसा तेरा परमात्मतत्त्व है। अरेरे! तीन लोकका स्वामी होकर रागमें रुक गया! रागमें तो दुःखकी ज्वाला है, वहाँसे दृष्टि हटाकर

www.vitragvani.com

जहाँ सुखका सागर भरा है वहाँ दृष्टि लगा दे! रागको भूल जा! तेरे परमात्मतत्त्वको पर्याय स्वीकार करती है, किन्तु पर्यायरूप मैं हूँ वह भी भूल जा! अविनाशी भगवानके समक्ष क्षणिक पर्यायका क्या मूल्य है? पर्यायको भूलनेकी बात है तब राग और शरीरकी बात कहाँ रही? अहाहा? एकबार मुर्दे खड़े हो जायें ऐसी बात है अर्थात् सुनते ही उछलकर अंतरमें जाये ऐसी बात है। १४१.

❁ अहा! आनन्दका सागर अपने अंतरमें उछल रहा है उसे तो जीव देखता नहीं है और तृणतुल्य तुच्छ विकारको ही देखता है! अरे जीवो! इधर अंतरमें दृष्टि करके सागरको देखो!....चैतन्यसमुद्रमें डुबकी लगाओ! १४२.

❁ सम्यक्त्व-सन्मुख जीवको चैतन्यका लक्ष बँध गया है, इसलिये उसका जोर चैतन्यकी ओर मुड़ रहा है.....यही स्वभाव है....यही स्वभाव है–इस प्रकार स्वभावमें जोर होनेसे हम उसे अल्प ऋद्धिवान क्यों देखें? मिथ्यादृष्टि होने पर वह सम्यक्त्वसन्मुख हो गया है वह सम्यक्त्व लेगा ही। १४३.

❁ यह आत्मा ही जिनवर है, तीर्थंकर है; अनादिकालसे ही जिनवर है! अहाहा! अनन्त केवलज्ञानकी लता है। परन्तु जिनवरकी स्तुति करनेसे तो पुण्य-बंध होता है उसमें धर्म नहीं होता। अपने आत्माकी स्तुति करनेसे ही धर्म होता है। १४४.

❁ जीवोंको अभी अपने स्वभावका माहात्म्य ही नहीं आया है। भाषामें आत्माकी महिमा करते हैं किन्तु अंतरकी महिमा नहीं आती। किन्तु भाई! जब तक तू हृदयमें आत्माको स्थापित नहीं करेगा तब तक आत्मा हाथ नहीं आयेगा। 'अनुभवप्रकाश'में कहा है कि–जब तक तू संयोगमें, रागमें, पुण्यमें, पापमें, निमित्तमें या व्यवहारमें कहीं भी प्रभुता स्थापित करेगा–बड़प्पन मानेगा तब तक आत्मा हाथ नहीं आयेगा इसलिये अंतरमें अपनी प्रभुताका स्वीकार कर! मैं ही परमेश्वर हूँ ऐसा पहले निर्णय कर! विश्वास ला! १४५.

❁ जो वस्तु है उसके स्वभावकी सीमा नहीं होती, मर्यादा नहीं होती, उसे पराश्रय नहीं होता। जो स्वभाव है उसे पराश्रय क्यों होगा? अचिंत्य स्वभावमें अपूर्णता क्यों होगी? यह भगवान आत्मा साक्षात् परमेश्वरका ही रूप है। परमेश्वरमें तथा प्रत्येक भगवान आत्मामें कोई अन्तर नहीं है। ऐसे अपने आत्माको दृष्टिमें नहीं लेगा तब तक स्वसंवेदन प्रमाण नहीं हो सकेगा। अपने स्वभावकी महिमासे च्युत होकर परद्रव्य या पर भवमें कहीं भी किंचित् माहात्म्य आयेगा तब तक महिमायुक्त अपना निज आत्मा हाथ नहीं आयेगा। जो पर्याय

www.vitragvani.com

द्रव्यको दृष्टिमें लेती है उस पर्यायकी महिमाका भी पार नहीं है तब द्रव्यकी महिमाका तो कहना ही क्या? ऐसी महिमाकी जब तक प्रतीति नहीं होगी तब तक वीर्य स्वसंवेदनकी ओर नहीं मुड़ेगा। १४६.

❁ पहले विकल्प सहित दृढ़ निश्चय तो करे कि रागसे, निमित्तसे, खण्ड-खण्ड ज्ञानसे तथा गुण-गुणीके भेदसे भी आत्मा ज्ञात नहीं होता–इसप्रकार पहले निर्णयका दृढ़ स्तंभ लगाये! उससे परकी ओर जाता हुआ वीर्य तो वहीं रुक जाता है, भले अभी स्वोन्मुख होना बाकी है.....विकल्पयुक्त निर्णयमें भी विकल्पयुक्त नहीं हूँ ऐसा पहले दृढ़ करे! निर्णय पक्का होने पर राग अपंग हो जाता है, उसकी शक्ति कम हो जाती है। विकल्पयुक्त निर्णयमें स्थूल कर्तृत्व छूट जाता है और फिर भीतर स्वानुभवमें जाने पर निर्णय सम्यक्रूप होता है। १४७.

❁ देखो, यह इष्ट उपदेश! स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता होकर अनुभव कर सके ऐसी शक्तिका सत्त्व है। ज्ञेय या ज्ञाता होनेके लिये अन्यकी आवश्यकता हो ऐसा पराधीन वस्तुका स्वरूप ही नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वरने जैसे आत्मा देखा–जाना वैसा ही कहा है। भगवान यह प्रीतिभोज दे रहे हैं। भाई! तू हर्षित होकर अपने स्वभावका विश्वास करके ज्ञानकी डोर उसमें बाँध दे। परमें कहीं हर्षित होने जैसा नहीं है। स्वयं अपना स्वरूप समझकर, महिमा लाकर उसमें स्थिर होना ही योग्य है। १४८.

❁ स्व-परको जाननेकी योग्यता पर्यायकी अपनी है इसलिये उसे जाने तब ज्ञेय उसमें ज्ञात हुए ऐसा निकटताके कारण कहा जाता है। ज्ञानकी एक समयकी पर्याय अनन्त द्रव्योंको जानती है और पर्यायमें अनन्त द्रव्य ज्ञात होने योग्य हैं ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तवमें तो ज्ञानकी एक समयकी पर्याय स्वज्ञेयको–भगवान आत्माको जाने वहाँ अनन्त परज्ञेय उसमें ज्ञात हो जायें ऐसी उस पर्यायकी शक्ति है। १४९.

❁ आत्मा स्वभावसे परमात्मस्वरूप है। रागादि तो उसके नहीं हैं किन्तु अल्पज्ञता भी उसकी नहीं है, वह तो स्वयं सर्वज्ञ परमात्मा प्रभु है। उसके बदले ऐसा माने कि शुभाशुभभाव मेरे हैं, राग तथा दया-दानकी क्रियावान मैं हूँ तो उसने परमात्माको जड़ माना है। परमाणुमें होनेवाली क्रियाएँ जड़ हैं वह ठीक, किन्तु पुद्गलके संगसे होनेवाली पुण्य-पापकी क्रियाका भाव भी अचेतन है। उन्हें आत्माका माननेवाले आत्माको अजीव मान रहे हैं। १५०.

www.vitragvani.com

❁ इस जीवको बादर कहा, सूक्ष्म कहा, एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यंत कहा तथा पर्याप्त-अपर्याप्त कहा; देहकी संज्ञाको जीवसंज्ञा कही, वे सब परकी प्रसिद्धिके कारण 'घीका घड़ा' की भाँति व्यवहार अप्रयोजनार्थ हैं, प्रयोजनभूत नहीं हैं। 'घीका घड़ा' ऐसा व्यवहार है वैसे ही जीवस्थानवाला जीव व्यवहारसे कहा जाता है, परन्तु द्रव्यस्वरूप देखने पर वह असत्य है। १५१.

❁ संसार-अवस्था है तब तक जीवको रागके साथ तन्मयता है ऐसा जब तक जीव मानता है तब तक वह मिथ्यादृष्टि है। यदि संसार-दशामें भी जीव रागादिके साथ तन्मय हो जाये तो जीव रूपी हो जायेगा; क्योंकि रागादि अचेतन हैं उन्हें अपना माने तो उसने आत्माको अचेतन माना है। १५२.

❁ अरे! अशुद्ध परिणतिकी बात तो कहीं रह गई, किन्तु यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि चौथे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तककी जो निर्मलदशा है वह भी जीवकी नहीं है, जीवमें नहीं है, परन्तु वे सब पुद्गलद्रव्यके परिणाममय हैं। गजब बात कही है आचार्यदेवने! त्रैकालिक शुद्ध निर्विकल्प परमतत्त्वकी दृष्टिपूर्वक जो अयोगी केवलीका गुणस्थान पर्यायमें प्रगट हुआ वह भी सब पुद्गलके परिणाममय कहे हैं! क्योंकि यह सभी गुणस्थान जीवकी पर्यायस्थितिको बतलाते हैं, त्रैकालिक वस्तुस्वभावको प्रगट नहीं करते। उनके लक्षसे तो विकल्प उठते हैं, वस्तुस्वभावका लक्ष चूक जाता है। इसलिये वे जीवके नहीं हैं। तथा वस्तुस्वभावकी दृष्टि करने पर जो आत्मानुभव होता है उसमें परिपूर्ण त्रैकालिक शुद्ध परमतत्त्व ही मैं हूँ–ऐसा पर्यायमें अनुभव होता है, परन्तु निर्विकल्प वीतरागी परिणति सो मैं हूँ ऐसा अनुभव नहीं होता।–इस प्रकार चौदह गुणस्थान पर्यंतकी समस्त अवस्थाएँ–भेद स्वात्मानुभूतिसे भिन्न रह जानेसे, स्वभावमें उनका अभाव होनेसे, तथा उनके लक्षसे विकल्प उठते हैं इसलिये वे सब जीवके नहीं हैं, परंतु पुद्गलद्रव्यके परिणाममय कहे हैं। १५३.

❁ ज्ञान-आनन्दादि अनन्त वैभवसे भरपूर मैं ज्ञायकतत्त्व हूँ–ऐसा अंतरसे भेदज्ञान करे, व्यवहारके जो विकल्प आयें उनसे अपनेको भिन्न जाने, गेहूँ और कंकड़ भिन्न करे ऐसे ही भगवान आत्माको रागसे भिन्न करे, तो उसके बलसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा। भाई! तेरी वस्तु पुण्य-पापके विकल्पोंसे रहित ज्योंकी त्यों भीतर पड़ी है। एकबार प्रसन्न होकर देख कि–अहा! ऐसी वस्तु मैंने कभी दृष्टिमें नहीं ली थी। पर्यायके निकट भीतर प्रभु विराजता है वहाँ दृष्टिको–मति-श्रुतकी पर्यायको–ले जा, त्रैकालिक ध्रुवको ध्येय बना दे, तो तुझे

www.vitragvani.com

आत्माके दर्शन होंगे, और तुझे आश्चर्य होगा कि–'ओहो! यह मैं? ऐसे आत्मदर्शनके लिये तूने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।' १५४.

❀ मति-श्रुतज्ञानकी पर्याय जिस ओर झुकी है उसे प्रथम श्रुतज्ञानके सामर्थ्य द्वारा ज्ञानस्वभावी आत्माका दृढ़ निर्णय करके, अंतरमें जहाँ परमात्मस्वरूप प्रभु बिराजमान है वहाँ मोड़, उसके सन्मुख कर, ऐसा करनेसे तुझे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा। भाई! प्रथम तो भवका डर होना चाहिये। भवभीरु जीवको ज्ञानी गुरु कहते हैं कि भाई! तुम्हारी वस्तु पुण्य-पापके विकल्पोंसे रहित ऐसी की ऐसी अन्दर विद्यमान है। एकबार प्रसन्न होकर देख कि अहा! ऐसी वस्तु मैंने कभी दृष्टिमें ही नहीं ली। पर्यायके निकट अन्दर प्रभु विराजमान है वहाँ दृष्टिको—मति–श्रुतकी पर्यायको—ले जा, त्रिकाली ध्रुवको ध्येय बना तो तुझे आत्माके दर्शन होगें और विस्मय होगा कि—'ओहो! यह मैं? ऐसे आत्मदर्शनके लिये मैंने कभी भी वास्तविक कुतूहल नहीं किया। १५५.

❀ यह आत्मा गहरे-गहरे ध्रुवतलमें कितनी शक्ति रखता है?–कि वहाँ तो अपरिमित अनन्त ज्ञान, आनन्दादि अनन्तान्त गुणोंका भण्डार भरा है। ऐसे उस निज ज्ञायक भगवानकी सच्ची महिमा जिसे प्रतीतिमें आती है वह रागादि विभावसे इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे पूर्णानन्द स्वरूप अपने नाथके सिवा अन्य कुछ नहीं चाहिये'–ऐसी अंतरमें पक्की दृढ़ता पूर्वक 'मात्र ज्ञायक द्रव्य ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है। अरे! दुनिया प्रशंसा करे या निन्दा,–वह तो जगतकी बात है, उसके साथ मुझे क्या लेना-देना? आत्मस्वभावकी अद्भुत महिमा भलीभाँति समझमें आने पर मुमुक्षु जीव अंतरमें संसारसे इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे तो एक अपना आत्मद्रव्य ही चाहिये, अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं है–पूर्णानन्दस्वरूप जो त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव वह एक ही इष्ट है;–ऐसी दृढ़ता करके बस, 'ज्ञायक द्रव्यस्वभाव ही मैं हूँ, शरीरादि परवस्तु या रागादि परभाव सो मैं नहीं। दया, दान, व्रत, तपका विकल्प अथवा एक समयकी अधूरी–पूरी पर्याय मेरा त्रैकालिक स्वरूप नहीं है। अरे! ज्ञानादि गुणभेदरूप भी मैं नहीं हूँ, मैं तो अनन्त गुणोंका सागर एक शुद्ध अभेद भगवान ही हूँ; ऐसे भावरूप वह परिणम जाता है–सम्यग्दर्शन–ज्ञानरूप निर्मल भावरूप स्वयं हो जाता है। अन्य सब छोड़ देता है। चाहे शुभ राग हो या क्षायोपशमिक ज्ञान हो, वह सब त्रैकालिक द्रव्यस्वभावका आश्रय लेकर छोड़ देता है। जीव जब पर्यायका आश्रय छोड़ देता है और त्रैकालिक द्रव्यस्वभावका आश्रय करता है तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। १५६.

www.vitragvani.com

❀ श्रोता :—आत्मा परमें तो कुछ फेरफार नहीं कर सकता वह तो ठीक, किन्तु क्या अपनी पर्यायोंमें फेरफार करना भी उसके वशमें नहीं है?

पूज्य गुरुदेव :—अरे भाई! जहाँ द्रव्यका निर्णय किया वहाँ वर्तमान पर्याय स्वयं द्रव्योन्मुख हो गई; फिर तुझे कहाँ फेरफार करना है? मेरी पर्याय मेरे अपने द्रव्यमेंसे आती है ऐसा निर्णय करते ही पर्याय द्रव्योन्मुख हो गई, वह पर्याय अब क्रमशः निर्मल ही होती रहती है और शान्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार पर्याय स्वयं जहाँ द्रव्यमें अंतर्मग्न हो गई वहाँ उसे बदलना कहाँ रहा? वह पर्याय स्वयं द्रव्यके वशमें आ ही गई है। पर्याय आयेगी कहाँसे?–द्रव्यमेंसे; इसलिये जहाँ संपूर्ण द्रव्यको वशमें कर लिया (श्रद्धा-ज्ञानमें स्वीकार कर लिया) वहाँ पर्यायें वशमें हो ही गई हैं अर्थात् द्रव्यके आश्रयसे पर्यायें सम्यक्-निर्मल ही होने लगीं। जहाँ स्वभावका निर्णय किया वहीं मिथ्याज्ञान दूर होकर सम्यग्ज्ञान हुआ तथा मिथ्या श्रद्धा पलटकर सम्यग्दर्शन हुआ।–इसप्रकार निर्मल पर्यायें होने लगी वह भी वस्तुका धर्म है। वस्तुका स्वभाव बदला नहीं और पर्यायक्रमकी धारा नहीं टूटी। द्रव्यके ऐसे स्वभावका स्वीकार करनेसे पर्यायकी निर्मलधारा प्रारम्भ हो गई और ज्ञानादिका अनन्त पुरुषार्थ उसमें साथ ही आ गया।

स्व अथवा पर किसी द्रव्यको किसी गुणको या किसी पर्यायको पलटनेकी बुद्धि जहाँ नहीं रही वहाँ ज्ञान ज्ञानमें ही स्थिर हो गया, अकेला वीतरागी ज्ञाताभाव ही रह गया; उसकी अल्पकालमें मुक्ति होगी ही। बस, ज्ञानमें ज्ञाता-दृष्टापना रहना ही स्वरूप है, वही सबका सार है। अन्तरकी यह बात जिसे नहीं जमती उसे कहीं परमें या पर्यायमें फेरफार करनेका मन होता है। ज्ञाताभावसे च्युत होकर कहीं भी फेरफार करनेकी बुद्धि वह मिथ्या-बुद्धि है। १५७.

❀ सर्वज्ञके अस्तित्वको सिद्ध करके तेरी प्रगट पर्यायमें सिद्धत्व नहीं है उसमें सिद्धोंको स्थापित करते हैं, इसलिये तू सिद्धोंका लक्ष करके हमें सुनना, तू अवश्य सिद्ध होगा। वर्तमान पर्याय अल्पज्ञ होने पर भी तू श्रोता रूपसे श्रवण करने आया है वहाँ तेरी पर्यायकी इतनी शक्ति हम देखते हैं–हमारे ज्ञानमें ऐसा आया है कि तू अनन्त सिद्धोंको स्थापित कर सके ऐसा है! और तू भी वैसा देख सकता है! अहाहा! 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' का यह भाव तो देखो! अनन्त सिद्धोंको तेरी पर्यायमें स्थापित करते हैं; तू नहीं रख सकेगा ऐसा प्रश्न ही नहीं है। अनन्त सिद्धोंकी स्थापनासे तेरा लक्ष अब अल्पज्ञरूप नहीं रह सकेगा, अब सर्वज्ञके ऊपर तेरा लक्ष रहेगा; इसलिये सर्वज्ञता पर लक्ष रखकर हमें सुनना। १५८.

www.vitragvani.com

❁ कोई व्यक्ति हाथी या घोड़ेका रूप लेकर आये, वेश-परिवर्तन करे तो देखनेवालोंको कौतूहल उत्पन्न होता है; परंतु जीवने अपने त्रैकालिक ज्ञायक भगवानके दर्शन हेतु कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया। कौतूहल अर्थात् कौतुक, जिज्ञासा, आश्चर्य, महिमा। अहा! रागके परदेकी ओटमें भीतर यह त्रिलोकीनाथ ज्ञायक सम्राट कौन है–क्या वस्तु है उसे प्रेमपूर्वक देखनेका सच्चा कौतूहल ही जीवने कभी नहीं किया–वर्तमान पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुव प्रभुकी विस्मयता कभी नहीं आयी। १५९.

❁ जगतकी जो वस्तु जिस कालमें जैसी परिणमित होना है वह वैसी ही परिणमित होगी; उसका तो जीव कर्ता नहीं है, परंतु जो पर्याय होती है–निर्मल पर्याय होती है–उसका भी कर्ता नहीं है। वह पर्याय भी क्रमबद्ध होती है, उसका कर्ता भी ध्रुवतत्त्व नहीं है। स्वयं ज्ञानस्वरूप है ऐसी दृष्टि होने पर उस काल बाह्यमें जगतके जो परिणाम होते हैं वे क्रमबद्ध होते हैं ऐसा वह जानता है और वह जाननेकी पर्याय भी क्रमबद्ध होती है, उसका भी त्रैकालिक जीव कर्ता नहीं है। जगतके परिणाम–क्रिया तो क्रमबद्ध है ही, किन्तु स्वरूपकी दृष्टि करने पर जगतके परिणामको क्रमबद्ध जाननेवाली ज्ञानकी जो पर्याय होती है वह भी क्रमानुसार है ऐसा सम्यग्ज्ञानी जानता है। १६०.

❁ कर्तृत्वबुद्धि छूट जाये वह क्रमबद्धका प्रयोजन है। क्रमबद्धमें कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। परमें तो कुछ कर नहीं सकता और अपनेमें जो होना हो वह होता है, इसलिये अपनेमें भी राग होना है वह होता है उसे करना क्या? रागमेंसे भी कर्तृत्वबुद्धि छूट गई, भेद और पर्यायके ऊपरसे भी दृष्टि हट गई तब क्रमबद्धकी प्रतीति हुई। क्रमबद्धकी प्रतीतिमें तो ज्ञातादृष्टा हो गया। निर्मल पर्याय करूँ ऐसी बुद्धि भी छूट गई। रागको करूँ यह बात तो एक ओर रह गई किन्तु ज्ञान करूँ यह बुद्धि भी छूट जाती है। कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है और अकेला ज्ञान रह जाता है। जिसे राग करना है, राग रोकना है उसे यह क्रमबद्धकी बात जमी नहीं है। राग करो और राग छोड़ो यह भी आत्मामें नहीं है। आत्मा मात्र ज्ञानस्वरूप है। १६१.

❁ शुद्ध चैतन्यका ज्ञान शुद्ध दशामें हुआ, उस कालका ज्ञान ज्ञायकको भी जानता है और रागादिको भी जानता है; तथापि वह ज्ञान परका नहीं है। वह ज्ञान तो ज्ञानका ही है। चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि होने पर पर्यायमें स्व-परका ज्ञान प्रगट हुआ तब परका जानना हुआ वह स्व ही है अर्थात् राग सम्बन्धी ज्ञान हुआ वह रागके कारण हुआ है अथवा वह रागका ज्ञान है ऐसा नहीं है, किन्तु ज्ञानका ही ज्ञान है। १६२.

www.vitragvani.com

❁ परकी पर्याय तो जो होनेवाली हो वह होती ही है उसे मैं क्या करूँगा? और मुझमें जो राग आता है उसे क्या लाऊँगा? तथा मुझमें जो शुद्ध पर्याय आना है उसे मैं करूँ–लाऊँ ऐसे विकल्पसे भी क्या? अपनी पर्यायमें होनेवाला राग और होनेवाली शुद्ध पर्यायके कर्तृत्वका विकल्प वह स्वभावमें है ही नहीं। अकर्तृत्वका आना ही मोक्षमार्गका पुरुषार्थ है। १६३.

❁ शरीर तो एक ओर रह गया, परंतु खण्ड-खण्ड ज्ञान जिस पर्यायमें होता है वह भी ज्ञायकका परज्ञेय है; वह भावेन्द्रियको किस प्रकार जीतना कहा जाय?–कि प्रतीतिमें आनेवाली एक अखण्ड चैतन्यशक्ति, त्रैकालिक ज्ञायकशक्ति, ध्रुवशक्ति, उसके द्वारा, जो भिन्न है उसे, अपनेसे सर्वथा भिन्न करनेसे भावेन्द्रियको जीतना होता है। राग एवं पुण्य-पापके विकल्पकी वात तो कहीं रह गई किन्तु ज्ञानकी वर्तमान पर्यायमें क्षयोपशमका अंश प्रगट है उस भावेन्द्रियको प्रतीतिमें आनेवाले अखण्ड एक ज्ञायकत्व द्वारा सर्वथा भिन्न जानो–उसका नाम भेदविज्ञान है। १६४.

❁ जानने योग्य भी मैं, जाननेवाला भी मैं और अनन्त शक्तिरूप ज्ञाता भी मैं हूँ, तीनों मिलकर वस्तु तो एक ही है। परका कर्ता तो कहीं रह गया, किन्तु परका ज्ञाता भी नहीं हूँ। स्वयं ही ज्ञेय है, स्वयं ही ज्ञान है और स्वयं ही ज्ञाता है। विषय-कषायके परिणाम वह परज्ञेय हैं और आत्मा उनका ज्ञाता है ऐसा भी नहीं है। १६५.

❁ चक्षुके दृष्टांतसे जिस प्रकार ज्ञान अर्थात् आत्मा शरीरको, वाणीको अथवा शुभाशुभ–भावको देखता है, किन्तु पुण्य-पापके जो भाव हों उन्हें ज्ञान करता है या वेदता नहीं है। गणधरों और इन्द्रोंकी सभामें भगवान ऐसा कहते थे। त्रिलोकीनाथ परमेश्वरदेवकी यह वाणी है। यह महाविदेहसे आयी हुई वाणी है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहां गये थे और वहाँसे आकर इस शास्त्रकी रचना की है तथा श्री अमृतचंद्राचार्यदेवने उसकी टीका की है। भगवान कहते हैं कि–भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न प्रभु! तू तो रागका दृष्टा है किन्तु कर्ता-भोक्ता नहीं है। यदि ज्ञान रागका कर्ता हो तो वह आत्मा नहीं रहता, वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है। १६६.

❁ यहाँ तो परसे अपनेका समेट लेनेकी बात है। छह द्रव्य है वे ज्ञेय हैं ऐसा नहीं है, क्योकि छह द्रव्योंके कारण उन्हें जाननेकी पर्याय नहीं हुई है, किन्तु अपने ज्ञानसे ज्ञानकी पर्याय हुई है, इसलिये ज्ञानकी पर्याय ज्ञेय हुई है किन्तु छह द्रव्य ज्ञेय नहीं हैं। १६७.

www.vitragvani.com

❀ अहाहा! चैतन्य सम्राटका स्वभाव तो देखो, कैसा अगम्य है! केवलज्ञानकी पर्याय हो या मिथ्यात्वकी पर्याय हो अथवा सम्यग्दर्शनकी पर्याय हो, किन्तु ज्ञायकभाव एकत्व नहीं छोड़ता, ज्ञायकभाव तो ज्ञायकरूप ही रहा है। निगोदकी पर्याय अक्षरके अनन्तवें भाग रह गई है और केवलज्ञानकी पर्याय अनन्त अविभागप्रतिच्छेद सहित पूर्ण प्रगट हुई तथापि ज्ञायक-चैतन्यज्योति एकत्वको नहीं छोड़ती। स्वर्ग, नरक, निगोदादि अनेक पर्यायमें रहने पर भी चैतन्यज्योति एकत्व नहीं छोड़ती। नवतत्त्वमें प्राप्त हुआ आत्मा अनेकरूप दिखाई देता है, अनेक स्वांग धारण करता है, तथापि चैतन्यज्योति एकत्वको नहीं छोड़ती, आर्त्त–रौद्र ध्यानके अनेकरूप विचित्र शुभाशुभ भावोंके बन्धनमें आने पर भी चैतन्यज्योति कभी एकत्वको नहीं छोड़ती। अहाहा! ज्ञानज्योति नवतत्त्वोंकी संततिमें आने पर भी, अनेक स्वांग धारण करने पर भी अपना एकत्व नहीं छोड़ती। अहो! जिसका क्षेत्र मर्यादित होने पर भी जिसके कालका अन्त नहीं है, जिसके गुणोंका अंत नहीं है—ऐसी अनंतस्वभावी चैतन्यज्योति सदा एकरूप चैतन्यस्वरूप ही रही है। आत्मा वस्तु ही गंभीर स्वभावी है, उसकी गंभीरता भासित न हो तब तक सच्ची महिमा नहीं आती, उसकी गंभीरता भासने पर आत्माकी ऐसी महिमा आती है कि वह महिमा आते-आते विकल्पको लाँघ जाती है; विकल्पको तोड़ना नहीं पड़ता किन्तु टूट जाता है और अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होता है। १६८.

❀ भाई, यह वीतराग कथित तत्त्वकी बातें अति सूक्ष्म तथा अपूर्व हैं। जो पुण्य-पापके भाव हैं, राग-द्वेषके हैं, दया, दान, भक्ति, काम, क्रोधादिके भाव हैं–वे सब पुद्गलके परिणाम हैं। अहाहा! प्रभु! तेरी दशामें होनेवाले दया, दान, काम, क्रोधादिके भाव वह तेरे नहीं, किन्तु पुद्गलके परिणाम हैं। तू तो आनन्दस्वरूप शान्तिका सागर है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह दया, दान, क्रोधरूप कैसे परिणमित होगा? भाई! तेरा घर तो ज्ञानानन्दस्वरूप है उसमें स्थिर रहना वह तेरी वस्तु है। तू राग-द्वेष, सुख-दुःखरूप क्यों परिणमित होता है वह तो पुद्गलकर्मका स्वाद है, वह तेरा स्वाद नहीं है। जिस प्रकार जल और अग्निकी शीत-उष्ण पर्याय है वह पुद्गलकी है, पुद्गलसे अभिन्न है और उसका अनुभव–ज्ञान एवं आत्माकी पर्याय है, उसी प्रकार राग-द्वेष सुख-दुःखके परिणाम होते हैं वह पुद्गलकी पर्याय है, पुद्गलसे अभिन्न है, और उसका अनुभव-ज्ञान वह आत्माकी पर्याय है। जिस प्रकार शीत-उष्ण दशारूप आत्माका परिणमित होना अशक्य है, उसी प्रकार राग-द्वेष, सुख-दुःखरूप परिणमना भी अशक्य है। जिसने शुभ-अशुभकी कामनासे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माका अनुभव किया है उस ज्ञानीका शुभाशुभरूप होना अशक्य है। भले अपूर्ण दशामें राग होगा,

www.vitragvani.com

किन्तु उसके ज्ञाता रहते हैं। अहाहा! यहाँ रागादि परिणामको आत्मासे भिन्न पुद्गल-परिणाम कहते हैं और जगत उस शुभरागसे धर्म होना मानता है! वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कथित तत्त्व जगतको कठिन लगे ऐसा है। ऐसी बातें तो जिनका भाग्य हों उन्हें सुननेको मिलती हैं। अरबों रुपये मिलते हों उन्हें यहाँ भाग्यशाली नहीं कहते! अलौकिक बातें हैं। १६९.

❁ संत कहते हैं कि भाई! पर्यायको देखनेकी अपनी आँखको सर्वथा बन्ध कर दे! देव-गुरु पंचपरमेष्ठि आदिको देखना तो बन्ध कर दे, किन्तु भाई! अपनी पर्यायको देखनेकी आँखको बन्द करके अपने द्रव्यको देखनेकी आँख खोलकर देख। भाई! यह तो प्रवचनसार अर्थात् संतोंका हृदय कलेजा है। वे संत ऐसा कहते हैं कि भाई! अपनी पर्यायको देखनेकी आँख सर्वथा बन्द कर दे। नरकादि पर्यायको देखनेकी आँख तो बन्द कर दे, परन्तु सिद्धपर्यायको देखना भी छोड़ दे तो तेरे द्रव्य भगवानको देखनेके चक्षु खुल जायेगा भाई! एक बार देख तो सही! प्रभु तू कौन है? जहाँ पर्यायको देखनेकी आँख बन्द की वहाँ द्रव्यको देखनेका ज्ञान विकसित हो गया। पर्यायको देखनेकी आँख बन्द की, वहाँ द्रव्यको देखनेकी आँख खुल गई। अब वह भगवान छिपा नहीं रह सकेगा! १७०.

❁ प्रत्येक पर्याय सत् है, स्वतंत्र है, उसे परकी अपेक्षा नहीं है। रागका कर्ता तो आत्मा नहीं है किन्तु रागका ज्ञान कहना वह भी व्यवहार है और ज्ञानपरिणामको आत्मा करता है ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। वास्तवमें तो उस कालकी पर्याय षट्कारकसे स्वतंत्र हुई है। १७१.

❁ वास्तवमें तो मैं स्वयं ही हूँ और अन्य वस्तु है ही नहीं। मैं ही एक हूँ, मेरे हिसाबसे दूसरी वस्तु ही नहीं है। केवली हों, सिद्ध हों वे उनके हिसाबसे भले हों, परन्तु मेरे हिसाबसे नहीं हैं–इस प्रकार स्वभावकी अपेक्षासे राग भी अपना नहीं है। देह-धन-स्त्री-पुत्रादि तो उसके हैं ही नहीं, किन्तु राग भी उनका नहीं है। ज्ञानस्वरूप अकेला मैं ही हूँ–ऐसा जोर आना चाहिये।

श्रोता :—मैं ज्ञाता ही हूँ ऐसा जोर नहीं आता वह कैसे आयेगा?

पूज्य गुरुदेव :—जोर स्वयं नहीं लगाता इसलिये नहीं आता। सांसारिक बाह्य प्रसंगोंमें कितनी रुची और उत्साह आता है! वैसे ही अंतरमें अपने स्वभावकी रुचि और उत्साह आना चाहिये। १७२.

❁ जैसे सर्वज्ञको लोकालोक ज्ञेय है, लोकालोकको सर्वज्ञ जानते हैं, वैसे ही

www.vitragvani.com

सर्वज्ञस्वभावीको दृष्टिमें लिया है ऐसा सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञकी भाँति रागको जानता ही है। सर्वज्ञको ज्ञान करनेमें लोकालोक निमित्त है, वैसे ही सम्यग्दृष्टिको जाननेमें राग निमित्त है। सम्यग्दृष्टि रागको करता नहीं है किन्तु लोकालोकको जाननेवाले सर्वज्ञकी भाँति सम्यग्दृष्टि रागको जानता है–ऐसी वस्तुस्थिति है और ऐसा ही अंतरसे बैठता है, ऐसा ही अंतरसे आता है और ऐसी ही वस्तुकी स्थिति है। यह बात तीनकाल तीनलोकमें बदले ऐसी नहीं है। अन्य रीतिसे बैठाने जाय तो किसी प्रकार वस्तु सिद्ध नहीं हो सकेगी। यह तो भीतरसे आयी हुई वस्तुस्थिति है। शास्त्र भले अनेक प्रकारसे कहें परन्तु वस्तु ऐसी ही है और ऐसी ही भीतरसे आयी है। यह तो अनुभवसे ही उद्धार है! १७३.

❀ स्वभावसे ही मैं ज्ञायक होनेके कारण संपूर्ण विश्वके साथ मुझे ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध है, परन्तु यह ज्ञेय इष्ट-अनिष्ट है अथवा ज्ञेयके कारण ज्ञान होता है अथवा यह ज्ञेय मेरा और मैं इसका स्वामी ऐसा किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। ज्ञायकका सर्व ज्ञेयोंको जाननेका स्वभाव होनेसे मानों लोकालोक ज्ञायकमें उत्कीर्ण हो गये हों इस प्रकार एक क्षणमें जान लेता है। ऐसे ज्ञेय-ज्ञायक-लक्षण सम्बन्धके कारण एकसाथ अनंत ज्ञेयोंको अनंतरूपसे जानने पर भी ज्ञायक तो सदा ज्ञायकरूप ही–एकरूप ही रहा है। अनादिसे ज्ञायक तो ज्ञायकभावसे ही रहा है, किन्तु मिथ्यात्वके कारण अन्यथा माननेमें आ रहा है, इसलिये उस मिथ्यात्वका मूलसे उखाड़कर स्वभावसे ही ज्ञायक ऐसे आत्मतत्त्वके ज्ञानपूर्वक शुद्धात्मामें प्रवर्तनके सिवा अन्य कुछ करने योग्य नहीं है। १७४.

❀ प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा व्याप्यलक्षणवाला पुद्गल द्रव्यके परिणामस्वरूप कर्म अर्थात् भक्ति, पूजा, दया, दानादिके शुभ परिणाम उसके आदि-मध्य-अन्तमें पुद्गलद्रव्य स्वयं अन्तर्व्यापक होकर परिणमता है, ग्रहण करता है तथा उपजता है। अहाहा! रागादि परिणाममें पुद्गल द्रव्य स्वयं अन्तर्व्यापक होकर रागरूप परिणमित होता है, रागको ग्रहण करता है, रागरूप उत्पन्न होता है। जीव उस रागके आदि-मध्य-अन्तमें व्यापक होकर परिणमित नहीं होता, ग्रहण नहीं करता अथवा रागरूप उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि जीव तो मात्र ज्ञायकभावस्वरूप है, वह ज्ञायकभाव दया, दान, भक्ति आदि रागरूप ऐसे पुद्गलकर्मको क्यों करेगा? भक्ति, विनय, वैयावृत्य आदिके भावके आदि-मध्य-अन्तमें पुद्गलद्रव्य व्यापक होकर रागको करता है। अहाहा! तीन लोकका नाथ चैतन्यस्वभाव वह रागादि परिणामोंको नहीं करता। ज्ञायक प्रभु उन रागादि परिणामोंमें व्याप्त नहीं होता। चारित्रमोहकी अशक्तिसे भी जीव रागादिभावोंको नहीं करता–इस प्रकार यहां अकेले द्रव्यस्वभावको सिद्ध करना है। अरे

www.vitragvani.com

प्रभु! कहाँ तेरी महानता और कहाँ विभावकी तुच्छता? तुच्छ ऐसे विभावभाव तुझसे कैसे होते हैं? तू तो ज्ञातास्वभावी है। तुझसे विकार कैसे होता है? अहाहा! द्रव्यदृष्टिके समयसारके कथन अलौकिक हैं। १७५.

❁ रागादि मुझमें हैं ही नहीं, विकल्पोंको मैं ला ही नहीं सकता, छोड़ भी नहीं सकता–ऐसा अन्तरसे निर्णय करना चाहिये। यों ही ऊपर ऊपरसे नहीं चलेगा। १७६.

❁ एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको करता तो नहीं है किन्तु स्पर्श भी नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय क्रमबद्ध होती है। आत्मा मात्र ज्ञायक परमानन्द स्वरूप है। यह भगवान सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिकी पुकार है। ऐसी अध्यात्मकी सूक्ष्म वस्तु इस काल जिन्हें अंतरमें रुचिपूर्वक परिणमित हो जाती है ऐसे जीवोंको एक-दो-चार भव ही होते हैं, अधिक नहीं होते हैं–ऐसा शास्त्रमें आता है। क्योंकि इस कालमें केवली, अवधिज्ञानी या मनःपर्ययज्ञानी नहीं हैं, आश्चर्यके कारण ऐसे इन्द्रादि देवोंका आगमन नहीं होता, चक्रवर्ती आदि कोई चमत्कारिक वस्तुएँ नहीं हैं; तथापि यह आध्यात्मिक सूक्ष्मतत्त्व अंतरमें रुच जाता है उसके भाव विशेष हैं; इसलिये उसे अधिक भव नहीं होते। १७७.

❁ भूल तो अनादिकी है उसका कोई आश्चर्य नहीं है। पलट जाना उसका आश्चर्य है। तीर्थंकरके आत्माने पूर्वभवमें केवलीयोंकी निन्दा की थी; उसमें कोई नवीनता नहीं है। उसे भूल जाना और बदल जाना उसकी विशेषता है। १७८.

❁ जिसमेंसे केवलज्ञानकी अनन्त पर्यायें प्रवाहित हों इतना वह है। एक सिद्ध पर्याय जितना नहीं। मुझमें तो अनंत भगवानकी अनन्त पर्यायें विद्यमान हैं– इतना मैं हूँ। १७९.

❁ सर्व प्रथम तो मुझमें शरीर-संसार-विकल्प है ही नहीं–ऐसा निर्णय करके अनुभव कर लेना चाहिए। १८०.

❁ श्रोता :—द्रव्यको बिलकुल बेकार बना दिया; क्या पर्यायको भी द्रव्य नहीं कर सकता?

पूज्य गुरुदेव :—अरे भाई! यह तो अन्तरकी–पेटकी मुख्य बात है। इसमें द्रव्य बेकार नहीं हो जाता, किन्तु अलौकिक द्रव्य सिद्ध होता है। क्रमबद्ध पर्यायका सिद्धांत तो सर्व आगमके मंथनका सार है। यह बात यहाँसे (पूज्य गुरुदेवसे) प्रगट हुई है। इससे पूर्व यह बात सारे भारतमें कहीं नहीं थी। क्रमबद्ध तो परम सत्य है। जिस काल जो होना है

www.vitragvani.com

वही होगा; उसे इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र कोई बदलनेमें समर्थ नहीं है। क्रमबद्धमें अकर्तापना सिद्ध करते हैं। उसके संस्कार डाले होंगे वह स्वर्गमें जायेगा और वहाँसे सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। १८१.

❁ सर्वज्ञ इस आत्माको ज्ञायकस्वभावी जीवतत्त्व जानते हैं, पुण्य-पापके भाव होते हैं उन्हें आस्रवतत्त्व जानते हैं और शरीरादिको अजीवतत्त्व जानते हैं–इस प्रकार जब अपने ज्ञानको भी भिन्न-भिन्नपने जानता है तब भेदज्ञान होता है। १८२.

❁ प्रवचनसारमें कहते हैं कि शुभ अशुभ दोनों भाव दुःखरूप हैं। अशुभके फलमें नरक और शुभके फलमें स्वर्गके भोग प्राप्त होते हैं, परंतु उन भोगोंमें लक्ष जाये वह भाव भी अशुभ होनेसे दुःख है। इसलिये अशुभका फल नरक और शुभका स्वर्ग, वहाँ भी दुःख ही है, तब शुभ-अशुभके फलमें फेर कहाँ रहा? वे दोनों दुःखके कारण हैं, तो फिर शुभको अच्छा कैसे कहा जाये? प्रभु! जिसके फलमें दुःख है ऐसा शुभ तुझे रुचता क्यों है? १८३.

❁ देव-शास्त्र-गुरु कहते हैं कि हम तेरी ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेय हैं इसलिये तू ज्ञेयनिष्ठतासे हट जा। हमारी वाणी भी ज्ञेय है और ज्ञेयकी तत्परता वह संसार है। ज्ञायकमें तत्परता कर और हमारे प्रति जो तत्परता है उसे हटा दे। १८४.

❁ करुणापूर्वक कहा है कि अरे मूढ़मति! हम जिन पुण्य-पाप भावोंको अचेतन कहते हैं, जड़ पुद्गल कहते हैं उन्हें तू आत्मा मानता है इसलिये तू बड़ा अपराधी है। जा, नरक-निगोदमें, जा पुद्गलकी खानमें! चैतन्यकी खानमें नहीं जायेगा? १८५.

❁ श्रोता :—पर्याय उस कालकी सत् है, निश्चित है, ध्रुव है, ऐसा कहनेका क्या प्रयोजन है?

पूज्य गुरुदेव :—पर्यायके ऊपरसे लक्ष हटाकर ध्रुवद्रव्यकी ओर ढलनेका प्रयोजन है। पर्याय उस कालकी सत् है, निश्चित है, ध्रुव है, ऐसा बतलाकर उस परसे लक्ष हटाकर ध्रुवद्रव्य पर लक्ष करानेका प्रयोजन है। पर्याय निश्चित है, ध्रुव है, इसलिये उस समयकी पर्याय सत् होनेसे आगे-पीछे नहीं हो सकती, ऐसा जाने तो दृष्टि द्रव्यपर जायेगी और द्रव्य पर लक्ष जानेसे वीतरागता होगी। वीतरागता वह तात्पर्य है। अरे ऐसी बातें करोड़ों रुपये देने पर भी नहीं मिल सकती। अहाहा! जिसे जानने पर वीतरागता हो उसका मूल्य तो कितना होगा? १८६.

www.vitragvani.com

❁ मैं स्वभावसे ही ज्ञायक होनेके कारण विश्वके साथ मेरा मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है; कर्ता-कर्म या स्व-स्वामी आदि कोई सम्बन्ध है ही नहीं। कर्म ज्ञेय और मैं ज्ञायक हूँ। शरीरकी निरोग या रोग चाहे जैसी अवस्था हो वह मुझे अच्छी बुरी-नहीं है परंतु ज्ञेयरूप है और मैं ज्ञायक हूँ। अरे! विकार हो वह भी ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ। तीनलोकके नाथ विनय करने योग्य हैं और मैं विनय करनेवाला हूँ ऐसा भी नहीं है। तीर्थंकरदेव भी विश्वमें–ज्ञेयमें आते हैं और मैं ज्ञायक हूँ। समस्त विश्व ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ। इसके सिवा विश्वमें मेरा स्व और मैं उसका स्वामी ऐसा स्व-स्वामी सम्बन्ध नहीं है; मैं कर्ता और वे मेरे कर्म ऐसा कर्ता-कर्म सम्बन्ध भी विश्वके साथ नहीं है। मेरा तो एक मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध ही है और वह भी व्यवहार है; परमार्थसे तो मैं ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय हूँ, इसलिये मुझे किसीके प्रति ममत्व नहीं है। १८७.

❁ नर-नारकादि जीवके विशेष, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध तथा संवर, निर्जरा, मोक्ष—इन नव तत्त्वोंसे एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव द्वारा अत्यन्त भिन्न होनेके कारण मैं शुद्ध हूँ। अहाहा! साधक-बाधककी पर्यायसे आत्माको अत्यन्त भिन्न कहा। शरीरादिसे तो अत्यन्त भिन्न है ही, पुण्य-पापादिसे भी अत्यन्त भिन्न है ही, किन्तु संवर-निर्जरा-मोक्षकी शुद्ध निर्मल पर्यायके व्यावहारिक भावोंसे भी मैं एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव द्वारा अत्यन्त भिन्न होनेसे शुद्ध हूँ। अहाहा! यहाँ समयसारकी ३८वीं गाथामें तो संवर, निर्जरा, मोक्षकी शुद्ध निर्मल पर्यायके व्यवहारिक भावोंसे भी आत्माको अत्यन्त भिन्न कहकर दिगम्बर संतोंने अंतरकी पेटकी बातें खोलकर रख दी हैं। ऐसी बातें अन्यत्र कहीं नहीं हैं। अहाहा! जगतके महाभाग्य हैं कि ऐसी बातें रह गई हैं। १८८.

❁ भीतर जो ज्ञायकभाव प्रभु है उसमें दया-दान-व्रतके परिणाम नहीं हैं सो नहीं हैं, परन्तु जिसमें अप्रमत्त या प्रमत्तदशा भी नहीं है ऐसा ज्ञायकभाव है। ज्ञाता...ज्ञाता...ज्ञाता...चैतन्य...चैतन्य स्वभाव ज्ञायकभाव है, सम्यग्दर्शनका विषय ज्ञायक- भाव है, वह ज्ञायकभाव अप्रमत्त या प्रमत्त नहीं है। तेरहवाँ चौदहवाँ गुणस्थान भी ज्ञायकभावमें नहीं है। जैसे तेलकी बूँद पानीके दलमें प्रवेश नहीं कर सकती उसी प्रकार ज्ञायकदलमें प्रमत्त-अप्रमत्तदशा नहीं है, क्योंकि ज्ञायकभाव प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं होता। १८९.

❁ भगवान कहते हैं कि प्रभु! तेरे और हमारे आत्माकी जातिमें कोई फेर नहीं है। इतना ही फेर है कि तूने अपना स्वरूप प्रगट नहीं किया, इसलिये निःशंकरूपसे अपने

www.vitragvani.com

परमात्मा समान आत्माकी निर्भ्रान्त–भ्रान्ति रहित–भावना कर! शक्तिरूपसे सर्व आत्मा भगवान हैं। तू अपनी चैतन्यसत्ताका स्वीकार कर! जानना.... जानना.....जानना–यह ज्ञातृत्वकी–ज्ञानशक्तिकी असीमता, अचिन्त्यता, अमापता है वही मैं हूँ; ज्ञायकके साथ रहा हुआ आनन्द भी मैं ही हूँ। अतीन्द्रिय, अपार एवं पूर्ण आनन्द मेरा ही स्वरूप है। ऐसे ज्ञान आनन्द स्वरूप आत्माकी दृष्टि करने पर–सत्यस्वरूपका स्वीकार करने पर पर्यायमें जो सत्यदशा प्रगट होती है वही वास्तवमें आत्माका निजधर्म है। १९०.

❁ मैं मुक्त ही हूँ, राग और उसके सम्बन्धसे बंधपना मुझमें है ही नहीं। समयसारकी १४वीं गाथामें कहा है कि–जो आत्माको अबद्धस्पृष्टादि भावोंरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप ही देखता है–अनुभवता है उसे शुद्धनय जानना। कर्म तो परवस्तु है, उसके साथ तो जीवको परमार्थतः सम्बन्ध है ही नहीं, किन्तु रागादि विभावोंके साथ भी वास्तवमें सम्बन्ध नहीं है। आत्मा तो रागादिके सम्बन्ध रहित अबंध वस्तु है। अबंध कहो या मुक्त कहो...अहा! दृष्टिने जब द्रव्यको लक्षमें लिया तब 'मैं मुक्त ही हूँ'–ऐसा अनुभव हुआ। १९१.

❁ भाई! तू अपने स्वभावमें एकाग्र हो न! समस्त लोकमें तुझसे विशेष और क्या हो? तू ही पूर्ण शुद्ध परमेश्वर है; सबसे अधिक है। अपने हितके मार्ग पर तू अकेला जा सकता है। तेरा मार्ग तुझसे अनजाना नहीं है। मुक्तिमें तू अकेला जा सकता है। अभी तक जो जीव मोक्षमें गये वे सब अपने स्वसंवेदनसे आत्माको जानकर ही मोक्षमें गये हैं। १९२.

❁ श्री नियमसार कलश १७६में कहते हैं कि आत्मा निरन्तर सुलभ है....अहाहा! आत्मा वर्तमानमें निरन्तर सुलभ है उसका तात्पर्य यह है कि आत्मा वर्तमानमें ही है उसका वर्तमानमें ही आश्रय ले! भूतकालमें था और भविष्यमें रहेगा इसप्रकार त्रिकाल लेनेसे उसमें कालकी अपेक्षा आती है; इसलिये वर्तमानमें ही त्रैकालिक पूर्णानन्दका नाथ विद्यमान है उसका वर्तमानमें ही आश्रय ले ऐसा कहते हैं। १९३.

❁ विकल्प सहित साधारण महिमा आये उसे महिमा नहीं कहा जाता। अंतरंग रुचि कहाँ है! अंतरंग रुचि हो तो वीर्य उल्लसित होना चाहिये, वह कहाँ होता है? सामान्य धारणा और माहात्म्य तो अनन्तबार आये, परन्तु सचमुच–यथार्थ माहात्म्य आना चाहिये यही तो बाकी रह गया है न! पहले स्वभावका माहात्म्य आता है और फिर उसकी उग्रता होने पर एकाग्रता होती है। १९४.

www.vitragvani.com

❁ ज्ञातृत्व....ज्ञातृत्व....चैतन्य प्रकाशका पुंज....मैं तो ज्ञायक हूँ–इस प्रकार पहले ऊपरी भावसे तो निर्णय कर! फिर गहराईसे निर्णय होगा। विकल्पसे अंतरमें विचार कर कि यह शरीर तो जड़–मिट्टी है और पुण्य-पापके भाव विकार हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ। फिर गहराईसे उसका निर्णय कर। किसी भी प्रकारसे उस मार्ग पर जा! शुभाशुभ भावोंसे भिन्न ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास कर! ज्ञाताका ज्ञातारूपसे अभ्यास कर! अन्य प्रकारसे नहीं किन्तु ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास कर...वह एक कर लिया तो सब हो गया–सब आ गया। १९५.

❁ परकी तो क्या बात, यहाँ तो रागका भी अधिकार नहीं है। जो रागका अधिकारी होता है वह द्रव्यका अधिकारी नहीं है; शुभाशुभ भावोंका स्वामी है वह आत्माका अधिकारी नहीं है। १९६.

❁ एकबार निहालभाईने ('द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में) कहा है कि विवेकको एक बाजू रखो और दूसरीबार कहा है कि विवेक चाहिये...पर्यायको अलग रखना चाहिये, पर्यायके ऊपर जोर नहीं होना चाहिये। उसका अर्थ ऐसा है कि ऐसा राग होना चाहिये और ऐसा नहीं होता....परन्तु राग जैसा होना होगा वैसा होगा....सम्यग्दृष्टिको स्वच्छन्दी राग नहीं होता, उसके योग्य–उसकी योग्यता अनुसार होगा; परन्तु उसका जोर देखना चाहिये कि यह खान है; उस खान पर दृष्टि होना चाहिये जोर वहाँ होना चाहिये। पर्यायका विवेक होता है परन्तु जोर तो खान पर होना चाहिये, पर्यायके ऊपर नहीं। १९७.

❁ श्री समयसारकी १४२वीं गाथाकी टीकामें आये हुए ७०वें कलशके भावार्थमें कहा है कि–इस ग्रंथमें प्रारंभसे ही व्यवहारनयको गौण करके तथा शुद्धनयको मुख्य करके कथन किया गया है। 'मैं बद्ध हूँ' आदि व्यवहारनयका तो निषेध करते ही आये हैं, परन्तु 'मैं अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ'–ऐसे जो निश्चयनयके विकल्प उठते हैं उनका भी हम निषेध करते हैं; क्योंकि स्वरूपमें प्रविष्ट होनेके लिये वे विकल्प कार्यकारी नहीं होते। ऐसे विकल्पों तक आया परन्तु 'उससे क्या?' उसमें तेरे आत्माको क्या लाभ हुआ? जब अंतर स्वरूपमें प्रवेश करके आनन्दके नाथका अनुभव करता है, तब वे सभी विकल्प छूट जाते हैं। १९८.

❁ मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, विभावसे भिन्न मैं तो ज्ञायक प्रभु हूँ, अनन्त विभूतिसे परिपूर्ण हूँ, ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ–इस प्रकार अंतरमें सच्ची आत्मप्रतीति करे तो उस अन्तरमुखताके बलसे निर्विकल्पता हो, विकल्प छूटें और अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप स्वात्मानुभूति

www.vitragvani.com

प्राप्त हो। धर्मी जीवको स्वानुभूति होनेके पश्चात् भी राग तो आता है, परन्तु वह उसका मात्र ज्ञाता है, स्वामी नहीं है, उसे अपना कर्तव्य नहीं मानता। बात कुछ सूक्ष्म है। अनन्तबार इस जीवने जैन श्रावक कुलमें जन्म लिया और द्रव्यलिंगी साधु हुआ, परन्तु अपना जो राग रहित, पूर्णानन्दसे भरपूर त्रैकालिक शुद्धस्वरूप है उस पर कभी दृष्टि नहीं दी, अन्तर्मुख होकर उसका अनुभव कभी नहीं किया। १९९.

❁ बंध-मोक्ष और उनके मार्गकी पर्याय है वह नाशवान है इसलिये त्रैकालिकको निश्चय आत्मा कहा है। केवलज्ञान भी पर्याय है उसे द्रव्य करता नहीं अथवा वह पर्याय द्रव्यमें नहीं है। यहाँ भी बेनके (बहिनश्रीके वचनामृतके) बोलमें आया है कि मुनिपना, केवलज्ञान या सिद्धपद वह तो पर्याय है, वह तो क्षणिक है और जो ध्रुव ज्ञायक है वह त्रैकालिक है; ऐसा जो एकरूप सदृश ध्रुव है कि जिसमें द्रव्यलिंग, भावलिंग, केवलज्ञान या सिद्धत्व नहीं है उसे निश्चय आत्मा कहते हैं। २००.

❁ सुबुद्धिओंको वैसे ही कुबुद्धिओंको पहलेसे ही शुद्धता है, उनमें भेद किस नयसे जानूँ?–ऐसा कहकर नियमसारमें व्यवहारनयकी तुच्छता बतलाई है, व्यवहारनयकी तो कोई गिनती ही नहीं की। अरे प्रभु! तुझमें और सिद्धमें किस नयसे अन्तर मानूँ? व्यवहारनयसे....किन्तु व्यवहारनय तो किसी गिनतीमें नहीं है। यह संसारी और वह सिद्ध ऐसा भेद किस प्रकार करूँ? किस नयसे करूँ? व्यवहारनयकी तो कोई गिनती ही नहीं है। २०१.

❁ निहालभाईकी पुस्तकमें ('द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में) है–किसीने पूछा कि न्यायसे बात तो जमती है परन्तु ध्रुवस्वभावकी ओर लक्ष नहीं जाता!....जिस पर्यायमें तुझे न्यायसे बात जमती है वह पर्याय कहाँ है? किसके आधारसे है? वह पर्याय जिसके आधारसे है वह ध्रुव है, उसका आधार ले! यह करना है, बाकी तो सब बातें हैं। २०२.

❁ नय श्रुतज्ञान प्रमाणका अंश है। प्रमाणज्ञानको प्रमाणपना तब और तभी प्राप्त होता है कि भीतर दृष्टिमें विभाव तथा पर्यायके भेदोंसे रहित शुद्धात्मद्रव्यरूप ध्रुवकी श्रद्धाका–अवलम्बनका–जोर सतत प्रवर्तमान हो। ज्ञानीको ध्रुव स्वभावके अवलम्बनका बल सदैव प्रवर्तमान होनेसे उसका ज्ञान सम्यक् प्रमाण है और उसीको क्रियानय, ज्ञाननय, व्यवहारनय तथा निश्चयनयादि द्वारा वर्णित धर्मोंका सच्चा ज्ञान होता है, अज्ञानी मिथ्यादृष्टिको नहीं होता, क्योंकि उसे शुद्धात्म द्रव्यस्वरूप ध्रुवस्वभावकी प्रतीति न होनेसे उसका ज्ञान अप्रमाण है–मिथ्या है। २०३.

www.vitragvani.com

❁ प्रभु तुझे भगवान रूपमें दिखते हैं और तू भी अपनेको भगवान रूप देख तो भगवान होगा। निर्मल पर्यायसे भी भिन्न जो भूतार्थ वस्तु है उसे शुद्ध कहा जाता है, उस पर दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शनका उत्पाद और मिथ्यात्वका व्यय होगा। इसलिये शुद्धवस्तुमें जा–उसकी दृष्टि कर! संयोगसे तो भिन्न, दया–दानादिके विकल्पोंसे भिन्न तथा एक समयकी पर्यायसे भी भिन्न वस्तु शुद्ध है, उसकी दृष्टि करने पर धर्मका प्रारंभ होता है। यह एक ही धर्मकी रीति है, धर्मकी कला है। अन्य लाखों प्रयत्न करने पर भी धर्म नहीं होगा। २०४.

❁ परमपारिणामिकभावलक्षण जो परमात्मा सो मैं हूँ, उसकी दृष्टि करनेसे जन्म-मरणका अन्त आयेगा। क्या करना?–तो कहते हैं कि निज परमात्मा है वहाँ दृष्टि लगाना। परवस्तु, राग एवं पर्यायकी दृष्टि है वह बहिर्मुख दृष्टि है। प्रभु! तू कौन है वह तुझे खबर नहीं है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि जिसे धर्म करना हो, कल्याणके पथ पर आना हो, उसे सर्व प्रथम आत्माको जानना चाहिये। मन्दिर, प्रतिष्ठा-महोत्सव आदि शुभभाव होते हैं, परंतु साधन नहीं है। प्रज्ञाछैनी वह साधन है; क्योंकि सकल निरावरण आत्मवस्तु और राग–इन दोनोंके बीच सन्धि है, निःसन्धि नहीं हुई है, इसलिये वहाँ सावधानी पूर्वक प्रज्ञाछैनी पटकनेसे दोनों पृथक् हो जाते हैं। २०५.

❁ अहाहा! अपनी ज्ञानपर्याय भी ज्ञायकके लिये परज्ञेय है। भावेन्द्रिय है ऐसा सिद्ध करते हैं, व्यवहारनयका विषय है ऐसा सिद्ध करते हैं, परन्तु विश्वासमें आनेवाले ज्ञायकसे वह भिन्न है। व्रत-तपादिके विकल्प वह आत्मा नहीं हैं और आत्मामें वे नहीं हैं, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि खण्ड-खण्ड ज्ञानकी पर्याय जो कि अपनी है वह भी ज्ञायकसे सर्वथा भिन्न है। क्षयोपशमका अंश जो खण्ड-खण्ड ज्ञान वह तेरी वस्तु नहीं है, प्रभु! तब तू कौन है?–कि अखण्ड एकरूप चैतन्यस्वरूप तू है। उसके द्वारा भावेन्द्रियको तू सर्वथा भिन्न जान। तीनलोकका नाथ–प्रभु तू है! उसके अवलम्बन द्वारा भावेन्द्रियको अपनेसे सर्वथा भिन्न जान। २०६.

❁ नवतत्त्वरूप परिणमनको देखता है वह देखना छोड़ दे और वस्तुको देख! यह तुझे करना है। नवतत्त्वरूप परिणमन तत्त्वको देखता है वह तुझे रोग है। २०७.

❁ परद्रव्य तो आत्माका स्वरूप नहीं है, राग तेरा नहीं है परन्तु निर्विकल्प मोक्षमार्गकी दशा भी तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है, वह भी उपचारसे आत्माका स्वरूप है। यहाँ तो दृष्टिका स्वरूप बतलाना है; इसलिये दृष्टिके विषयमें पर्याय नहीं है वह यहाँ बतलाया है।

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टिका विषय सम्यग्दृष्टि नहीं है, दृष्टिका विषय तो दृष्टि रहित–पर्याय रहित द्रव्य है, तथापि निश्चय मोक्षमार्ग साधन होनेसे उसे सद्भूत उपचारनयसे जीवका स्वरूप कहा है। २०८.

❁ स्वभावसे एकत्व तथा रागादि विभावसे विभक्त ऐसे इस ज्ञायक भगवानको मैं शुद्धात्मस्पर्शी निजवैभव द्वारा बतलाता हूँ; यदि मैं बतलाऊँ तो तुम अपने स्वानुभवप्रत्यक्ष द्वारा परीक्षा करके उसका स्वीकार करना। अहा! पंचमकालके संत पंचमकालके श्रोताओंसे कहते हैं कि–प्रभु! ज्ञानानन्दके रसकससे भरपूर ज्ञायकवस्तु भीतर विद्यमान है न! जागता जीव अंतरमें विद्यमान है वह कहाँ जायगा? वह तो तुझे सहज ही है, सुगम है। उस सहज एवं सुगम स्वरूपको अंतरंग वैभवसे दरशाता हूँ, उसे तू अपने अनुभव प्रत्यक्षसे प्रमाण करना। २०९.

❁ एक त्रैकालिक ध्रुवको जाने बिना जीव जब तक व्यवहारमें लीन है तब तक उसका परिभ्रमण नहीं मिटता। जो त्रैकालिक वस्तु है उसमें तो एक समयकी पर्याय भी नहीं है। जो भेदमें और विकल्पमें रुकेगा उस जीवको तब तक आत्मा पकड़में–ज्ञानमें नहीं आयेगा। प्रभु! एकबार सब छोड़कर निर्विकल्प तत्त्वको देख! अवसर चला जायगा तो फिर कब प्राप्त होगा नाथ! इसलिये जो पर्यायकी चलती हुई धारा है उसकी दृष्टि छोड़कर उसके पीछे जो त्रैकालिक भगवान विद्यमान है उसकी दृष्टि कर भाई! २१०.

❁ तात्पर्य यह है कि पर्याय रहित भगवान आत्मा उपादेय है। सिद्धसमान अर्थात् त्रैकालिक शुद्ध ऐसा निज आत्मा उपादेय है। परन्तु किसे उपादेय है?–कि जिसने अनुभूति द्वारा उपादेय बनाया है उसे आत्मा उपादेय हुआ है। शुद्धात्मा सन्मुख अनुभूतिरूप परिणमन हो तब उसे आत्मा उपादेय हुआ है। यों ही उपादेय-उपादेय करे–धारणामें रखे उसे आत्मा उपादेय नहीं है। २११.

❁ निज भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन वस्तु स्वयं ही अपनेको उपादेय है। निश्चयसे तो मोक्षकी पर्याय भी आश्रय–अवलम्बनके लिये हेय है, संवर–निर्जराकी (स्वानुभूतिकी) पर्याय भी हेय है। निश्चयसे तो निज भगवान शुद्धात्मा स्वयं ही उपादेय है। द्रव्य, द्रव्यसे प्रकाशित नहीं होता क्योंकि वह ध्रुव है; स्वानुभूतिकी पर्याय द्वारा प्रकाशित होता है; परन्तु जब वह ध्रुवका आश्रय लेती है तब वस्तु पर्यायमें प्रकाशित होती है–प्रगट होती है। २१२.

❁ परकी अपेक्षासे पर्याय रहित द्रव्य नहीं है, परन्तु स्वकी अपेक्षासे पर्याय रहित द्रव्य है। पर्याय और द्रव्य दो भिन्न सत्ताएँ हैं। वास्तवमें पर्यायको द्रव्य स्पर्श नहीं करता,

www.vitragvani.com

व्यक्तको अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। ऐसे भगवानको लक्षमें लेनेवाली पर्याय भी वस्तुमें नहीं आती। २१३.

❀ साक्षात् भगवान उनकी वाणी और श्रवणसे होनेवाला विकास वे सब ज्ञेय हैं, उनमें अज्ञानी आसक्त हुआ है।

श्रोता :—वाणी सुनकर विचार करे तो अंतरमें आ सकेगा न?

पूज्यश्री :—उस विचारमें जो रुका है वह परज्ञेयमें आसक्त हुआ है। परमें आसक्तिसे स्वमें आ सकेगा क्या?

श्रोता :—उसे गुरुका बोध नहीं लगता होगा?

पूज्यश्री :—अंतरमें नहीं लगता। भगवानका आदेश है कि तू अपने आत्मामें जा, इसी आदेशको वह नहीं मानता।

श्रोता :—वह तो तत्त्वकी विराधना करता है?

पूज्यश्री :—हाँ, तत्त्वकी विराधना और अतत्त्वकी आराधना करता है। कठिन बात है भाई! वह ग्यारह अंग तथा शुक्ललेश्यावाला भगवानके पास गया, परन्तु अपने भगवानके पास नहीं गया। इसलिये ज्ञेयमें आसक्त है। २१४.

❀ श्रोता :—रागादिकी तथा ज्ञानकी उत्पत्ति एक ही क्षेत्रमें तथा एक ही समय होनेके कारण उन दोनोंकी भिन्नता किस प्रकार है?

पूज्य गुरुदेव :—जिस कालमें और जिस क्षेत्रमें रागादिकी उत्पत्ति होती है उसी काल और उसी क्षेत्रमें ज्ञानकी उत्पत्ति होनेके कारण अज्ञानीको भ्रमसे वे दोनों एक हों ऐसा भासित होता है, किन्तु उन दोनोंके स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं, एक नहीं हैं। बंधका लक्षण रागादि हैं और चैतन्यका लक्षण ज्ञान करना है; इस प्रकार दोनोंके लक्षण भिन्न हैं। रागादिका चैतन्यके साथ एक ही कालमें और एक ही क्षेत्रमें उपजना होता है वह चेत्य-चेतक—ज्ञेय–ज्ञायक भावकी अति निकटतासे होता है परन्तु एक द्रव्यपनेके कारण नहीं होता। जैसे प्रकाशित होनेवाले घटपटादि पदार्थ दीपकके प्रकाशपनेको प्रगट करते हैं, घटपटादिको नहीं; उसी प्रकार जाननेमें आनेवाले रागादिभाव आत्माकी ज्ञायकताको ही प्रसिद्ध करते हैं, रागादिकको नहीं; क्योंकि दीपकका प्रकाश दीपकसे तन्मय है, इसलिये प्रकाश दीपककी प्रसिद्धि करता है, उसी प्रकार ज्ञान आत्मासे तन्मय होनेके कारण आत्माको प्रकाशित–प्रसिद्ध करता है, रागादिको नहीं। काम–क्रोधादि कषायभाव ज्ञानमें ज्ञात होते हैं वे वास्तवमें रागादिको प्रकाशित नहीं

www.vitragvani.com

करते क्योंकि रागादि ज्ञानमें तन्मय नहीं हुए हैं, किन्तु रागादि सम्बन्धी ज्ञान अपने ज्ञानको प्रकाशता है। चैतन्य स्वयं प्रकाशस्वभावी होनेसे पर सम्बन्धी अपने ज्ञानको प्रकाशित करता है, परको नहीं प्रकाशता। पहले कहा कि आत्मा परको प्रकाशित करता है परन्तु वह बात व्यवहारसे कही है। वास्तवमें तो पर सम्बन्धी अपने ज्ञानको ही प्रकाशता है। यह सब जगतकी वस्तुएँ ज्ञानप्रकाशमें प्रविष्ट नहीं होती और ज्ञानप्रकाश जगतकी वस्तुओंमें प्रवेश नहीं करता। जगतकी वस्तुओं सम्बन्धी अपनी परप्रकाशकता ज्ञानप्रकाशको ही प्रकाशती है। इससे सिद्ध हुआ कि बंधस्वरूप रागादिके और प्रकाशस्वरूप ज्ञानके लक्षण भिन्न होनेसे उनमें एकता नहीं है। उन दोनोंके स्वलक्षण भिन्न भिन्न जानकर भगवती प्रज्ञाछैनीको उन दोनोंकी अंतरंग सन्धिमें पटकने अर्थात् ज्ञानको अन्तरोन्मुख करने पर रागसे भिन्न चैतन्यके अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होता है। २१५.

❁ सम्यग्दर्शन हुआ वह तो भगवान हो गया। रागका कर्ता मैं नहीं, परका कर्ता मैं नहीं, मैं तो सर्वज्ञ हूँ, तो श्रद्धामें सर्वज्ञ हो गया। कहनेकी बात नहीं है; अकर्तृत्व प्रगट हुआ है। २१६.

❁ व्यवहाररत्नत्रयका स्वामी पुद्गल है। जिस भावसे तीर्थंकर गोत्रका बन्ध होता है उस भावका स्वामी पुद्गल है, मैं नहीं हूँ।

दया–दान–पूजा–भक्ति, शास्त्र पठन, श्रवण आदिके शुभभाव तथा स्त्री-पुत्र, खान-पान आदिके अशुभभाव उन सर्व भावोंसे आत्मा त्रिकाल रहित होने पर भी उनसे युक्त मानना वही संसारमें भटकनेका–नरक-निगोदका महाबीज है। २१७.

❁ अपनी महिमा कर, अन्य सबकी महिमा छोड़–ऐसा कहा जाता है; परन्तु मैं शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ—ऐसी महिमा आये वह भी विकल्पात्मक महिमा है। वास्तवमें तो स्वसन्मुख होकर अन्तरोन्मुख होता है तभी सच्ची महिमा आयी है। २१८.

❁ (विकल्पात्मक निर्णयकी बात चलने पर)....ऐसे निर्णयमें विकल्प सहित होने पर भी, मिथ्यात्वका रस मन्द होता है, अभाव तो बादमें होता है। विकल्प रहित होकर वस्तुका अनुभव होने पर मिथ्यात्वका अभाव होता है। जिसे राग सहित ऐसा निर्णय जोकि रागादि क्रियासे भिन्न जातिका है उसकी भी जिसे खबर नहीं है, वह विकल्प रहित वस्तुका अनुभव नहीं कर सकता। २१९.

❁ जिस प्रकार तेल पानीके प्रवाहमें ऊपर ही ऊपर तैरता है, पानीके दलमें प्रविष्ट

www.vitragvani.com

नहीं होता; उसी प्रकार विकार चैतन्यके प्रवाहमें ऊपर ही ऊपर तैरता है, चैतन्यके दलमें प्रविष्ट नहीं होता। २२०.

❁ आत्मप्राप्ति पुरुषार्थसे होती है। समयसार कलश–टीकामें यत्नसाध्य नहीं है, काललब्धिसे होती है–ऐसा कहा है वह तो अर्धपुद्गल परावर्तनकाल शेष रहा हो तभी आत्मप्राप्ति होती है ऐसा सिद्धांत है यह बात वहाँ सिद्ध करना है। उसे विश्वास आ जाना चाहिये कि मेरा स्वकाल आ ही गया है। सब अवसर आ गया है ऐसा विश्वास आ जाना चाहिये। संसारमें तो जो बात रुचती हो उसे तुरन्त करूँगा ऐसा कहता है। जो वस्तु उससे हो नहीं सकती उसे तुरन्त करनेको कहता है तब जो वस्तु अपनी ही है और अपनेसे हो सकती है वह तुरन्त क्यों नहीं होगी? उसे विश्वास आ जाना चाहिये कि मैं तो तिरनेके पंथ पर ही जा रहा हूँ, मुझे एकाध भव शेष है। जिसमें भव नहीं हैं–ऐसी दृष्टिमें भव होते ही नहीं। २२१.

❁ तत्त्वानुशासनके १६२वें श्लोकमें कहा है कि–'स्व-पर प्रतिभासस्वरूप तेरा स्वभाव है।' स्व और परको जाननेका आत्माका स्वभाव है। स्वयंको ऐसे अचिन्त्य स्वभाववाला न मानकर मैं रोगी, मैं काला, मैं सुन्दर, मैं धनवान–इसप्रकार परपदार्थोंमें और विभावमें अपनी अस्ति मानना वह आत्माको कलंक है। २२२.

❁ श्रद्धानमें विपरीतता होनेसे सम्यक्त्व रुकता है–होता नहीं है और पुरुषार्थकी अशक्तिसे चारित्र अटकता है—प्रगट नहीं होता; तथापि सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होनेमें जो श्रद्धानकी विपरीतताके बदले पुरुषार्थकी कमजोरी मानता है वह तो पहाड़ जितने महान दोषको राईके समान अल्प जानता है; वह पहाड़ जितने महान दोषको टाल नहीं सकेगा। २२३.

❁ बुध पुरुषोंको अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीवोंको ऐसा निर्णय वर्तता है कि सिद्धदशा या संसारी दशा हमारे त्रैकालिक द्रव्यस्वभावमें है ही नहीं। ध्रुवस्वरूप, सामान्यस्वरूप, एकस्वरूप वस्तु जोकि सम्यग्दर्शनका विषय है उसमें मोक्षकी या संसारकी दशा है ही नहीं। अन्तः तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व ऐसा जो परमपारिणामिक तत्त्व, उसमें केवलज्ञानकी पर्याय या संसारकी विकारी पर्याय है ही नहीं। २२४.

❁ स्वपरको जाननेकी योग्यता पर्यायकी अपनी है, इसलिये उसे जाने तब ज्ञेय उसमें ज्ञात हुए ऐसा निकटताके कारण कहा जाता है। ज्ञानकी एक समयकी पर्याय अनन्त द्रव्यको जानती है और पर्यायमें अनन्त द्रव्य ज्ञात होने योग्य हैं ऐसा कहना वह भी व्यवहार है;

www.vitragvani.com

वास्तवमें तो ज्ञानकी एक समयकी पर्याय स्वज्ञेय ऐसे निजात्माको जाने वहाँ अनन्त परज्ञेय उसमें ज्ञात हों ऐसी उस पर्यायकी शक्ति है। २२५.

❀ प्रभु! तू कौन है उसकी तुझे खबर नहीं है। तेरी पूरी बात तो सर्वज्ञदेव वाणीमें नहीं कह सके इतना तू महान है, परन्तु तू अनुभव करे तब अपनेको जाने ऐसा है। ज्ञायक भाव शुभाशुभरूप नहीं हुआ है, इसलिये वहाँ दृष्टि करनेसे तुझे मिले ऐसा तू है। जागता हुए जीव खड़ा है वह कहाँ जायगा? वहाँ दृष्टि कर तो तुझे अवश्य प्राप्त होगा ही। २२६.

❀ कोई भी पर्याय हो, चाहे तो केवलज्ञानकी या मोक्षकी पर्याय हो किन्तु उसका काल एक समयका होनेसे वह नष्ट होने योग्य है। समस्त पर्यायें नष्ट होने योग्य हैं। संवरकी पर्याय हो वह भी नष्ट होने योग्य है; क्योंकि एक समयकी है न। उस अपेक्षासे नष्ट होने योग्य है और त्रैकालिक तत्त्व तो जैसा है वैसा ही सदा रहता है; इसलिए समस्त नाशवान भावोंसे ध्रुव सामान्य वस्तु दूर है, भिन्न है। दूर अर्थात् सह्यांचल और विंध्याचल पर्वतोंकी भाँति भिन्न-भिन्न क्षेत्र हैं ऐसा नहीं, परन्तु पर्यायमें ध्रुव नहीं है और ध्रुवमें पर्याय नहीं है। इसलिये नाशवान भावोंसे ध्रुव सामान्य वस्तु दूर है। २२७.

❀ कारणपरमात्मा ही वास्तवमें आत्मा है। निर्णय करती है पर्याय; नित्यका निर्णय करती है अनित्य पर्याय परन्तु उसका विषय है कारणपरमात्मा, इसलिये वही वास्तवमें आत्मा है। पर्यायको अभूतार्थ कहकर-व्यवहार कहकर अनात्मा कहा है। कारणपरमात्मा प्रभु उपादेय है, अति आसन्नभव्य जीवोंको ऐसे निज कारणपरमात्माके सिवा अन्य कोई उपादेय नहीं है। पर्याय या राग या निमित्त कोई उपादेय नहीं है। निज परमात्माको जिस पर्यायने उपादेय किया उस पर्यायको आत्मा नहीं करता। अमितगति आचार्यदेवके 'योगसार'में आता है कि पर्यायका दाता द्रव्य नहीं है, क्योंकि पर्याय सत् है और सत्को किसीका हेतु नहीं है। इसलिये सम्यग्दर्शनकी पर्याय स्वका आश्रय लेती है वह उसके अपने सामर्थ्यसे है। आत्माका जैसा सामर्त्य है वैसा श्रद्धा-ज्ञानमें आता है, परन्तु वह सम्यग्दर्शन-ज्ञानकी पर्यायके अपने सामर्थ्यसे है। सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिये निज परमात्माके सिवा अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है। २२८.

❀ जिनवचनमें शुद्ध द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव वस्तु ही मुख्य है, इसलिये वही उपादेय है। ऐसे त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध चैतन्यको मुख्य करके उसमें जो पुरुष रमते हैं, प्रचुर प्रीति सहित बारम्बार अभ्यास करते हैं, वे पुरुष शुद्ध चैतन्यमात्र आत्माका तुरन्त ही स्वानुभव करते हैं, परम शुद्ध चैतन्यज्योतिको देखते हैं, अनुभवते हैं अर्थात् उसमें क्रीड़ा करते हैं। २२९.

www.vitragvani.com

❀ श्रोता :—ज्ञानीको जिस प्रकार शरीर भिन्न दिखाई देता है उसी प्रकार रागादि भिन्न दिखते हैं?

पूज्य गुरुदेव :—ज्ञानीको शरीरकी भाँति ही रागादि भिन्न दिखते हैं–अत्यन्त भिन्न दिखते हैं। २३०.

❀ जैसे दर्पणकी स्वच्छता दर्पणको बतलाती है और अग्निकी ज्वाला आदिको भी दरशाती है; तथापि दर्पणमें दिखनेवाला स्व-परके आकारका प्रतिभास–प्रतिबिम्ब वह दर्पणकी स्वच्छताकी ही अवस्था है, वह कहीं अग्निकी अवस्था नहीं है, प्रतिबिम्बित वस्तुकी अवस्था नहीं है। तथा जैसे पदार्थ दर्पणके सन्मुख हों वैसा प्रतिबिम्ब बतलाना वह दर्पणकी स्वच्छताका स्वभाव होनेसे प्रतिबिम्बित पदार्थके कारण प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता परन्तु दर्पणकी स्वच्छताके कारण पड़ता है। उसी प्रकार ज्ञातृत्व वह आत्माका ही है अर्थात् आत्मा स्व-परका ज्ञाता ज्ञानस्वरूप है और भावकर्म, द्रव्यकर्म तथा नोकर्म पुद्गलके परिणाम हैं। ज्ञानस्वरूपी ज्ञायकको ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेय बनाकर उसका ज्ञान करना तथा परज्ञेयोंको ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेय बनाकर तत्सम्बन्धी ज्ञान करना वह ज्ञानका स्वतःसिद्ध स्वभाव ही है। पर द्रव्य हैं इसलिये उनका ज्ञान हुआ ऐसा पराश्रित स्वभाव है ही नहीं। २३१.

❀ परभाव होनेपर भी अर्थात् दया, दान, पूजा, भक्ति तथा काम-क्रोधादि परभाव होनेपर भी जो अपनी तीक्ष्णबुद्धिसे सहज गुणमणिकी खानरूप शुद्ध आत्मा एकको ही भजता है वह मुक्तिसुन्दरीका वल्लभ होता है। अब मुक्तिसुन्दरी उससे दूर नहीं रह सकती। पर्यायमें विकारभाव तो हैं, वे परभाव होनेपर भी उनकी दृष्टि छोड़कर–स्वामित्व छोड़कर सहज गुणमणिकी खानरूप शुद्ध आत्माको भजता है वह शुद्धदृष्टिवान है। २३२.

❀ अहो! यह आत्मतत्त्व तो गहन है। उसका आँखे मूँदकर बाह्यका पंचेन्द्रियोंका व्यापार बंद करके, मनके सम्बन्धसे विचार करे कि अहो! यह आत्मवस्तु अचिन्त्य है, ज्ञायक....ज्ञायक....ज्ञायक ही है—ऐसा विकल्पसे निर्णय करता है वह भी परोक्ष निर्णय है। परोक्ष अर्थात् अभी प्रत्यक्ष स्वानुभव नहीं हुआ है, इसलिये उसे परोक्ष कहा है। मनके बाहरका बोझ बहुत कम कर दे तब मनके भीतर विचारोंमें लगता है, फिर वहाँसे भी हटकर अंतर्स्वभावोन्मुख होकर उसकी महिमामें लीन होनेपर आनन्दका अनुभव हो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।–ऐसा वस्तुका स्वभाव है और उसे प्राप्त करनेका यह उपाय है। इसमें कुछ भी उलझन जैसा नहीं है। स्वभावका आश्रय तो उलझनको सुलझा देता है।

www.vitragvani.com

आजकल लोग बाह्य क्रियाकाण्डमें लग गये हैं, उन्हें तो मनसे भी सच्चा निर्णय करनेका भी समय नहीं है। २३३.

❀ अहा! चैतन्यप्रभु समीप ही विराज रहा है, उस पर दृष्टि नहीं है और पर्याय पर दृष्टि रखनेसे चैतन्यप्रभु प्रगट नहीं होगा। भले ही पर्यायमें ज्ञातृत्वका विशेष विकास हुआ है, और व्यवहारश्रद्धा आदि पर्यायमें हुए हैं, परन्तु उस पर्यायके ऊपर दृष्टि रखनेसे चैतन्यप्रभुके दर्शन नहीं होंगे। यह तो पर्यायकी दृष्टिसे मर जाये तब दृष्टि हो ऐसी बात है! ज्ञानकी पर्यायमें शास्त्रज्ञानका विकास हुआ है उसका भी लक्ष छोड़ दे! वह ज्ञान कहीं आत्माका ज्ञान नहीं है। परसत्तावलम्बी ज्ञानमें जिसे उत्साह आता है वह ज्ञेयनिमग्न है, उसे ज्ञानस्वरूपमें लीनता नहीं होगी। जिन्हें योग्यताका अभिमान है वह सब ज्ञेयनिमग्न हैं, ज्ञाननिमग्न नहीं हैं। यह तो भवसे छुटकारेकी अपूर्व बातें हैं। प्रभु! ज्ञायकभावमें दृष्टिको स्थिर करो! द्रव्यमें अनन्त सामर्थ्य भरा है वहाँ दृष्टिको लगाओ! निगोदसे लेकर केवलज्ञान और सिद्धदशा तककी कोई पर्याय शुद्धदृष्टिका विषय नहीं है; शुद्धदृष्टिका विषय तो अखण्ड द्रव्यसामान्य है वहाँ अपनी दृष्टिको लगा—स्थिर कर! दृष्टिको द्रव्यमें ही स्थिर कर देने पर आगे बढ़ा जाता है। २३४.

❀ अपने पीछे कोई विकराल सिंह झपट्टे मारता आ रहा हो तो स्वयं कैसी दौड़ लगायेगा! क्या वहाँ आराम लेनेको खड़ा रहेगा? वैसे ही यह कराले काल झपटनेके लिये तैयार खड़ा है और अंतरमें कार्य करना बहुत बाकी है ऐसा लगना चाहिये। २३५.

❀ शुभाशुभपरिणाम उनके स्वकालमें जो होनेयोग्य हों वे ही होते हैं। जो नहीं होना था उसे करे और जो होना था उसे टाल दे यह दृष्टि ही मिथ्या है। राग उसके स्वकालमें–कालक्रममें जो होने योग्य हो वही होता है—ऐसी दृष्टि ही ज्ञायकका अनंत पुरुषार्थ है। २३६.

❀ श्रोता :—पर्याय तो व्यवस्थित ही होना है, इसलिये पुरुषार्थकी पर्याय तो जब उसके प्रगट होनेका काल आयेगा तब प्रगटेगी ही, तो अब उसे करना क्या रहा?

पूज्य गुरुदेव :—व्यवस्थित पर्याय ऐसा जाना कहाँसे? व्यवस्थित पर्याय द्रव्यमें है तो अब उसे द्रव्यपर दृष्टि करना है। पर्यायके क्रमपर दृष्टि न रखकर जिसमेंसे क्रमानुसार पर्यायें प्रगटती हैं ऐसे द्रव्यसामान्यपर ही दृष्टि देना है। सामान्यपर दृष्टि देनेमें अनंत पुरुषार्थ आता है। क्रमबद्धके सिद्धान्तसे अकर्तापना सिद्ध होता है। क्रमके सामने नहीं देखना है। २३७.

www.vitragvani.com

❁ मैं पूर्णानन्दका स्वामी ज्ञायकप्रभु हूँ ऐसे ज्ञायकके लक्षसे जो जीव श्रवण करता है, उसे सुनते हुए भी लक्ष ज्ञायकका रहता है, उसके चिन्तवनमें भी मैं परिपूर्ण ज्ञायकवस्तु हूँ–ऐसा जोर रहता है, उस जीवको सम्यक्त्व सन्मुखता रहती है। मंथनमें भी लक्ष ज्ञायकका रहता है, यह चैतन्यभाव परिपूर्ण वस्तु है ऐसा उसके जोरमें रहता है, उसे भले ही अभी सम्यक्दर्शन नहीं हुआ हो, जितना कारण देना चाहिये उतना नहीं दे पाया हो, तथापि उस जीवको सम्यक्त्वकी सन्मुखता होती है। उस जीवको अंतरसे ऐसी लगन लगती है कि मैं तो जगतका साक्षी हूँ, ज्ञायक हूँ। ऐसे दृढ़ संस्कार अंतरमें डालता है कि जो पलट नहीं सकते। जिसप्रकार सम्यग्दर्शन होनेपर अप्रतिहतभाव कहा है उसीप्रकार सम्यक्त्व सन्मुखताके ऐसे दृढ़ संस्कार पड़ते हैं कि अब उसे सम्यग्दर्शन होकर ही रहेगा। जैसे–समयसार गाथा ४ में कहा है कि मिथ्यात्वका एकछत्र शासन चल रहा है, वैसे ही ज्ञायकका एकछत्र लक्ष आना चाहिये। उपयोग एकमात्र ज्ञानमें स्थिर न रह सके तो तो द्रव्य-गुण-पर्याय आदिके विचारमें बदल दे, उपयोगको सूक्ष्म करे, सूक्ष्म करते-करते ज्ञायकके बलसे आगे बढ़े वह जीव क्रमशः सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। २३८.

❁ सर्वज्ञका निर्णय करने जाये, आदर करने जाये, विश्वास करने जाये, प्रशंसा करने जाये, रुचि करने जाये, वहीं अपने सर्वज्ञ स्वभावका निर्णय हो जाता है। उसीमें पुरुषार्थ आ गया। २३९.

❁ श्री प्रवचनसारकी ८०वीं गाथामें कहा है कि जो अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानता है वह अपने आत्माको जानता है, और श्री समयसारकी पहली गाथामें कहा है कि जो अनंत सिद्धोंको–सर्वज्ञोंको अपनेमें स्थापित करता है वह अपने आत्माको जानता है और वह श्रुतकेवली होगा अर्थात् सम्यग्दृष्टि होगा और पश्चात् केवली होगा। अहाहा! अद्भुत बात कही है! जिसने एक समयकी पर्यायमें अनन्त सिद्धोंको–सर्वज्ञोंको स्थापित किया है, जाना है, आदर किया है, उसका लक्ष रागसे हटकर ज्ञानस्वभावके सन्मुख ही जाता है, ऐसे श्रोताके आत्मामें अनंत सिद्धोंको स्थापित करता हूँ ऐसा कहा है जो श्रोता अपने अनन्त सिद्धोंको अपनेमें स्थापित करता है वह गुरु स्थापित करता है ऐसा कहा जाता है। अहाहा! जिसने एक समयकी अल्पज्ञ पर्यायमें अनन्त सिद्धोंकी स्थापना की है उसने स्वयंको रागसे तथा संसारसे उठा लिया है। जो पर्याय अनन्त सिद्धोंको पी गई–जान गई वह पर्याय द्रव्यको जाननेमें क्यों कार्य नहीं करेगी? जो पर्याय अनन्त सिद्धोंको स्थापित करती है–जानती है

www.vitragvani.com

वह द्रव्यमें ढल ही जाती है और अपने द्रव्यको जानती ही है और सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते ही हैं। अहाहा! जिसने अपनी अल्पज्ञ पर्यायमें अनन्त सिद्धोंको स्थापित किया है, जाना है वह कोई साधारण बात है! जिसने अनन्त सिद्धोंकी स्थापना की उसके श्रद्धा-ज्ञान द्रव्यस्वभावपर ही जाते हैं और वह सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसे श्रोताको यहाँ श्रोतारूपसे लिया है। भाई! तेरा आत्मा तेरी पर्यायके समीप ही है, उसे तू देख! अपनी पर्यायमें अनन्त सिद्धोंकी स्थापना कर तो तुझे अपनी पर्यायकी शक्तिका ख्याल आयेगा कि उसमें कितनी शक्ति है! जो श्रोता अपनी पर्यायमें सिद्धोंका स्थापन करके सुनते हैं, पढ़ते हैं, विचारते हैं, उसमें उसीका पोषण अर्थात् पुष्टि करते-करते अल्पकालमें सिद्ध हो ही जानेवाले हैं। २४०.

❁ श्रोता :—आत्माके संस्कारोंको दृढ़ करनेके लिये क्या करें?

पूज्य गुरुदेव :—वस्तुस्वरूपका निर्णय दृढ़ करना। शुद्ध हूँ, एक हूँ, ज्ञायक हूँ, उसका चारों पक्षसे बारम्बार पक्का निर्णय करके दृढ़ करना। २४१.

❁ अपने आतमदेवकी महत्ता छोड़कर पुण्य-पापकी महत्ता करते हैं वे कुदेवकी महत्ता करते हैं। पुण्य-पापमें कुछ शक्ति नहीं है, उसमें शक्ति मानना वह कुदेवपना है। २४२.

❁ श्रोता :—ज्ञानी द्रव्यदृष्टिके बलसे रागको पुद्गलका मानते हैं, परन्तु जिज्ञासु रागको पुद्गलका माने वह ठीक है?

पूज्य गुरुदेव :—जिज्ञासु भी वस्तुस्वरूपके चिन्तवनादिमें मानता है कि राग वह आत्माका नहीं है, वह तो उपाधिभाव है, परके आश्रयसे उत्पन्न होनेके कारण मेरा नहीं है, पुद्गलका है ऐसा मानता है।

श्रोता :—राग तो पुद्गल-परिणाम....पुद्गल-परिणाम....ऐसा करते-करते रागका डर ही न रहे तो?

पूज्य गुरुदेव :—ऐसा नहीं होता। रागकी रुचि नहीं, किन्तु रागकी रुचि छोड़नेके लिये रागको पुद्गल-परिणाम हैं ऐसा जानना। शास्त्रमें स्वच्छन्दताकी पुष्टिके लिये कोई बात नहीं कही है, वीतरागताके लिये कही है। २४३.

❁ पुण्य-पाप-आस्रव-बंध एवं संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व हैं, नहीं हैं ऐसा तो नहीं, परन्तु उनमें साररूप तो एक त्रैकालिक तत्त्व ही है। द्रव्य और पर्याय दोनोंको न माने उसे तो तत्त्वकी खबर ही नहीं है। आस्रव-संवरादि एवं त्रैकालिक ऐसे सर्वतत्त्व हैं अवश्य, परन्तु उनमें

www.vitragvani.com

साररूप एक ही तत्त्व त्रैकालिक तत्त्व है। श्री समयसारकी ११वीं गाथामें पर्यायको गौण करके अभूतार्थ कहा है, पर्यायका अभाव है ऐसा नहीं है। श्री नियमसारके ५४वें कलशमें भी 'सर्वतत्त्व' ऐसा शब्द लिया है; वहाँ पर्याय है ऐसा सिद्ध करके कहा है कि उनमें सार एक त्रैकालिक तत्त्व ही है। अलिंगग्रहणके २०वें बोलमें कहा है कि–ध्रुवका स्पर्श नहीं करता–ऐसी शुद्धपर्याय–वह आत्मा है; वहाँ वेदनकी अपेक्षा कहा है क्योंकि आनन्दका वेदन परिणतिमें है, त्रैकालिक तत्त्वका वेदन नहीं होता; इसलिये वेदनमें आया सो मैं–ऐसा कहा है। जहाँ जो आशय हो वह समझना चाहिये। यहाँ सम्यग्दर्शनकी बात है, सम्यग्दर्शनका विषय जो त्रैकालिक ध्रुवसामान्य वह एक ही सर्व तत्त्वोंमें सार है। आत्मवस्तु स्वयं ध्रुव है और उसपर लक्ष जानेसे सम्यग्दर्शन होता है। २४४.

❀ शुभराग असंख्यप्रकारका है तथा अशुभके भी असंख्य प्रकार हैं, वह सब जीवके नहीं है। ऐसे तो दसवें गुणस्थान तक राग है और यहाँ कहा है कि राग जीवको नहीं है; क्योंकि जीवके स्वरूपमें राग है ही नहीं किन्तु स्वरूपकी दृष्टि करने पर जो अनुभूति होती है उसमें भी रागका अभाव है। दसवें गुणस्थानमें राग है ऐसा कहकर पर्यायकी स्थितिका ज्ञान कराया है परन्तु यहाँ तो पर्यायकी स्थितिकी बात है; वस्तुस्वरूप कैसा है वह कहकर वस्तुकी दृष्टि करायी है इसलिये राग जड़में है, पुद्गलके परिणाम हैं, अचेतन है, उनमें चेतनता नहीं है इसलिये वे जीवमें नहीं हैं, जीवके नहीं हैं। जीवके आश्रयसे अनुभूति होती है वह रागसे भिन्न होकर होती है; यदि राग जीवका हो तो वह भिन्न नहीं होगा। २४५.

❀ प्रत्येक पदार्थकी भूतकालकी तथा भविष्यकालकी पर्यायें वर्तमानमें अविद्यमान होनेपर भी सर्वज्ञभगवान वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं। अनन्तकाल पूर्व हो चुकी भूतकालकी और अनन्तकाल पश्चात् होनेवाली भविष्यकालकी पर्यायें अविद्यमान होनेपर भी केवलज्ञान वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानता है।

अहाहा! जो पर्यायें हो चुकी हैं और जो अभी हुई नहीं हैं ऐसी भूत-भविष्यकी पर्यायोंको सर्वज्ञ द्रव्यमें योग्यता रूप जानते हैं ऐसा नहीं; परन्तु वे-वे पर्यायें वर्तमानवत् प्रत्यक्ष हों ऐसा जानते हैं। वह सर्वज्ञके ज्ञानकी दिव्यता है। भूत-भविष्यकी अविद्यमान पर्यायें केवलज्ञानमें विद्यमान हैं। अहाहा! एकसमयकी केवलज्ञानकी पर्याय ऐसी विस्मयजनक और आश्चर्यजनक है। तो सम्पूर्ण द्रव्यकी विस्मयता और आश्चर्यताका कहना ही क्या? २४६.

www.vitragvani.com

❁ जिसे केवलज्ञान पर्यायकी महिमा आये, जगतके सर्वद्रव्योंकी (जो पर्यायें हो चुकी हैं, हो रही हैं, होंगी) उन सर्व पर्यायोंको एकसमयमें जान लें, सर्व द्रव्योंकी पर्यायोंको वर्तमानवत् जान लें ऐसी ज्ञानपर्यायोंका माहात्म्य आये उसे उनकी धुन लगती है, तथा ऐसी पर्यायोंको धारण करनेवाले द्रव्यकी धुन लगती है, उसे धुनमेंसे ध्यान हो जाता है....ज्ञानकी इतनी बड़ी पर्याय! ऐसी ज्ञानपर्यायकी शक्तिका विश्वास करने जाये वहाँ उसे ध्यान हुए बिना नहीं रहेता,—उसकी धुन पर्यायके ऊपर न रहकर गुणके ऊपर जायेगी और उसमें केवलज्ञानकी प्रत्यक्षता हो जायेगी। जिसके ज्ञानकी वर्तमान पर्याय तीनोंकालकी पर्यायोंको जाने....अहो! इस ज्ञानपर्यायकी इतनी शक्ति! इतनी बलवान! उस ज्ञानगुणकी धुनके बिना उसे जोर आता ही नहीं! २४७.

❁ ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता ऐसे नामभेद हैं परन्तु वस्तुमें भेद नहीं है। यहाँ स्वतंत्रताकी–परिपूर्णताकी पराकाष्ठा बतलायी है। जीव स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञाता ऐसा वचनभेद है, कथनमें भेद है, परन्तु वस्तुमें तो ऐसे तीनभेद भी नहीं हैं। पर मेरा और मैं उसका ऐसा तो नहीं है, पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक ऐसा भी नहीं है, परन्तु मैं ज्ञेय और मैं ज्ञायक ऐसा भेद भी नहीं है। वस्तुमें ज्ञेय, ज्ञायक और ज्ञाता–ऐसे तीन भेद हैं ही नहीं, दृष्टिमें तीन भेद ही नहीं हैं। २४८.

❁ मुद्देकी बात यह है कि भगवान आत्मा त्रैकालिक ध्रुव होनेपर उसमें जो पर्याय होती है वह क्रमानुसार होती है। रागकी दशा हो या सम्यक्त्वकी दशा हो, परन्तु वह क्रमानुसार होती है। जिस प्रकार त्रैकालिक वस्तु एकरूप है उसीप्रकार पर्यायका रूप क्रमानुसार है। जिस समय जो पर्याय होना है वह क्रमानुसार होगी ऐसा उसका रूप है। जड़में भी जिस समय जो पर्याय होना है वह होगी और वह क्रमानुसार ही होगी। आत्मामें अज्ञानरूपसे जो पर्याय क्रमानुसार हो उसका अज्ञानी कर्ता होता है; धर्मीको जो क्रमानुसार रागादि आते हैं उनका वह कर्ता न होकर ज्ञाता ही रहता है। २४९.

❁ ज्ञानकी अचिन्त्य महिमाका चिन्तन संसारके सर्व क्लेशको भुला देता है। अहो! यह बात समझकर स्वयं अपने अंतरमें उतरने जैसा है। स्वयं अपना हित करनेके लिये यह बात है। २५०.

❁ श्रोता :—पर्यायको द्रव्यसे कथंचित् भिन्न कहीं है न?

पूज्य गुरुदेव :—सम्पूर्ण द्रव्यको प्रमाणज्ञानसे देखने पर पर्याय कथंचित् भिन्न है और

www.vitragvani.com

कथंचित् अभिन्न है–ऐसा कहा जाता है, परन्तु शुद्धनयके विषयभूत त्रैकालिक ध्रुवकी अपेक्षासे देखनेपर वास्तवमें द्रव्यसे पर्याय भिन्न ही है। पर्यायार्थिकनयसे देखनेपर पर्याय द्रव्यसे अभिन्न है। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये तो पर्यायको गौण किया, अविद्यमान ही माना; त्रैकालिक ध्रुव स्वभावको मुख्य करके भूतार्थका आश्रय कराया है। २५१.

❁ क्रमबद्धकी छेड़छाड़में क्रमबद्धकी छेड़छाड़ नहीं, परन्तु अकर्तृत्वकी छेड़छाड़ है। ज्ञानस्वभावको अकर्ता सिद्ध करके पुरुषार्थ कराना है। २५२.

❁ भगवान जिनेन्द्र सर्वज्ञकी दिव्यध्वनि छूटी उसमें सिंहनाद हुआ! क्या हुआ?—कि हे जीव! तू सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप है। प्रभु! तू स्वयं परमात्मस्वरूप मेरी ही जातिका है। बकरोंकी टोलीमें सिंह शामिल हो गया हो तदनुसार शुभाशुभभावमें भगवान शामिल हो गया है उसके लिये भगवानका सिंहनाद हुआ कि तू हमारी जातिका भगवानस्वरूप है ऐसा जान! २५३.

❁ वस्तु मुक्तस्वरूप है तो उसे बंधके साथ सम्बन्ध क्यों होता है?–तो कहते हैं कि मुक्तस्वरूप वस्तु है ऐसा उसका स्वीकार नहीं है; इसलिये वस्तुको जो बंधके साथ सम्बन्ध है वह अज्ञानीके अज्ञानका माहात्म्य है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी पर्यायके साथ है, द्रव्यको–ध्रुवको तो ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी नहीं है। २५४.

❁ आत्मा परद्रव्यकी पर्यायको तो आगे-पीछे (इधर-उधर) नहीं कर सकता, परन्तु अपनेमें क्रमानुसार होनेवाली पर्यायको भी इधर उधर नहीं कर सकता, मात्र जाननेवाला–ज्ञाता ही है। दया-दान-पूजा-भक्तिका राग हो उसे परज्ञेयरूप जानता है। आंख देखनेके सिवा क्या कर सकेगी? वैसे ही ज्ञान जाननेके सिवा क्या कर सकेगा? २५५.

❁ मैं योग्य नहीं हूँ....योग्य नहीं हूँ....ऐसे उसके अस्वीकारसे बात अटकी है। परन्तु उसे अंतरसे ऐसा लगना चाहिये कि मैं इसी क्षण परमात्मा होने योग्य हूँ। इस बातको जो स्वीकारता है, अंतरसे हाँ कहता है, उसी जीवको रागसे पृथक् होनेका प्रारंभ हो चुका है, पृथक् होता जाता है इसलिये नैगमनयसे पृथक् हो गया है ऐसा शास्त्रमें कहा है। २५६.

❁ रोगके कालमें रोग हुए बिना रहेगा ही नहीं। स्वर्गसे इन्द्र उतर आयें तब भी रोग हुए बिना नहीं रहेगा! तथा रागके कालमें राग भी हुए बिना नहीं रहेगा! अब तुझे दृष्टि कहाँ करना है? स्वभाव पर दृष्टि करना ही संतोष एवं शान्तिका उपाय है। २५७.

www.vitragvani.com

❁ परमात्माके घरमें प्रवेश करना है और कहे कि मैं तो पामर हूँ....पामर हूँ.....पामर हूँ, तो इन दो बातोंमें मेल नहीं है। पहली ही चोटमें मैं सिद्ध हूँ–ऐसा लक्षमें नहीं लेता उसे जिज्ञासु नहीं कहते। २५८.

❁ जो आत्मा है उसमें परके कर्ता-कर्म आदि षट्कारक नहीं हैं, रागके षट्कारक उसमें नहीं हैं और उसकी अपनी निर्मल पर्याय है उसके षट्कारकोंसे भी परे ऐसा आत्मा सो मैं हूँ। निर्मल पर्यायके षट्कारकोंसे भी मेरी वस्तु भिन्न है। परके कर्तृत्वकी या रागके कर्तृत्वकी बात तो कहीं दूर रह गई किन्तु निर्मल पर्यायके षट्कारकोंकी प्रक्रियासे भिन्न मेरी वस्तु है। ज्ञायकस्वरूप अबद्धस्वरूप आत्मा पर्यायके षट्कारकोंसे भिन्न है। मोक्षमार्गके षट्कारक हैं वे द्रव्यस्वभावमें नहीं है। मोक्षमार्गकी पर्यायके एकसमयके षट्कारकोंकी प्रक्रियासे पार–भिन्न निर्मल अनुभूति–त्रैकालिक अनुभूति, उस अनुभूति मात्रपनेके कारण मैं शुद्ध हूँ। २५९.

❁ श्रोता :—परकी पर्यायको तो नहीं करता, परन्तु अपनी पर्यायको भी नहीं करता?

पूज्य गुरुदेव :–अपनी पर्याय भी स्वकालमें ही होती है उसे करे क्या? वास्तवमें तो वह ज्ञाताद्रष्टा ही है। प्रयत्नपूर्वक मोक्ष प्राप्त कर ऐसा कथन आता है, परिश्रमसे मोहको जीतना ऐसा वाणीमें आता है, परन्तु वास्तवमें तो उसकी दृष्टिमें द्रव्य आया इसलिये वह ज्ञाताद्रष्टा ही है, ज्ञाताद्रष्टामें अनन्त पुरुषार्थ है। २६०.

❁ विकल्पका भाग भी क्रमानुसार होता है, परन्तु जहाँ उसके कालक्रमसे निकलता है तब मैंने किया ऐसा भ्रम उसे हो जाता है। २६१.

❁ रागमिश्रित निर्णयसे निर्विकल्प नहीं होता परन्तु निर्विकल्प होनेसे पूर्व विकल्पसे कैसा निर्णय करता है वह कहते हैं। पहले क्या करता है?—कि प्रथम रागमिश्रित विचारसे निर्णय करता है कि मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। सर्वज्ञदेव द्वारा कहे गये परमागमसे निर्णय करता है कि ज्ञान सो मैं हूँ। गुरुके पास सुनकर निर्णय करता है कि ज्ञान सो मैं हूँ। अभी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है परन्तु सम्यग्दर्शन प्रगट करना है ऐसी उत्कंठावान–आँगनमें खड़ा हुआ जीव प्रथम ऐसा निर्णय करता है कि दया–दानके भाव विकार हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं हैं। मैं तो ज्ञानस्वभाव आत्मा हूँ, अनादि-अनन्त ज्ञातास्वभावी हूँ,—ऐसा विकल्प वह भी मैं नहीं हूँ। मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। प्रथम विकल्प द्वारा ऐसा निर्णय करता है। २६२.

www.vitragvani.com

❁ ज्ञानकी तथा रागादिकी उत्पत्ति एकसाथ होती है वह चैत्य-चेतकभावकी अर्थात् ज्ञेय-ज्ञायकभावकी अति निकटताके कारण ही होती है, परन्तु वे एकद्रव्यरूप हैं इसलिये होती है–ऐसा नहीं है। दीपक द्वारा प्रकाशित होनेवाले घट-पटादि दीपकको ही प्रकाशित करते हैं अर्थात् घट-पटादि दीपकके प्रकाशको ही प्रगट करते हैं। दीपक अपनी पर्यायको प्रकाशता है और घट-पटादिको प्रकाशता है परन्तु उन रूप होता नहीं है अर्थात् दीपक अपनी द्विरूपताके प्रकाशको प्रगट करता है, वह अपनी स्व और परको प्रकाशनेकी शक्तिको प्रकाशता है परन्तु घट-पटादिरूप होता नहीं है और घट-पटादि उसमें आते नहीं हैं–प्रविष्ट नहीं होते। उसीप्रकार आत्मा द्वारा ज्ञात होनेवाले रागादिभाव चेतकपनेको ही प्रकाशते हैं, रागादिको नहीं प्रकाशते। ज्ञानमें ज्ञात होते रागादिभाव ज्ञानकी स्व-पर प्रकाशरूप द्विरूपताको प्रगट करते हैं परन्तु रागादि आत्मामें प्रवेश नहीं करते अथवा आत्मा रागादिरूप नहीं होता। २६३.

❁ पुद्गल-परिणामका ज्ञान अर्थात् राग-द्वेषके जो परिणाम हुए उस काल, स्वको जाननेपर स्व-परप्रकाशक ज्ञान द्वारा राग-द्वेषको जानता है, वह राग-द्वेष सम्बन्धी ज्ञान जीवका कर्म है और ज्ञानके परिणामका आत्मा कर्ता है। वास्तवमें तो पुद्गल परिणामका ज्ञान नहीं है परन्तु जिसप्रकारके परिणाम है उसीप्रकारका तत्सम्बन्धी अपना ज्ञान है, उसे कर्तारूपसे जीव करता है और वह ज्ञान जीवका कार्यरूप कर्म है, परन्तु रागके परिणामका जीव कर्ता नहीं है। २६४.

❁ महा आनन्दका लाभ–प्राप्ति सो मोक्ष है। जीवको साध्यरूपसे जो साधना है वह मोक्ष है। उस मोक्षका कारण कौन? किस प्रकार मोक्षको साधना?–तो कहते हैं कि–पाँच भावमें जो शुद्ध पारिणामिक परमभाव वह मोक्षस्वरूप ही है। वह तो प्रथमसे ही मुक्तस्वरूपमें विद्यमान है। ऐसा मुक्तस्वरूप निष्क्रिय विद्यमान ध्रुवतत्त्व ही मैं हूँ–ऐसा दृष्टिमें स्वीकार आने पर उपशम, क्षयोपशम तथा क्षायिक पर्याय प्रगट होती है वह मोक्षका कारण है। २६५.

❁ भूत-भविष्यकी पर्याय वर्तमानमें नहीं इसलिये उन पर्यायोंकी अपेक्षासे तो अविद्यमान ही है परन्तु ज्ञानने उन्हें वर्तमानवत् प्रत्यक्ष किया इसलिये भूतार्थ कहा है, तो यह भगवान आत्मा तो वर्तमान भूतार्थ है, सकल निरावरण अखंड एकरूप प्रत्यक्ष- प्रतिभासमय वर्तमानमें भूतार्थ है, तो वह भगवान आत्मा वर्तमानमें प्रत्यक्ष क्यों नहीं होगा? वर्तमानमें है और उसका स्वभाव प्रत्यक्ष होनेका है तो वह वर्तमानमें ज्ञानमें प्रत्यक्ष क्यों नहीं होगा?–अवश्य होगा ही; परन्तु उसकी महिमा नहीं लाता, उसे दृष्टिमें नहीं लेता, उसके इतने महान अस्तित्वको स्वीकार नहीं करता। २६६.

www.vitragvani.com

❁ जिस परमाणुकी पर्याय जिस काल जिस क्षेत्रमें उसके जन्म-क्षणमें षट्कारकसे परिणमती है उसे कौन करेगा और कौन बदलेगा? इसीप्रकार प्रत्येक द्रव्यका स्वतंत्र परिणमन है। वास्तवमें तो स्वद्रव्य परद्रव्यका स्पर्श ही नहीं करता। आत्मा शरीरको छूता ही नहीं है, हाथ-पैरको नहीं हिलाता। शरीर भी जमीनका स्पर्श नहीं करता। ऐसी वस्तुकी स्वतंत्रता है। ऐसी स्वतंत्रताकी हाँ कहनेसे उसकी लत लगती है और वैसी हालत हो जाती है। २६७.

❁ निमित्त तुझमें नहीं है, विकार भी तुझमें नहीं है परन्तु निर्मल पर्याय भी तेरी ध्रुववस्तुमें नहीं है–इसप्रकार दृष्टिको अव्यक्तपर ले जाना है। बात सूक्ष्म है, परन्तु इसे समझनेमें ही उद्धार है, अन्य सब व्यर्थ है। बाह्य वस्तु तो तुझमें है ही नहीं; स्त्री-पुत्र तो उनके अपने कारण आये हैं, वे तुझमें नहीं हैं और तेरे कारण आये नहीं हैं, परन्तु दया-दानादि या हिंसा–असत्य आदि भी तेरी वस्तुमें नहीं है। परन्तु यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जो निर्मल पर्याय है वह क्षणिक है, वह भी तुझमें नहीं है, इसलिये क्षणिक पर्याय पर दृष्टि न कर, परन्तु जहाँ ध्रुवतत्त्व विराजमान है वहाँ दृष्टि कर। सुखी होनेका यह एक ही मार्ग है। २६८.

❁ जबतक आत्माका ज्ञान नहीं है तबतक जीव रागादिके साथ व्याप-व्यापकरूसे परिणमता है अर्थात् तबतक अज्ञानी जीव कर्ता और रागादि कार्य इसप्रकार परिणमन करता है। ज्ञानी रागका किंचित् भी कर्ता नहीं है, परन्तु जबतक अज्ञानीको आत्माकी खबर नहीं है और पुद्गलकर्म विकारका कर्ता है ऐसा मानता है, उसके लिये यह बात है कि जबतक अज्ञानी है तबतक विकारका कर्ता जीवद्रव्य है। जीवद्रव्य अर्थात्? त्रैकालिक द्रव्य तो शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द ही है; वह विकारी या अविकारी पर्यायका कर्ता नहीं है, इसलिये यहाँ जीवद्रव्यका अर्थ उस समयकी जीवकी पर्याय कर्ता है; क्योंकि पर्यायके षट्कारकोंसे पर्याय कर्ता है और पर्याय कर्म है। २६९.

❁ एक समयकी पर्याय सत् है, स्वतंत्र है, जिस काल जो पर्याय होना है वह पर्याय अपने षट्कारककी क्रियासे स्वतंत्र होगी, परन्तु उसका निर्णय कैसे हों? उस निर्णयका तात्पर्य क्या?–तो कहते हैं कि वीतरागता तात्पर्य है। वह वीतरागता कब होती है? कि उसीका लक्ष एवं दृष्टि पर्यायके कर्तृत्वकी बुद्धिसे, पर्यायको परिवर्तित करनेकी बुद्धिसे हटकर त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक पर जाये तब निस्सन्देह निर्णय होने पर परिणाममें अंशतः निर्मलता एवं वीतरागता

www.vitragvani.com

होती है। यह सच्चे निर्णयका फल और तात्पर्य है। अहाहा! क्या बात है वीतराग वाणीकी! चारों ओरसे एक सत् ही उपस्थित होता है। २७०.

❁ पर्यायबुद्धि छोड़कर ज्ञायकका प्रतीति करना वह क्रमबद्धका फल है। २७१.

❁ श्रोता :—आत्माकी महिमा कैसे आये?

पूज्य गुरुदेव :–आत्मवस्तु ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायक है, वह अनन्त गुणोंका पिण्ड है, वह पूर्णतत्त्व त्रैकालिक अस्तिरूप है, उसका स्वरूप, उसका सामर्थ्य अगाध एवं आश्चर्यकारी है, उसे समझे तो आत्माकी महिमा–माहात्म्य आये और रागका माहात्म्य छूट जाये। आत्मवस्तु कैसी अस्तित्ववान है, कैसे–कैसे सामर्थ्यवान है, उसका स्वरूप रुचिपूर्वक ध्यानमें ले तो उसका माहात्म्य आये और रागका तथा अल्पज्ञताका माहात्म्य छूट जाये। एक समयकी केवलज्ञान पर्याय तीनकाल–तीनलोकको जाननेके सामर्थ्यवाली है, वह भी प्रतिक्षण नई-नई होती है तो उसे धारण करनेवाले त्रैकालिक द्रव्यका सामर्थ्य कितना? इस प्रकार आत्माके आश्चर्यकारी स्वभावको प्रतीतिमें ले तो आत्माकी महिमा आये। २७२.

❁ अहाहा! स्वयं ही सर्वज्ञस्वरूप है, परिपूर्ण स्वरूपसे भरा हुआ स्वयं ही सर्वज्ञस्वभावी है। ज्ञान, आनन्दादि अनन्त रत्नोंसे भरा हुआ रत्नाकर भगवान स्वयं ही है, उसे अपूर्ण-अल्पज्ञ पर्यायवाला मानना वह भी मिथ्याभ्रम है, तब रागको अपना मान वह तो मिथ्यादृष्टि है ही। २७३.

❁ प्रभु! सुन तो सही! अपनी प्रभुताको देख! व्यवहारके शुभरागकी पर्याय तो रह गई, परन्तु वीतराग निर्मल दशारूप मुनि पर्यायका भी जिसमें अभाव है ऐसी तेरी ज्ञायक प्रभुता है। निर्मल पर्याय भी व्यवहारनयका विषय है और समस्त पर्यायसे रहित ऐसा ध्रुव ज्ञायक द्रव्य वह निश्चयनयका विषय है। अहाहा! आत्मा मुनि है या केवलज्ञानी है—ध्य१९६ध्यऐसी पर्याय दशा भी ध्रुव ज्ञायकमें नहीं है। केवलज्ञान भी पूर्ण निर्मल पर्याय है। ज्ञानकी पूर्ण पर्यायवाला भी आत्मा नहीं। वह पर्याय ध्रुव द्रव्यका रूप नहीं है। आत्मा तो ध्रुव गुणस्वरूप सहज ज्ञानकी मूर्ति है। गजबकी बात है नाथ! यह जैनदर्शन–वस्तुदर्शन है। २७४.

❁ व्यवहाररत्नत्रयका राग आया उसे ज्ञानने जाना, वहाँ ज्ञान अपनी पर्यायको जानता है, रागको नहीं। जाननेवाला स्वको जानते हुए परको जाननेरूप परिणमता है तथापि उसे ज्ञेयकृत ज्ञान हुआ है ऐसा नहीं है, किन्तु उसे ज्ञानकृत ज्ञान है। सम्यग्दृष्टि चक्रवर्तीको

www.vitragvani.com

रागका ज्ञान हुआ वह रागके कारण नहीं हुआ है किन्तु स्व-परप्रकाशक शक्तिके कारण ज्ञान ज्ञानको जानता है; ज्ञेयको जानता है ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। रागको जानते हुए जो ज्ञेयाकाररूपसे ज्ञात हुआ वह आत्मा ज्ञात हुआ है, राग ज्ञात नहीं हुआ है, क्योंकि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है। २७५.

❁ भाई तुझे सुख चाहिये न! तो सुख कहाँ है? निमित्तमें, रागमें या एक समयकी विकास पर्याय है उसमें सुख है? उसमें दृष्टि देनेसे तो दुःख उत्पन्न होता है; और मोक्षपर्यायमें आनन्द तो है लेकिन उसमें आनन्द भरा नहीं है, आनन्दकी खान नहीं है। त्रैकालिक आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकी खान है, इसलिये वह सर्व तत्त्वमें सार है। २७६.

❁ वस्तुको पकड़े उसका नाम आत्मा उपादेय है। धारणामें यह हेय है, यह उपादेय है–ऐसा करता रहे उसका नाम हेय–उपादेय नहीं है। लक्ष छोड़ देनेका नाम हेय है और वस्तुको पकड़ना उसका नाम उपादेय है। आत्मामें एकाकार हो तब आत्मा उपादेय हुआ कहा जाता है। रागादिका लक्ष छूट जाना उसका नाम उसे हेय किया कहा जाता है। २७७.

❁ जीवने अपने सहज सुखके लिये एक क्षण भी शान्त होकर विचार नहीं किया है। यदि विचार करे तो वस्तु अत्यन्त सस्ती और सरल है; परन्तु तीव्र जिज्ञासा उत्कंठा और तत्परता चाहिये। इस संसारका रस छूट जाये तो आत्मस्वरूप अवश्य प्रगट हो। २७८.

❁ एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको स्पर्श नहीं करता, इस मूल सिद्धान्तमेंसे कितना सिद्ध होता है!! इसमें बारह अंगका स्पष्टीकरण हो जाता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको स्पर्श नहीं करता इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी पर्याय स्वयं उससे होती है और वह क्रमबद्ध होती है। एक सिद्धान्तको बराबर पकड़े तो सब आ जाता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको स्पर्श नहीं करता यानी जो पाँव धरती पर पड़ते हैं वे धरतीका स्पर्श नहीं करते; यदि वे धरतीका स्पर्श करे तो दो द्रव्य एक हो जायें। यह तो मिथ्यात्वको तोड़नेका शस्त्र है। प्रत्येक द्रव्य अपने निश्चयमें ही प्राप्त है। आत्मा शरीरको छूता नहीं है; कर्मोंसे आत्मा दुःखी होता है यह बात भी मिथ्या है। जब आत्मा कर्मोंको स्पर्शता नहीं है तो उनसे दुःखी क्यों होगा? पदार्थ भिन्न–भिन्न हैं तो एक-दूसरेका क्या करेंगे? परन्तु इतना समझनेकी गरज या अवकाश किसे है? दवाके रजकण रोगको छूते नहीं हैं; पानीकी उष्णपर्याय उसके अपने कालमें षट्कारकसे स्वतंत्र हुई है। नरकके संयोगोंका जीवको दुःख नहीं है, संयोग जीवको स्पर्श नहीं करते, परन्तु अपने द्वेषके कारण दुःख होता है। एक द्रव्य दूसरेको स्पर्श नहीं करती,

www.vitragvani.com

इसमें तो त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर और उनकी वाणी भी तेरे उत्पादका कारण नहीं है ऐसा फलित हुआ। जगतको तो यह बात पागलों जैसी लगेगी। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्पर्श नहीं करता, इसमें तो बारह अंगके ताले खोल दिये हैं!! २७९.

❁ भगवान आत्मा अनीन्द्रिय होनेसे उसकी अपेक्षा भगवान भगवानकी दिव्यवाणी या मुनियोंके वृन्द सभी इन्द्रिय हैं। क्योंकि वे इन्द्रियका विषय हैं। वीतरागीदेव ऐसा कहते हैं कि हम तो तेरी इन्द्रियोंका विषय हैं और तू अपनी अनीन्द्रियका विषय है; तू अपनेको विषय बनाकर जान वही हमारी स्तुति है। २८०.

❁ अहाहा! क्या कथन है! व्यवहारसे निश्चय होता है, निमित्तसे उपादानमें कार्य होता है, पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य–यह सब तो व्यवहारके वचन हैं। प्रत्येक समयकी पर्याय–भले ही वह केवलज्ञान हो, भले ही निगोदके जीवकी अक्षरके अनन्तवें भागकी ज्ञानपर्याय हो, भले मिथ्यात्व हो या चाहे तो रागका कण हो–इन सर्व पर्यायोंका अस्तित्व जगतमें, छह द्रव्यमें है, परन्तु वह अस्तित्व ऐसा है कि जिस प्रकार छह द्रव्यस्वरूप लोक है उसीप्रकार पर्याय भी अपनेसे, अपनेमें, अपने कारणसे है। जिस प्रकार द्रव्य और गुण अपनेमें अपनेसे हैं उसीप्रकार पर्याय भी अपनेमें, अपनेसे अपने कारणसे है। २८१.

❁ जीव विभावपरिणामसे शून्य है, कब?–तो कहते हैं कि–तीनों काल और तीनों लोकमें। अरे! जिसने अनन्तकालमें त्रसपना भी प्राप्त नहीं किया और भविष्यमें भी त्रसपनेको प्राप्त नहीं होगा ऐसा निगोदका जीव भी विभावके परिणामसे शून्य स्वभावी है। पर्यायमें भले ही कोई प्रकार हो परन्तु जो शुद्ध जीव है वह तो ऐसा ही है। तीन काल और तीन लोकमें जो जीव है वह ऐसा ही है, अर्थात् विभावपरिणामसे शून्य शुद्ध जीव है। वर्तमानकालमें शुद्ध है या भविष्यमें होगा तब शुद्ध है–ऐसा नहीं; परन्तु तीनोंकाल भगवानस्वरूप शुद्ध चैतन्य आत्मा है। भले ही पांचम या छट्ठा काल हो और भले ही चाहे कसाई होकर गायोंको काटता हो, परन्तु भीतर जो आत्मा है वह भगवत् स्वरूप शुद्ध है। पर्यायमें चाहे जैसे परिणाम हुए परन्तु भगवान है वह उनमें आता ही नहीं है। किस दृष्टिसे?–पर्यायदृष्टिसे नहीं भाई! शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध है और वही भूतार्थ है। २८२.

❁ मुख्य बात तो यह है कि भगवान आत्मा त्रैकालिक वस्तुरूपसे तो पर्यायसे रहित है, तथापि पर्यायार्थिकनयसे उसका जो परिणमन है वह क्रमानुसार होता है आगे-पीछे नहीं

www.vitragvani.com

होता, तब फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा?—तो कहते हैं कि–क्रमानुसार होगा ऐसा निर्णय कब होगा?–पर्यायमें रहकर पर्यायका निर्णय नहीं होता, ज्ञायकस्वभावके लक्षसे क्रमबद्धका निर्णय होता है और वही पुरुषार्थ है। जो पर्याय होनी होगी वह होगी उसका निर्णय किसने किया?–तो कहते हैं कि–त्रैकालिक ज्ञायकस्वभावका निर्णय जिसने किया है उसे 'जो होना होगा सो होगा'—ऐसा सच्चा निर्णय आता है। २८३.

❁ शरीरके नाममें इतना लिप्त हो गया है कि घोर निद्रामें भी उसका नाम लो तो चौंककर बैठ जायगा! उसीप्रकार आत्मामें ऐसा लिप्त हो जाय कि चैतन्य ज्ञायकज्योति हूँ इसप्रकार स्वप्नमें भी वही बात आये। जिसे जिसकी लगन लगी हो उसे स्वप्न भी उसीके आते हैं। हम तो आनन्द और शुद्ध चैतन्य हैं, पुण्य और पाप वह हम नहीं हैं, हम व्यवहारसे उसके ज्ञाता–जाननेवाले हैं, वास्तवमें तो ज्ञाता भी नहीं हैं। २८४.

❁ (सम्यक्त्वके लिये कब तक अभ्यास करें?)...कब तक क्या करें?–यही तो अभ्यास है, यही करना है, दूसरा कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं है। रात्रिको अवकाश मिले, दिनमें समय मिले उसमें अपनी धारणा दृढ़ हुई हो तो मंथन चलता ही रहता है। दिनभर यहका यही तो करना है। निवृत्ति ही है न! दूसरा करना क्या है? २८५.

❁ श्रोता :—प्रभु! अंतरमें कैसे जायें वह बतलाइये?

पूज्य गुरुदेव :—अंतरमें उतरे तब अपने आत्माकी प्राप्ति होती है। कहीं परमें महिमा मानता हो—मिठास रह जाये तो अंतरमें नहीं जा सकता। प्रथम परका माहात्म्य कम होना चाहिये तभी अंतरमें जा सकता है। लेकिन अटकनेके स्थान बहुत होनेसे यह जीव कहीं न कहीं अटक जाता है। किसी संयोगकी, रागकी, क्षयोपशमकी–ऐसे किसी अन्य विषयकी अधिकता रह जाती है तो अंतरमें नहीं पहुंचा जाता। २८६.

❁ अरे भाई! तुझ जैसा कोई धनवान नहीं है! तेरे भीतर परमात्मा विराजमान है इससे अधिक धनवानपना क्या होगा? ऐसे परमात्मपनेको सुनकर उसे अंतरसे उल्लास आना चाहिये। उसकी लगन–धुन लगना चाहिये। उसे परमात्मस्वरूपकी सच्ची धुन लगे तो जो स्वरूप अंतरमें है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहेगा? अवश्य प्रगट होगा ही। २८७.

❁ पर्याय इधर–उधर होनेकी व्याख्या क्या? मुख्यतः तो उसे पुरुषार्थकी सूझ नहीं पड़ती इसलिये आपत्ति उठाता है। वास्तवमें तो पूर्ण पर्यायने जाना है वैसा ही यहाँ होता

www.vitragvani.com

है–ऐसा निर्णय करने जाये वहाँ पूर्ण पर्याय जहाँसे आयी है ऐसे शक्तिस्वभावपर लक्ष जाता है और तब मैं भी ऐसा ही सर्वज्ञ हूँ–ऐसी प्रतीति होनेपर यह बात उसे बैठी है। २८८.

❁ पर्यायमें स्वकालमें ही मोक्ष होता है, जल्दी या देरमें नहीं हो सकता–ऐसा निर्णय करने जाये वहाँ उसकी दृष्टि ध्रुवपर ही जाती है और उसमें स्वभावोन्मुखताका अनंत पुरुषार्थ आता है और तभी पर्यायके स्वकालका सच्चा ज्ञान होता है। आत्माके श्रद्धा-ज्ञान सम्यक् हुए उसके तो कार्य हो ही रहा है, फिर जल्दी और देरका प्रश्न ही कहाँ है? २८९.

❁ अहो! यह आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ही है। जानना....जानना...जानना ही उसके अंतस्तलमें भरा है; जिसके अस्तित्वमें–सत्तामें यह शरीर-मन-वाणी-विकल्पादि सब ज्ञात होते हैं वह जाननेवाला तू है ऐसा जान–विश्वास कर तथा कर्तृत्वबुद्धि छोड़ दे। २९०.

❁ आत्मार्थी :—यह वस्तु प्रयोगमें लानेके लिये पुरुषार्थ कैसे करना?

पूज्य गुरुदेव :—प्रथम तो विचारमें निरावलम्बीरूपसे चलना चाहिये। किसीके आधार बिना ही अद्धरसे चले कि मैं ऐसा हूँ....उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप हूँ....आदि। उन विचारोंके चलते...चलते अंतरमें ऐसा रस उत्पन्न होता है कि बाह्यमें आना अच्छा नहीं लगता। अभी है तो विकल्प, परन्तु ऐसा लगता है यह मैं....यह मैं....ऐसा मंथन चलते–चलते वे विकल्प भी छूट जाते हैं, फिर तो सहज हो जाता है....स्वाध्यायके समय भी वहका वही लक्ष चला करता है, यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय...यह विचार चलनेसे सारे जगतके अन्य विकल्प छूट गये होते हैं। शास्त्रोंके शब्द बिना हृदयसे ही हल हो जाना चाहिये। मूलमेंसे उठाव आना चाहिये। दूसरा कुछ कम समझमें आता हो उसकी कोई बात नहीं....अन्य सर्व विकल्प छूट जाते हैं और ऊपर से एक आत्मा सम्बन्धी विचार चलते ही रहते हैं। सम्पूर्ण सत्ताका ज्ञानमें मंथन चलता है। प्रयोग तो उसीको करना पड़ता है....विश्वास आना चाहिये....दूसरी दूसरी चिन्ताएँ हों तो यह कहाँसे चलेगा? इसका अभ्यास बारम्बार होना चाहिये। २९१.

❁ पहली शर्त यह है कि मुझे एक आत्माके सिवा कोई वस्तु नहीं चाहिये ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये। दुनियाकी कोई वस्तु, धनसम्पत्ति, प्रतिष्ठा आदि कुछ नहीं, एक आत्माकी ही आवश्यकता है ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये। जिसे ऐसा दृढ़ निश्चय हो

www.vitragvani.com

उसके चाहे जितने प्रतिकूल संयोगोंमें भी तीव्र और कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। पुरुषार्थके बिना प्राप्ति नहीं है। क्रमबद्ध अनुसार ही आत्मा प्राप्त होगा। परन्तु क्रमबद्धका निर्णय करनेवालेकी दृष्टि ज्ञायककी ओर ही जाती है और तब क्रमबद्धकी सच्ची श्रद्धा होती है। तथा दूसरी बात यह है कि एक द्रव्यकी पर्यायको परके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्पर्श नहीं करता। कर्म आत्माको स्पर्श नहीं करते, आत्मा शरीरका स्पर्श नहीं करता। अहाहा! ऐसा निर्णय हो तभी उसकी दृष्टि सच्ची होती है। २९२.

❀ चाहे जो प्रसंग हो, आत्माका ज्ञातादृष्टारूपसे रहनेमें ही शान्ति है। संयोग प्रतिकूल हों या अनुकूल, उस प्रत्येक प्रसंगमें 'मैं एक शुद्ध चैतन्य आनन्दघन हूँ' यह दृष्टि हटना नहीं चाहिये। मेरा अस्तित्व सहज एक ज्ञायकभाव है, उसमें शरीरादि परका या रागादि विभावका प्रवेश नहीं है और मेरा जो स्वभाव है वह परमें नहीं जाता–ऐसी दृष्टि रहनेसे परके चाहे जिस प्रसंगमें जीवको शान्ति ही रहती है, खेदकी खलबली नहीं होती। अहा! ऐसी बात है! २९३.

❀ तेरी दशामें, वर्तमान ज्ञानमें यह परमात्मा पूर्ण है ऐसा निस्सन्देह जान। देह-देवालयमें भगवान परमात्मा बिराजमान है। पर्यायमें अपूर्णता है परन्तु वस्तु परिपूर्ण है ऐसा जान! ऐसा जाननेवाली पर्याय भी कितनी?—कि त्रैकालिक परिपूर्ण परमात्माको जान ले। वस्तु पर्यायमें नहीं आती, परन्तु वस्तु जैसी और जितनी है उसका पूर्ण ज्ञान पर्यायमें होता है। तू पूर्ण स्वरूप है, केवलज्ञानस्वभावी प्रगटरूप आत्मा है, उसे निस्सन्देहरूपसे परमात्मा जान। अंतरमें परिपूर्णकी दृष्टि होना उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वस्तु जैसी है वैसी यथार्थ प्रतीति होना उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। २९४.

❀ आचार्य महाराज कहते हैं कि भगवान! तेरी पूंजीमें–सम्पत्तिमें–स्वरूपमें राग-द्वेष बिलकुल नहीं है और अन्य वस्तु तुझे राग-द्वेष कराये ऐसी उसमें शक्ति नहीं है, परन्तु अपने स्वभावके ज्ञातापनेको छोड़कर अज्ञानके कारण दीर्घसूत्र चलाता है। यह ठीक है, यह अठीक है ऐसा अनन्तकालसे राग-द्वेषका मंथन किया है। अपने ज्ञाताद्रष्टा स्वभावमें डुबकी लगाना चाहिये, ज्ञानानन्दमें सराबोर होना चाहिये उसके बदले अज्ञानी राग-द्वेषमें डूब गया है, उससे तिरना कठिन हो रहा है। ज्ञनानन्दस्वभावमें विकल्पका उत्थान है ही नहीं; उसमें पर पदार्थका तो त्रिकाल अभाव है तथा उसमें शुभाशुभपरिणाम उठते हैं उनका भी अभाव है—इस प्रकार

www.vitragvani.com

ज्ञानमें एकाग्र होकर विकल्पको पृथक् करना ही आत्महितका उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। २९५.

❀ अरे प्रभु! निमित्तसे उपादानमें कोई कार्य होता ही नहीं। ज्ञान होनेकी योग्यतानुसार समयसारादि निमित्त तो सहज होते हैं। प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय उस-उस समयकी योग्यतासे ही स्वतंत्र कार्यरूप परिणमती है, उसमें निमित्तभूत अन्य द्रव्य अकिंचित्कर है। ''योग्यता ही सर्वत्र शरणरूप है।'' कोई द्रव्य अन्य द्रव्यको ला सकता है या अन्य द्रव्यमें फेरफार कर सकता है या उसे क्षेत्रान्तर कर सकता है—ऐसा माननेवाले सर्वज्ञकी आज्ञासे बाहर हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। दर्शनमोहसे मिथ्यात्व हुआ, ज्ञानावरणीयसे ज्ञानकी हीनता हुई आदि कथन शास्त्रमें आते हैं वह तो उपादानसे होनेवाले कार्यकालमें निमित्त कैसा होता है उसका ज्ञान करानेके लिये व्यवहारसे कथन किया जाता है। २९६.

❀ यद्यपि कर्म तथा भावकर्म आत्माके साथ आकाशके एक क्षेत्रावगाहरूप हैं, जिस आकाशके प्रदेशमें शुद्ध चेतना है उसी प्रदेशमें विकार है, परन्तु अपने प्रदेशकी अपेक्षासे देखें तो एकक्षेत्रावगाहरूप नहीं है। नित्यतादात्म्यरूप तो नहीं है किन्तु अनित्य-तादात्म्यरूप भी नहीं है। विकार और आत्माके बीच संधि है, क्योंकि दो कहनेसे दो एक हुए ही नहीं हैं, दोनोंके बीच सन्धि है। चेतनामात्र द्रव्य, ज्ञाता-द्रष्टास्वरूप आत्मा शुद्ध स्वरूप एक वस्तु और विकार दूसरी वस्तु है, क्योंकि शुभाशुभभाव आस्रवतत्त्व है और आत्मा जीवतत्त्व है। विकार भले पर्यायरूप है परन्तु वह तत्त्वरूप है, उसमें सप्तभंगी उठती है। २९७.

❀ श्री समयसारकी पाँचवीं गाथामें आचार्यदेव कहते हैं कि–गुरुके अनुग्रहसे– कृपासे मुझे अंतरमें आनन्दका जो प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है मेरे उस निजवैभवसे एकत्व-विभक्त आत्माको दरशाता हूँ उसे अपने अनुभवसे प्रमाण करना। तेरे भगवानमें अनन्त केवलज्ञानकी पर्यायें प्रगट हों ऐसी शक्ति विद्यमान है उसका स्मरण करके अनुभवसे प्रमाण कर। वर्तमानमें केवली भगवानका विरह है, केवलज्ञानका विरह है उसे तू भल जा और जिसमें अनन्त केवलज्ञान पर्यायोंकी शक्ति भरी है ऐसे अपने भगवानका स्मरण कर तथा अनुभवसे प्रमाण कर। २९८.

❀ वीतरागभावस्वरूप आत्मा है वह वीतरागभावसे प्राप्त होता है; सर्वज्ञ परमात्माके प्रति प्रेमका उसमें अवकाश नहीं है। बाहरका सब भूला जा। शरीर-मन-वाणीको भूल जा, रागको भूल जा, एक समयकी पर्यायको भी भूल जा। आकाशके अनन्त प्रदेशोंकी अपेक्षा

www.vitragvani.com

भी अनन्तगुने गुण आत्मामें है और एक-एक गुणमें अनन्त गुणोंका रूप है, तथा एक-एक गुणकी पर्यायमें षट्कारक हैं—ऐसा भगवान आत्मा है, तीनलोकका नाथ है, परन्तु कौड़ी-कौड़ीके लिये भिखारी बना फिर रहा है! २९९.

❀ जिसे द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट हुई है उसे दृष्टिके जोरमें मात्र ज्ञायक भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होते। भेदज्ञानकी परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्नमें भी आत्मा शरीरसे भिन्न भासित होता है। दिनमें तो भिन्न भासता है किन्तु रात्रिको नींदमें भी निराला भासित होता है। सम्यग्दृष्टिको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है; परन्तु बाह्य वर्तनमें भी किन्हीं भी संयोगमें उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई भिन्न प्रकारकी रहती है। बाह्यसे चाहे जैसे प्रसंगमें–संयोगमें युक्त दिखायी दे तथापि ज्ञायक तो ज्ञायकरूप ही भासता है। विभावसे भिन्न ज्ञायकरूप निःशंक भासता है। सारा ब्रह्मांड बदल जाये फिर भी वह स्वरूपानुभवमें निःशंक वर्तता है। ज्ञायक पर आरूढ़ होकर ऊर्ध्वरूपसे विराजता है, दूसरे सब नीचे रह जाते हैं। चाहे जैसे शुभभाव आयें, तीर्थंकर गोत्रका शुभभाव आये तथापि वह भी नीचे ही रहता है। द्रव्यदृष्टिवंतको ऐसी अद्भुत शक्ति वर्तती है। ३००.

❀ निश्चयदृष्टिसे प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप ही है; जिनवर और जीवमें फेर नहीं है। भले ही वह एकेन्द्रियका जीव हो या स्वर्गका जीव हो, यह सब तो पर्यायमें है, वस्तु स्वरूपसे तो परमात्मा ही हैं। जिसकी दृष्टि पर्यायके ऊपरसे हटकर स्वरूपमें स्थिर हुई है वह तो अपनेको तथा प्रत्येक जीवको भी परमात्मस्वरूप देखता है। सम्यग्दृष्टि सर्व जीवोंको जिनवर जानता है और जिनवरको जीव जानता है। अहा! कितनी विशाल दृष्टि! अरे, यह बात बैठ जाये तो कल्याण हो जाये!....परन्तु ऐसी स्वीकृतिको रोकनेवाले मिथ्या मान्यता रूपी गढ़ोंका कोई पार नहीं है! यहाँ तो कहते हैं कि बारह अंगका सार यह है कि जिनवर समान आत्माको दृष्टिमें लेना, क्योंकि आत्माका स्वरूप परमात्मस्वरूप ही है। ३०१.

❀ ग्यारहवीं गाथामें ऐसा कहा है कि त्रैकालिक ज्ञायकभाव ध्रुवस्वरूप है वही सत्यार्थ है, वहाँ पर्यायको गौण करके व्यवहार कहकर असत्यार्थ कहा है। तो फिर वह पर्याय है या नहीं?—उसकी बात बारहवीं गाथामें कही है कि साधक जीवको आत्माका अनुभव हो गया है परन्तु पूर्णताको प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् अनुभवका पहला समय ऐसा जो जघन्यभाव उसे तो पार कर गया है किन्तु उत्कृष्ट भावको प्राप्त नहीं हुआ इसलिये मध्यमभावको अनुभवता है, ऐसे साधक जीवको पर्यायमें शुद्धता अशुद्धताके अंश हैं वह

www.vitragvani.com

व्यवहार है; इसलिये वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, प्रयोजनवान है अवश्य, परन्तु हेयरूप–छोड़नेयोग्य जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदरणीयरूपमें जाना हुआ प्रयोजनवान नहीं है। साधकको पर्यायमें अशुद्धता वर्तती है वह व्यवहारनयका विषय है, इसलिये उस-उस समयमें व्यवहारको हेयरूप जाना हुआ उस काल प्रयोजनवान होनेसे उनको व्यवहारका उपदेश दिया गया है। ३०२.

❀ बाह्य वस्तु बंधका कारण नहीं है, क्योंकि बाह्य वस्तु अपनी पर्यायमें अतद्भावरूप है इसलिये वह बंधका कारण नहीं होती। कर्म, शरीरादि बाह्य वस्तु परद्रव्य होनेसे बंधका कारण नहीं है ऐसा कहा और पहली गाथामें कहा कि अनन्त सिद्धोंकी तेरी पर्यायमें स्थापना करता हूँ; परन्तु अनन्त सिद्ध तो परद्रव्य हैं न? तेरी पर्यायमें अतद्भावरूप है न? उनकी स्थापना कैसे होगी?–तो कहते हैं कि–वे अनंत सिद्ध पर्यायमें भले ही अतद्भावरूप हों परन्तु अनंत सिद्धोंकी प्रतीति पर्यायमें आ जाती है, इसलिये अनंत सिद्धोंकी स्थापना करनेको कहा। जिसप्रकार अध्यवसानका त्याग करनेके लिये बाह्य वस्तुका त्याग करवाया जाता है उसीप्रकार अपने सिद्धस्वभावकी पर्यायमें स्थापना करानेके लिये अनंत सिद्धोंकी स्थापना करायी गई है। जिस प्रकार बाह्य वस्तु अध्यवसानका निमित्त है उसीप्रकार अपने सिद्धस्वरूपका लक्ष करनेमें अनंत सिद्ध निमित्त हैं। ३०३.

❀ श्रोता :—द्रव्यस्वभावमें विकार है ही नहीं और कारणपरमात्माको पापरूप शूरवीर शत्रुसेनाको लूटनेवाला क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेव :—वह तो पर्यायसे बात कही है। पर्यायमें रागादि भाव हैं वे स्वभावोन्मुख होनेपर उत्पन्न ही नहीं होते, उनका नाश किया ऐसा कथनमात्र कहा जाता है। द्रव्यस्वभावमें तो रागादिभाव या सम्यग्दर्शन, चारित्र, केवलज्ञान या सिद्धपर्याय–यह कोई पर्याय द्रव्यस्वभावमें है ही नहीं। संसार-मोक्ष यह सब पर्यायोंका खेल है। द्रव्यस्वभावमें वे पर्यायें हैं ही नहीं। त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव एकरूप है। उसे न तो कुछ ग्रहण करना है और न छोड़ना है। ज्ञायकभाव तो शाश्वत है ही। तीन कषायका अभाव करके अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेनेवाले दिगम्बर सन्तोंके अंतरकी बात ही गजबकी है! ऐसी बात दिगम्बर सन्तोंके सिवा भरतक्षेत्रमें अन्यत्र कहीं नहीं है। वे दिगम्बर सन्त कहते हैं कि सर्व जीव सुखी होओ, किसी जीवको दुःख न हो, सर्व जीव मुक्तदशाको प्राप्त करें। प्रत्येक आत्मा मुक्तस्वभावी ही है। जिसप्रकार चावल और कुलथीके उत्पन्न होनेकी भूमि अलग-अलग होती है उसीप्रकार

www.vitragvani.com

चावल अर्थात् मुक्ति उसके उत्पन्न होनेका स्वच्छ स्थान अर्थात् मुक्तस्वरूप, उसीके आश्रयसे मुक्ति उत्पन्न होती है। ३०४.

❁ द्रव्यलिंग तो सर्वथा जीवका स्वरूप नहीं है और भावलिंग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी शुद्ध निर्मल पर्याय जो पूर्णस्वरूप ऐसे मोक्षकी साधक है वह उपचारसे जीवका स्वरूप कही जाती है, परमार्थ सूक्ष्म शुद्ध निश्चयनयसे वह भी जीवका स्वरूप नहीं है। अहाहा! साधक पर्यायको द्रव्यकी पर्याय है ऐसा उपचारसे कहा जाता है। देहादि या रागादि तो जीवके हैं ही नहीं, परन्तु यहाँ तो भावलिंगकी निर्मल पर्याय जो कि मोक्षकी साधक है वह भी जीवकी है–ऐसा उपचारसे कहा जाता है। पर्यायका लक्ष छुड़ानेके लिये, भेदज्ञानकी पराकाष्ठाकी यह गाथा (परमात्मप्रकाश-८८) है। ध्रुवस्वभावके सन्मुख जो ध्यानकी अकषाय साधक पर्याय प्रगट होती है वह भी उपचारसे जीवका स्वरूप है, परमार्थसे तो त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव ही जीवका स्वरूप है। ऐसी बात तो भाग्यशालीके कानोंमें ही पड़ सकती है। ३०५.

❁ आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! तेरा आत्मा शुद्ध ज्ञानघन स्वरूप है, ज्योंका त्यों है, उसमें कोई अपंगता या त्रुटि आयी ही नहीं है। भले ही वह नरक–निगोदमें भटका, परन्तु किंचित् त्रुटि–न्यूनता आयी ही नहीं। इसलिये तू प्रसन्न हो, प्रसन्न हो! ३०६.

❁ जिसप्रकार लकड़ीकी अग्निमें ऊपरसे सफेद छारी-राख जैसी आ जाती है परन्तु भीतर वह सुलगती रहती है; अग्निके ऊपरकी छारीरूप राख अग्निसे पृथक् ही है; उसीप्रकार राग भी चैतन्यकी छारी समान होनेसे चैतन्यसे पृथक्का पृथक् ही है। उष्णता और अग्नि एकरूप है उसीप्रकार ज्ञान और आत्मा एकरूप है। ३०७.

❁ बिना पढ़े भी अंतरमें कोई विचार चलते-चलते वह विचारधारा विकल्पका अभाव होनेका कारण होगी, परन्तु जिसे वस्तुकी खबर ही नहीं है उसे विचार चलते ही नहीं, और विकल्पोंको तोड़ना चाहता है वह विकल्प कैसे तोड़ सकेगा? ३०८.

❁ ज्ञानमें सचमुच तो राग ज्ञात होता है; वहाँ अज्ञानी मान बैठता है कि मैंने राग किया; वह रागका कर्तृत्व ही मिथ्यादर्शन है। ३०९.

❁ व्यवहाररत्नत्रयका भाव वह भी विपाककी हद तक पहुँचा हुआ कर्मका फल है, जिसप्रकार कुलथी और बासमती चावलका क्षेत्र ही अलग है, उसीप्रकार राग और आनन्दका

www.vitragvani.com

क्षेत्र ही अलग-अलग है....आनंद स्फुरित हो वह तेरी जाति है, विकल्प उठें वह तेरी जाति नहीं है। ३१०.

❁ अंतरमें गुण-गुणी भेदका विकल्प उठे वह भी कोलाहल और कुहराम है। दूसरोंको समझा दूँ यह कुहराम–शोर है। प्रभावनाका विकल्प उठा वह भी कोलाहल है। ऐसा विकल्प हो तो ठीक है उसे रहने दे! हठ न कर! शांत होकर चैतन्य ज्ञायकको देख। जितने शुभाशुभ विकल्प उठते हैं वे मुझे लाभदायक हैं वह मिथ्यात्वभाव है। ३११.

❁ वस्तु शुद्ध है, अभेद है, एक है, लेकिन किसको? कि जिसको ज्ञानमें और प्रतीतिमें आया है उसको शुद्ध है। वैसे ही शुद्ध-शुद्ध ऐसे नहीं। अपनी तरफ झुके बिना तुझे शुद्ध नहीं। बोलेमें आया उसको नहीं, लेकिन अपना सेवनमें आया तो उस सेवनके द्वारा आत्मा शुद्ध है ऐसा जाननेमें आया। ३१२.

❁ यह तो अनादिसे नहीं किया कार्य है। यह तो अत्यन्त शान्ति एवं धैर्यका कार्य है। एक ओरका पक्षपात–लकवा हो जाना चाहिये कि शरीर-मन-वाणी-विकल्प यह मेरा जीवन ही नहीं है। ३१३.

❁ अल्पज्ञतामें सर्वज्ञताका निर्णय सर्वज्ञ स्वभावको सामने रखकर ही हो सकता है। पर्यायमें तो सर्वज्ञता है नहीं और दूसरे सर्वज्ञ तो पर हैं, इसलिये उन्हें सन्मुख रखनेसे निर्णय नहीं हो सकता, किन्तु अपने सर्वज्ञस्वभावको सन्मुख रखकर अल्पज्ञतामें सर्वज्ञताका निर्णय होता है। ३१४.

❁ स्वच्छत्वशक्तिके कारण ज्ञानमें रौद्रध्यानके परिणाम ज्ञात हुए वहाँ स्वच्छत्व शक्तिमें कहीं अशुद्धता नहीं आ जाती। दर्पणमें अग्नि दिखायी देनेसे उसमें उष्णता नहीं आ जाती। अशुद्धता ज्ञात होनेसे ज्ञान भी अशुद्ध नहीं हो जाता; उस ज्ञानको जो छोड़ना चाहे वह स्वच्छत्वशक्तिको नहीं समझा है। ३१५.

❁ जो परलक्षी वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं वे जीवको लूटकर उत्पन्न होती हैं। शुभाशुभ परिणति तो चुडैलके समान है, उसे छूना नहीं। ३१६.

❁ भगवान तीर्थंकर कहते हैं कि हमें तो तू भूल जा, हमारे प्रति जो राग है उसे भूल जा, परन्तु तुझमें जो गुणभेद होते हैं उन्हें भूल जा। अभेद वस्तुके अनुभवमें जा। भेददृष्टिमें तो आकुलताका स्वाद आयेगा। अपने गुणभेदको लक्षमें रखेगा तबतक आकुलताका अनुभव होगा, आनन्दका अनुभव नहीं होगा। ३१७.

www.vitragvani.com

❁ चार शरणभूतमें आत्मा ही शरणरूप है। चिद्चैतन्य चन्द्रमा सत्स्वरूप है, शाश्वत् है, वह रचेगा किसे? वह ज्ञानसृष्टिकी रचना करता है। उस ज्ञानकी रचना करते-करते केवलज्ञान हो जाता है। ३१८.

❁ शास्त्रश्रवणमें तथा पठनमें उसे लक्ष यही निकालना है कि इससे आत्मामें प्रवेश नहीं हो सकेगा। शुभ आता अवश्य है, होता है, परन्तु उसका लक्ष शुभके ऊपर नहीं होता, शुद्ध द्रव्य पर उसका लक्ष्य होता है। श्रवण करनेका हेतु भी श्रवणका लक्ष छोड़नेके लिये श्रवण करता है। ३१९.

❁ धर्मीका उद्धतज्ञान न तो निमित्तको गिनता है और न रागको, न तो देव-शास्त्र-गुरुको गिनता है और न उनके ओरकी वृत्तिको। त्रिलोकीनाथ भगवानने ऐसा कहा है कि हमारी ओर देखना छोड़ दे....किसीका अवलम्बन लेना पड़े ऐसा मैं नहीं हूँ। एक समयकी पर्यायका भी धर्मीका उद्धतज्ञान आदर नहीं करता अपने अखण्ड स्वभावके सिवा किसीको वह उद्धतज्ञान गिनता नहीं है। ३२०.

❁ ज्ञेयका स्वभाव ज्ञानको ललचानेका नहीं है; ज्ञानका स्वभाव ज्ञेयमें ललचनेका नहीं है; तथापि ऊपरसे ललचा जानेका भाव उत्पन्न करता है वह अज्ञान है। ज्ञानका ज्ञेय है उसे जाननेका ज्ञानका स्वभाव है, उसके बदले जिसने ठीक–अठीककी मान्यता बनायी है, उसने ज्ञेयको ज्ञेयरूप नहीं माना। ३२१.

❁ श्री समयसार गाथा ११में भूतार्थ–अभूतार्थ सम्बन्धी स्पष्टता करते हुए पूज्यश्रीने कहा कि–द्रव्यमें पर्याय नहीं है वह बात यहाँ नहीं है, परन्तु यहाँ तो पर्याय प्रगट सत्रूप है, उसे द्रव्यकी दृष्टि करानेके प्रयोजनकी मुख्यतासे पर्याय अस्तिरूप है उसे गौण करके पर्याय है ही नहीं ऐसा कह दिया है। पर्याय वह विशेषरूप है और विशेषका आश्रय (दृष्टि) करनेसे विषमतारूप मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसे गौण कराके पर्याय है ही नहीं ऐसा कहकर द्रव्यकी मुख्यताका करके द्रव्यको दृष्टिमें लेनेकी मुख्यताका प्रयोजन सिद्ध किया है। ३२२.

❁ देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिका भाव ज्ञानीको आता है वह 'अशुभवंचनार्थ' अर्थात् अनुभवसे बचनेके लिये आता है। परन्तु जिसकी दृष्टि स्वभावपर नहीं है उसके तो मिथ्या पड़ा है इसलिये वह अशुभसे क्या बचेगा? परन्तु धर्मी जीवकी दृष्टि स्वभावपर लगी है उसे अशुभसे बचनेके लिये शुभराग आता है ऐसा कहा जाता है। ३२३.

❁ देव-शास्त्र-गुरुके साथ एकत्वबुद्धि वह मिथ्यात्व है तथा उस ओरके रागमें

www.vitragvani.com

एकत्वबुद्धि वह भी मिथ्यात्व है और उससे भी आगे लें तो देव-शास्त्र-गुरुके निमित्तसे अपने उपादानसे जो परलक्षी ज्ञान हुआ उस ज्ञानमें एकत्वबुद्धि वह भी मिथ्यात्व है। ३२४.

❁ विवाहादिमें जाना हो तो उसके लिये कितनी तैयारी होती है! अच्छेसे अच्छे कपड़े पहिनता है–ओढ़ता है; उसीप्रकार अंतरमें जानेके लिये बड़ी तैयारी होनी चाहिये; पुरुषार्थको अच्छी तरह सजाना चाहिये। ३२५.

❁ यह मार्ग कठिन है ऐसा उसने मान लिया है। भाई, अपनी ही वस्तु महँगी क्यों होगी?....लेकिन महँगा मान लिया है, इसलिये उसे लगता रहता है कि समझमें नहीं आयेगी। मार्ग तो सरल है, परन्तु अटकनेके स्थान इतने हैं कि कहीं न कहीं अटक जाता है। यदि अटके नहीं तो सरल ही है; परन्तु वह कोई न कोई उलझन खड़ी करता है इसलिये उसे यह समझमें नहीं आता। ३२६.

❁ परमें किंचित् भी सुखबुद्धिका होना वह अतीन्द्रिय महा पदार्थका अनादर है। अतीन्द्रिय महा पदार्थ ही आनन्दसे परिपूर्ण है। अपने त्रैकालिक अपरिमित आनन्दका अनादर करना ही आत्माकी हिंसा है। ३२७.

❁ सत् जैसा है वैसा ज्ञानमें नहीं आयेगा तो वह उत्तर नहीं देगा, सम्यक्ज्ञान नहीं होगा, दृष्टि नहीं होगी, अनुभव नहीं होगा। श्रीमन्त–धनवानको कोई भिखारी कहे तो वह उत्तर नहीं देगा, उसीप्रकार सत्को ज्योंका त्यों–यथावत्—स्वीकार नहीं करेगा तो वह उत्तर नहीं देगा। ३२८.

❁ जिस रीतिसे पर्याय द्रव्यकी ओर ढले तदनुसार पठन-मनन-श्रवण-विचार सब करना चाहिये; मूल प्रयोजन तो द्रव्यकी ओर ढलना ही है। ३२९.

❁ भगवान सर्वज्ञ कहते हैं कि तू पहली ही चोटमें हमारी ओर देखना छोड़ दे और भिन्न वस्तुभूत शुद्ध ज्ञानमय आत्माको प्राप्त कर। सीधे उसकी ओर देखकर प्राप्त कर....अहाहा! ३३०.

❁ मैं अन्य जीवको मार सकता हूँ, जिला सकता हूँ, दूसरे जीवोंको भोजनादिकी सुविधा देकर सुखी कर सकता हूँ अथवा दूसरे जीवोंको असुविधा देकर दुःखी कर सकता हूँ यह मान्यता महा पापदृष्टिकी है। एक तिनकेके दो टुकड़े कर सकता हूँ, हाथकी अँगुली हिला सकता हूँ, वाणी बोल सकता हूँ, रोटीका कौर तोड़ सकता हूँ–इसप्रकार परद्रव्यकी क्रियाका कर्ता मैं हूँ–ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टिकी है। ऐसे जीव त्रिलोकके सभी पदार्थोंकी क्रिया

www.vitragvani.com

मैं कर सकता हूँ ऐसी मान्यतासे मिथ्यात्वरूप महा पापका बंध करते हैं, क्योंकि अज्ञानमें जगतकी किसी भी वस्तुको अपनी माने बिना नहीं रहते। ३३१.

❁ प्रभु! तू सर्वके ज्ञाता-द्रष्टास्वरूपसे पूर्ण है न! परन्तु अपने पूर्ण स्वरूपको न जानकर मात्र ज्ञेयको जानने–देखनेमें रुक गया है वह तेरा अपराध है। पुण्य-पापके भावको करने तथा जानने–देखनेके स्वभावको भूल गया वह तेरा अपराध है। पुण्य-पाप ही और उतना ही मेरा ज्ञेय है–ऐसा मानकर उसीको जाननेमें रुक गया और अपने पूर्ण जाननेके स्वभावको भूल गया वह तेरा ही अपराध है। कर्मके कारण अपने पूर्ण स्वभावको नहीं जानता ऐसा नहीं है, परन्तु वह तेरा अपना ही अपराध है। ३३२.

❁ एक समयकी निर्मल पर्याय जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी पर्याय है उसे रत्नत्रय कहा है और उसका फल जो केवलज्ञान पर्याय वह महारत्न है तथा ज्ञानगुणकी एक समयकी वह पर्याय महारत्न है....तो ऐसी अनन्तानन्त पर्यायोंका धारक ज्ञानगुण वह महारत्न है। ऐसे ज्ञान-आनन्दादि अनन्त गुणरूपी महान-महान रत्नोंका धारक आत्मद्रव्य तो महारत्नोंसे भरपूर समुद्र है, उसकी महिमाका क्या कहना? अहो! उसकी महिमा वचनातीत है। वह अपरम्पार महिमा अनुभवगम्य ही है। ऐसे स्वभावका विश्वास और दृष्टि करे तो खबर पड़े। ३३३.

❁ आत्मा अर्थात् ज्ञातृत्वका पिण्ड....ज्ञानका भण्डार....बस उसमें तो ज्ञातृत्व.... ज्ञातृत्व....एक ज्ञातृत्व ही आता है, अन्य कुछ करना नहीं आता! परन्तु ज्ञातृत्व वह कर्तृत्व नहीं है?—ज्ञातृत्व ही एक करना है, परन्तु समझनेका–ज्ञान करनेका उसे माहात्म्य नहीं आता। ३३४.

❁ अपनी महिमा कर, अन्य सबकी महिमा छोड़–ऐसा कहा जाता है, परन्तु मैं शुद्ध हूँ तथा परिपूर्ण हूँ–ऐसी महिमा आती है वह भी विकल्पात्मक महिमा है। वास्तवमें स्वसन्मुख होने पर ही अन्तरोन्मुखता होती है।

श्रोता :—स्वसन्मुख होना ही महिमा करना है न?

पूज्य गुरुदेव :—महिमा भी अभी विकल्प है, सहज ही अन्तर्मुख हो जाना....कहनेमें तो और क्या आयेगा? वस्तु तो वचनातीत है। जो भी जितना कहा जाता है वह तो सब भेदरूप है, अन्तर्मुख हो जाना वह भी अभी भेद है। ३३५.

❁ वर्तमान वर्तती इस कालकी ज्ञानपर्याय वह त्रैकालिक ज्ञायकका ही एक अंश है?

www.vitragvani.com

उसे अन्तर्मुख करने पर 'चैतन्यहीरा'' ज्ञानमें आता है। अवयव द्वारा अवयवीकी प्रतीति होती है; ज्ञानकी पर्यायको अन्तरोन्मुख करके देख तो तेरा चैतन्यसूर्य तेरी प्रतीतिमें आयेगा, उसका प्रकाश तुझे दिखाई देगा। ३३६.

❁ आत्मा परमात्मा स्वरूप ही है। परमात्मा तेरे निकट ही है। अरे! तू स्वयं ही परमात्मा है। उसके सन्मुख तो देखता नहीं और धुएँको पकड़नेका मिथ्या प्रयत्न करता है! भाई, संतोंने मार्ग सरल कर दिया है, तू है वहाँ जा! नहीं है वहाँसे हट जा! ३३७.

❁ पहले विश्वास ला कि मेरे जैसा कोई सुखी नहीं है, क्योंकि मैं परम स्वाधीन हूँ। मुझे अपने कार्यके लिये अन्य साधनोंका आश्रय नहीं लेना पड़ता, इसलिये मैं परम सुखी हूँ ऐसा विश्वास पहले प्रगट कर! अस्तिरूप, सत्तारूप विद्यमान भगवान आत्मा स्वसत्ताके विश्वास द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अमाप...अमाप आनन्द, ज्ञानादि अनन्तभावोंसे भरपूर स्वभाव अपने स्वभावके साधनसे ही प्रगट होता है। परके साधन द्वारा अपना स्वभाव प्रगट हो ऐसा आत्माका स्वरूप है ही नहीं। ३३८.

❁ अहाहा! उस-उस द्रव्यकी उस-उस कालके पर्याय योग्यतानुसार ही होती है वह उसका स्वकाल है तब होती है। उसके होते समय बाह्य वस्तु पर निमित्तपनेका आरोप आता है। यदि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी पर्यायको करे तो दूसरा द्रव्य कहाँ रहा? अनन्त द्रव्य अस्तित्वरूप हैं उन प्रत्येकको भिन्न-भिन्न अस्तित्वरूपसे माने तब श्रद्धा-ज्ञान सच्चे होंगे। ३३९.

❁ जैसे कोई बच्चा रोता हो तो उसका पिता कहता है कि–बेटा रो मत, देख तेरा पेड़ा पूरेका पूरा रखा है....खुश हो जा! उसी प्रकार आचार्यदेव भव्यसे कहते हैं कि हे आत्मा! तू प्रसन्न हो! आनन्द मना! देख तेरा आत्मा त्रिकाल ज्योंका त्यों शुद्ध ही है। शरीरादि या रागादिने आत्माको स्पर्श तक नहीं किया है–छुआ तक नहीं है, रागादि तो ऊपर-ऊपर ही लोट रहे हैं, इसलिये भाई तू खुश हो! और प्रसन्न होकर देख! तेरा आत्मा शुद्ध चैतन्यघन ही है। ३४०.

❁ परिणामको परिणाम द्वारा देख ऐसा नहीं, परन्तु परिणाम द्वारा ध्रुवको देख! पर्यायसे परको तो न देख, परन्तु भगवान पूर्णानन्दका नाथ–प्रभु उसे पर्यायसे देख। उसे देखकर अपनी दृष्टि वहाँ लगा। छह महिने तक ऐसा अभ्यास कर। अन्तर्मुख तत्त्वको अंतरंगके परिणामसे देख। अंतरमें प्रभु–परमेश्वर स्वयं विराजमान है उसका एकबार छह महिने तक तो अभ्यास कर कि यह कौनसी वस्तु है? दूसरी चपलता और चंचलताको छोड़कर

www.vitragvani.com

अंतरमें जो सिद्ध सदृश पूर्णानन्दका स्वामी विराजमान है उसका छह महिने अभ्यास कर। ३४१.

❁ बाहरसे हटकर भीतर प्रवेश किया और यह दर्शन-ज्ञान सो आत्मा....आत्मा....ऐसे जो भेद उठते हैं वह भी रागकी वृत्ति–आठ कर्मोंसे उत्पन्न हुआ भाव है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा तो अंतरमें अभेद दृष्टि करके आनन्दका अनुभवन करना वह है। ३४२.

❁ हटना कहाँ है? मैं पुण्य-पापरूप हो गया हूँ ऐसा मान रखा है, परन्तु वह मैं हूँ नहीं, बस इतनीसी बात है, सिर्फ मान्यता बदलना है। तेरी दृष्टिके फेरसे संसार है; और मैं पुण्य-पापरूप हुआ ही नहीं हूँ–ऐसी दृष्टि तथा अनुभव करना वही मुक्ति है। ऐसे अंतरस्वीकारको ही मुक्ति या मुक्तिका पंथ कहा जाता है। ३४३.

❁ मैं तो ज्ञानज्योति स्वरूप हूँ, जानना-देखना वह मेरा कार्य है। विकारके परिणामोंको छुए बिना–स्पर्श किये बिना अपने अस्तित्वके कारण मैं जानता हूँ। रागादि किसी भी प्रकारसे मेरा कार्य नहीं है;–इस प्रकार सभी ओरसे कर्ताकर्मकी प्रवृत्तिका शमन करती हुई ज्ञानज्योति प्रगट होती है, स्फुरायमान होती है। कर्ताकर्ममें तो अज्ञानीको विकारका स्फुरण था, चैतन्यज्योतिकी अंतदृष्टि होने पर ज्ञानज्योति प्रस्फुरित हुई वह मेरा कार्य है। ३४४.

❁ त्रैकालिक शुद्ध जीव चैतन्यप्रभु कि जिसकी पर्यायमें विकार होने पर शुद्ध जीव प्रगट होता है; अपना जो अबंधस्वभाव ज्ञायकभाव प्रमत्त–अप्रमत्त दशासे रहित है उस शुद्ध ज्ञायकभावका सम्यग्दर्शनमें स्वीकार करके शुद्ध जीव प्रगट होता है वह सुखी है, और जो ऐसा मानता है कि जो विकार और उसका फल सो मैं हूँ वह मिथ्यादृष्टि है–दुःखी है, दुःखका आहार करता है। ३४५.

❁ जीव जिनवर हैं और जिनवर जीव है–ऐसी दृष्टि हो उसे पर्यायबुद्धि छूट जाती है। सम्यग्दर्शन प्रगट करनेके लिये कितने ही गढ़ लाँघकर अंतरमें प्रवेश होता है उसके व्यवहारमें कितने प्रकारकी योग्यता होती है, संसारभाव किंचित् भी रुचते नहीं हैं; आत्मा.....आत्माकी धुन लगे तब सम्यग्दर्शन होता है। ३४६.

❁ भाई! एकबार बाहरके मोहकी मिठास छोड़ दे। जिस प्रकार गुड़की भेली मिठाससे भरपूर है उसी प्रकार भगवान अमृतकी भेली है, वहाँ एकबार मतिको स्थिर कर। बड़े–बड़े बँगले, उनके फर्निचर तथा अन्य साधन–सुविधाओंमें मति इतनी एकाकार हो गई है कि भाई! मरते समय वह छोड़ना तुझे कठिन लगेगा। इसलिये वहाँसे मति हटा ले! ३४७.

www.vitragvani.com

❀ हे जीव तू ही तेरा तीर्थ है वही स्थिरता कर, दूसरे तीर्थोमें न जा न जा! व्यवहार निषेध्य है न! इसलिये यहाँ योगीन्द्रदेव स्पष्ट करते हैं कि सम्मेदशिखर आदि तीर्थ तो पर तीर्थ हैं वहाँ न जा! उसके लक्षसे तुझे शुभराग होगा। तू अपने परम तीर्थस्वरूप आत्मामें आरूढ़ हो। उससे तुझे निर्विकल्प आनन्दका अनुभव होगा। अन्य गुरुकी सेवा न कर, उसके लक्षसे तुझे राग होगा। तू अपने परमार्थ गुरुकी सेवा कर उसीसे तुझे आनन्दकी प्राप्ति होगी। देवकी सेवा कर, अन्य देव अरिहंत, सिद्धका ध्यान न कर। भाई उनके लक्षसे शुभ विकल्प तथा पुण्य बँधन होगा। तू अपने आत्मदेवका ध्यान कर जिससे तुझे आनन्दके नाथकी भेट होगी। तू अपने परम देव–गुरु और तीर्थके समीप जा। ऐसा कहकर रागके कारणभूत व्यवहार देव–गुरु–तीर्थका लक्ष छुड़ाकर आनन्दके कारणभूत परमार्थ देव–गुरु-तीर्थका लक्ष कराया है। ३४८.

❀ प्रत्येक द्रव्यके परिणाम अपने उत्पाद–व्यय–ध्रुवसे ही होते हैं; अन्य द्रव्यका किंचित् कार्य नहीं है। ध्वजा स्थिर थी और एकदम लहराने लगी, वहाँ पवनके आनेसे लहराने लगी ऐसा नहीं है। पानी ठण्डा था और फिर गरम हो गया वह अग्नि आनेसे गरम हुआ हो ऐसा नहीं है। चावल कठिन थे और फिर नरम हो गये, वे पानीके आनेसे हुए हैं ऐसा नहीं है बाह्य दृष्टिसे देखनेवाले अज्ञानीको निमित्त देखकर भ्रम होता है कि पानी ठण्डा था वह अग्निका निमित्त आनेसे गर्म हुआ है; परन्तु ऐसा नहीं है। घर बैठा था तब अशुभ परिणाम थे और मन्दिरमें भगवानके दर्शन करने आया वहाँ शुभ परिणाम हुए; इस प्रकार एकदम अशुभमेंसे शुभ परिणाम हुए वे निमित्तके कारण हुए हैं ऐसा नहीं है, परन्तु अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवसे अर्थात् अपनेसे ही हुए हैं। एक द्रव्यका कार्य दूसरा द्रव्य बिलकुल नहीं कर सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको छूता या स्पर्श नहीं करता तो वह दूसरे द्रव्यका करेगा क्या? अहाहा! ऐसी वस्तुकी स्वतंत्रता बैठ जाये तो उसकी दृष्टि बाहरसे हटकर भीतरकी ओर झुक जाये। ३४९.

❀ अरिहंतके द्रव्यको, गुणोंको तथा प्रगट पर्यायोंको यथार्थ जाने–किसलिये जाने?– कि अपने आत्माको जाननेके हेतु जाने–वह सचमुच आत्माको जानता है। जिसने वास्तवमें परमात्माके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाना–अपने आत्माको जाननेके हेतुसे जाना–वह सचमुच आत्माको जानता है। यथार्थरूपसे अरिहंतको जान–ऐसा कहनेका तात्पर्य आत्माको जाननेके लक्षसे जान ऐसा है। 'यथार्थ' शब्दमें बहुत भार है। ऐसे तो ग्यारह अंग और नव पूर्वको अनन्तबार कण्ठस्थ किया है परन्तु वह कोई अपूर्व वस्तु नहीं है। इसलिये कहते हैं कि

www.vitragvani.com

अपना स्वरूप कितना है वह जाननेके लिये जिसने यथार्थरूपसे अरिहंतको जाना है–लोगोंको सुनाने या बातें करनेके लिये नहीं परन्तु अपने आत्माको जानने हेतु जिसने यथार्थरूपसे अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाना है वह आत्माको जानता है। क्योंकि दोनोंमें सचमुच कोई अन्तर नहीं है। अन्तर नहीं है का अर्थ क्या?–कि त्रैकालिक स्वभावकी अपेक्षासे सर्वज्ञमें और अपने आत्मामें अंतर नहीं है। सर्वज्ञ जितनी पर्याय प्रगट करेंगे उतनी ही शक्तिवाला मेरा द्रव्य है इसलिये दोनोंमें सचमुच अंतर नहीं है। ३५०.

❀ अहाहा! सर्वज्ञ अर्थात् पूर्ण...पूर्ण....मात्र ज्ञान; द्रव्यमें पूर्ण, गुणमें पूर्ण, पर्यायमें पूर्ण प्रगट ज्ञान; ज्ञान अर्थात् अपूर्णता नहीं, राग नहीं, मात्र ज्ञानका ही पूर्ण प्रकाश–ऐसी श्रद्धा करने जायें वहाँ अंतरमें मात्र ज्ञानकी प्रतीति हो जाती है, उसीका अनुभव होता है। इसमें दूसरा कुछ करना नहीं है। बस, मात्र ज्ञान–आनन्दका रस ही है, ज्ञानकी डली है, उसमें इन्द्रिय, राग या अल्पज्ञता है ही नहीं। ३५१.

❀ प्रभु! एक समयकी पर्यायसे भी उदासीन होकर अपने त्रैकालिक आनन्दकंद ज्ञायकको पकड़। भावेन्द्रिय–क्षायोपशमिक ज्ञान–तो खण्डखण्डरूप ज्ञानपर्याय है और आत्मा तो पूर्ण निरावरण, अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासस्वरूप परम पदार्थ है, वह भावेन्द्रियके लक्षसे भी पकड़में नहीं आता; पकड़नेवाली पर्याय स्वयं क्षायोपशमिकभावरूप है, परन्तु उसके लक्षसे भगवान आत्मा पकड़में नहीं आता। वस्तु स्वयं अपने क्षायोपशमिक ज्ञानकी पर्याय द्वारा अपने ज्ञायकस्वभावका आश्रय करे तो द्रव्य पकड़में आये। अहा! ऐसा मार्ग है परमात्माका। महाविदेहमें भगवानके निकट तो यह सनातन मार्ग चलता है। सत्यको कहीं संख्याकी आवश्यकता नहीं है कि अनेक लोग मानें तभी सत्य कहा जायेगा। वस्तु जिस प्रकार सत्य है उसे उसी प्रकार माने तो सत्य कही जाती है। ३५२.

❀ दूसरोंका कुछ करना या लेना–देना तो है ही नहीं, किन्तु अपनेमें अपने विचार, मन्थन चलता हो वह विकल्प भी तोड़ दूँ–वह भी विकल्प है क्योंकि विकल्प तोड़ दूँ वह तो पर्यायके ऊपर दृष्टि गई। पर्यायमें पर्यायसे ध्रुवका निर्णय करना है! विकल्पको तोड़ुँ ऐसे विकल्पसे भी उस पार–पृथक्–चैतन्य पदार्थ है। उसका अस्तित्व खयालमें लेना कि रागसे तथा पर्यायसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ–ऐसा निरन्तर मंथन रहना चाहिये। ३५३.

❀ भगवान आत्मा ज्ञातृत्वका भण्ड़ार....उससे भिन्न जितने भाव–जिस भावसे तीर्थंकर गोत्रका बन्ध हो वह भाव भी परभाव–परभाव–परभाव हैं। यदि तुझे चतुर्गतिके दुःखोंका भय

www.vitragvani.com

लगा हो उन परभावोंको छोड़। राग मुझे लाभदायक है ऐसा जो मानता है वह तो शरीरको जीव मानता है। भगवान आत्मा सच्चिदानंद प्रभु है और शरीर कर्म, राग, शुभाशुभभाव वह सब शरीर है। रागके कणको अपना मानता है वह बहिरात्मा शरीरको ही आत्मा मानता है। ३५४.

❀ अहाहा! भगवान! तुझमें शरीर-मन-वाणी तो है ही नहीं किन्तु राग भी तुझमें नहीं है, किन्तु यहाँ तो उससे भी गहरी बात करते हैं कि तुझमें जो शुद्ध पर्याय प्रगटती है, शुद्ध पर्याय बढ़ती है, पूर्ण शुद्ध पर्याय होती है–ऐसी ध्यानावली तुझमें होना भी शुद्धनय नहीं कहता। वे पर्यायें तुझमें नहीं हैं। तू तो त्रैकालिक तत्त्व सदा कल्याणस्वरूप शुद्ध ही है। अरे, लेकिन यह तो पंचमकाल है, सभाको देखकर बात कीजिये। भाई, सुन...सुन..! हम तो आत्माको देखकर बात करते हैं। भगवान आत्मा सदा आनन्दमय, सदा वीर्यमय, सदा शिवमय ऐसा परमात्मतत्त्व है उसके सम्बन्धमें दया–दानादि करना कहते हुए लज्जा आती है। अरे! तू इतना महान परमात्मस्वरूप सदा कल्याणमय है कि तुझमें ध्यान करना कहते हुए भी लज्जा आती है। ३५५.

❀ जो अनन्तानन्त गुणका महान अस्तित्व विद्यमान है उसकी दृष्टि करने पर विकल्प टूट जाते हैं। परन्तु विकल्पको तो तोड़नेमें तो मिथ्यात्व होता है। ३५६.

❀ भगवान कहते हैं कि—प्रभु! तू एकस्वरूपसे भीतर विराजमान है और तेरी जो पर्याय है वह प्रमाणका विषय है। द्रव्य और पर्याय दोका ज्ञान है वह प्रमाण है, परन्तु निश्चयका विषय तो पर्यायरहित अकेला द्रव्य है। कोई प्रश्न करे कि–दिगम्बर ऐसा मानते हैं कि द्रव्य पर्यायको नहीं करता? तो कहते हैं कि सत्य तो ऐसा ही है कि—द्रव्य पर्यायको नहीं करता; द्रव्य पर्यायका स्पर्श नहीं करता—छूता नहीं है तो करेगा कहाँसे? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो धर्मदशा उसे भी द्रव्य छूता नहीं है तो करेगा कहाँसे? ३५७.

❀ अपनी भूमिकाके योग्य होनेवाले विकारी भावोंको जो छोड़ना चाहता है वह अपनी वर्तमान भूमिकाको नहीं समझ सका है इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है, और जिसे वर्तते हुए विकारी भावोंका निषेध नहीं आता परन्तु मिठासका वेदन होता है तो वह भी वस्तुस्वरूपको नहीं समझा है, इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है। ज्ञानीको राग रखनेकी भावना तथा रागको टालनेकी आकुलता नहीं होती। ३५८.

www.vitragvani.com

❁ रागका नाश करनेका आत्माका स्वभाव है। ऐसा कहनेमें आता है लेकिन परमार्थसे वास्तवमें तो आत्माका रागको नाश करनेका स्वभाव है ही नहीं। उत्पन्न करनेका ही स्वभाव नहीं है तो रागको नष्ट करनेका भी स्वभाव है ही नहीं। स्वभावमें विभाव है ही नहीं, तो नाश कैसे करेगा? व्यवहारसे कहनेमें आता है किन्तु सममुच तो नाश करनेका स्वभाव ही नहीं। स्वभावमें व्यवहार है ही नहीं, तो नाश कैसे करे? श्री समयसार गाथा ३४में कहा है कि रागका त्याग नाममात्र है, स्वभाव नहीं। ३५९.

❁ पानी पीनेसे प्यास बुझती है, भोजन करनेसे भूख मिटती है, औषधि खानेसे रोग मिटता है–इसप्रकार संसारमें हरएक वस्तुका विश्वास करता है। उस विश्वासके बलसे उन-उन वस्तुओंको प्राप्त करनेकी ओर लक्ष जाता है; वैसे ही आत्माका विश्वास आना चाहिये कि मैं स्वयं ही ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, स्वयं ही परमात्मस्वरूप हूँ, रागादिस्वरूप नहीं हूँ—इसप्रकार अंतरसे विश्वासका बल प्रगट होना चाहिये। अपनी परमेश्वरताका विश्वास.....विश्वास....वह विश्वासका बल उसे अन्तर्मुख ले जाता है। ३६०.

❁ वास्तवमें तो एकाकार अखण्ड ज्ञायकभावका सेवन करे तभी मोक्षमार्गकी पर्याय प्रगटती है। उसके पूर्व मोक्षमार्गकी पर्याय ही प्रगट नहीं होती, तो उसका सेवन किस प्रकार करेगा? अभेद आत्माके सेवनसे मोक्षमार्गकी पर्याय प्रगटती है इसलिये व्यवहारसे ऐसा उपदेश किया जाता है कि मोक्षमार्गका सेवन करो। परमार्थिकदृष्टिसे देखने पर मोक्षमार्गरूप पर्याय भी आश्रय करने योग्य नहीं है। एकमात्र अखण्ड, अभेद, एकस्वभावी आत्मा ही परमार्थतः सेवन करनेयोग्य है। ३६१.

❁ श्रोता :—सम्यग्दर्शन होनेपर सब व्यवस्थित है?

पूज्य गुरुदेव :—ऐसे ही सब व्यवस्थित ही है, परन्तु सम्यग्दर्शन होनेपर उसके निर्णयमें आ जाता है कि सब व्यवस्थित ही है। श्री समयसार गाथा ३०८–३११में ऐसा सिद्ध किया है कि जीव अजीवका कर्ता नहीं है, परन्तु वास्तवमें तो जीवद्रव्य अपनी पर्यायका भी कर्ता नहीं है, क्योंकि द्रव्यस्वभाव जब दृष्टिमें आ गया तो बस! सब कुछ आ गया।

द्रव्यमें उत्पाद्-व्यय-ध्रुव नामकी शक्ति है उसके कारण पर्याय उत्पन्न होगी; होती है उसे करना कहाँ है? और ज्ञानगुणकी पर्याय भी क्रमबद्धमें जिस प्रकारके रागादि होंगे उन्हें उस प्रकारसे जानती है उसीप्रकारसे क्रमबद्धमें आयेंगे। वह जो पर्याय है उसका भी

www.vitragvani.com

कर्ता द्रव्य नहीं है। पर्याय उसी समय होगी ही, उस समय आयेगी ही, उसका ज्ञानी कर्ता नहीं है, पर्याय जिस काल होना है वह होती ही है। उस पर्यायका कर्ता पर्याय है। जो परिणमता है वह कर्ता है, द्रव्य कहीं परिणमित नहीं होता इसलिये कर्ता नहीं है।

भावशक्तिके कारण प्रत्येक गुणकी पर्याय भवनरूप होगी ही, पर्याय होती ही है; होती है उसे करना कहाँ है? वास्तवमें तो द्रव्यपर दृष्टि गई–द्रव्यका स्वीकार हुआ कि बस! पर्याय प्राप्त हुई और वह भी उसका प्राप्त होनेका काल था। वह पर्यायका स्वकाल था, उसका भी कर्ता नहीं है क्योंकि भावशक्तिके कारण भवन तो है; तब फिर जो है उसे करना क्या?

अहाहा! दृष्टि द्रव्योन्मुख हुई पश्चात् जो होना है वह होता है, उसे जानता है, वह जाननेका कार्य स्वतंत्र होता है। इसे जानना ऐसा भी नहीं है; भावशक्ति है वह पर्यायके बिना नहीं होती। गुणीको पकड़ा है उसके जो भवन पर्याय होती है उसे करना कहाँ है? छोड़ी सूक्ष्म बात आ गई है, यह तो अंतरसे आती है। नया-नया होता है वह होना होता है वही होता है, उसे करना कहाँ है? होता है उसे जानना है, वह जाननेकी पर्याय भी उस काल होना हो वह होती है; क्योंकि प्रत्येक गुणकी वर्तमान पर्याय भावशक्तिके कारण उस काल होती ही है। होती है उसे करना क्या? वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है। ३६२.

❁ एकबार परके लिये तो मर ही जाना चाहिये। परमें मेरा कोई अधिकार ही नहीं है। अरे भाई! तू रागको और रजकणको कर नहीं सकता ऐसा ज्ञाता-द्रष्टा पदार्थ है। ऐसे ज्ञाता-द्रष्टा स्वभावकी दृष्टि कर, चारों ओरसे उपयोगको समेटकर एक आत्मामें ही जा। ३६३.

❁ अन्तिम समयमें समाधान रखने जैसा है। किस क्षण शरीर छूट जायगा—उसका विश्वास करने जैसा नहीं है। शरीर क्षणभंगुर है, नश्वर है। चमड़ेकी चादरसे मढ़ा हुआ हड्डियोंका पिंडर क्षणमें राख बनकर उड़ जायगा। अरे! सारा घर एकसाथ नष्ट हो जाये ऐसी घटनाएँ सुनी हैं। वह कहाँ अविनाशी वस्तु है! सहजात्मस्वरूप एक आत्मा ही अविनश्वर है, सारा जगत अनादिसे अशरणरूप है, भगवान आत्मा ही शरणरूप है। ३६४.

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

❁ चैतन्य भगवान ज्ञान एवं आनन्दरूप है, उसके साथ दया–दानादिके परिणामोंको व्याप्य-व्यापकपना है, तथापि दोनोंके बीच साँध है अर्थात् सममुच आत्मा रागरूप नहीं परिणमता; भले स्थूलरूपसे ऐसा दिखायी दे कि आत्मा अशुद्धरूप परिणमित हुआ है। वर्तमानमें रागके सब जीवको अज्ञानरूपसे व्याप्य-व्यापकपना हुआ है तथापि ज्ञानको सूक्ष्म उपयोग द्वारा रागसे भिन्न करके भेद करने पर भिन्नताकी प्रतीति होती है। ३६५.

❁ एक सज्झाय (स्वाध्याय)में आता है—'सहजानन्दी आतमा, तू सोता क्यों निश्चिंत रे!....प्रभु! तू आनन्दका नाथ सहजात्मस्वरूप परमात्मा है न! तू इस अज्ञानांधकारमें क्यों सो रहा है? तेरी वस्तु भीतर रागरहित निर्विकल्प आनंदस्वरूप है उसे भूलकर तू क्यों निश्चिन्त सो रहा है? जिसमें विकल्पका भी सहारा नहीं है ऐसा अतीन्द्रिय सुखकन्द प्रभु आत्मा भीतर सहज ही–सुगम ही है; परन्तु उसका अभ्यास न होनेके कारण वह दुर्गम लगता है। अरे! एक परमाणुको भी यदि अपना बनाना चाहे तो वह अपना नहीं हो सकता; परन्तु जो वस्तु अपनी है वह तो अपनेको सहज और सुगम ही होगी न? ऐसा होनेपर भी अनभ्यासके कारण दुर्गम लगती है। सहज स्वरूपका अभ्यास नहीं है, उस ओर रुचिका झुकाव नहीं है, परद्रव्य एवं रागादि विकल्पोंकी महिमा है, उसमें तुझे विस्मयता लगी, परन्तु अपनी वस्तुकी विस्मयता को तूने छोड़ दिया। इसलिये तुझे सहजात्मस्वरूप अति दुर्गम प्रतीति होता है। ३६६.

❁ श्रोता :—आपकी वाणी भी ऐसी है कि तत्काल मोक्ष हो जाये!

पूज्य गुरुदेव :—मोक्ष ही है। दृष्टि अन्तर्मुख की इसलिये मोक्ष ही है। मोक्ष अंतरमें विद्यमान है और दृष्टि की इसलिये मोक्ष ही है। फिर भले थोड़ा समय लगे उसकी गिनती नहीं.....३६७.

❁ विष्टाकी टोपलीमें रत्न पड़ा हो तब वह रत्न ही है; उसीप्रकार शरीर चाहे जैसा–पशुका हो, व्यन्तरी देवीका हो, परन्तु अंतरमें चैतन्यरत्नकी प्रतीति हुई है उसे ऐसा उल्लास आ जाता है कि अहो! ऐसा भगवान मेरे पास है और मैं कहाँ देखने जाऊँ? ऐसे उल्लासमें भीतर डोल उठता है। ३६८.

❁ द्रव्यकर्मसे, नोकर्मसे तथा पंचमहाव्रतादिके भावकर्मसे अपनी मति हटा ले। यदि वहाँ मति रह जायेगी तो मरकर उसके फलमें अनन्तकाल निकालना पड़ेगा। इसलिये भगवान! तू राग और शरीरके संयोगमें प्रीति न कर प्रभु! भविष्यमें दुःखके पहाड़ोंमें

www.vitragvani.com

अनन्तकाल व्यतीत करना पड़ेगा, इसलिये वहाँसे अपनी मति छोड़ दे। शरीरादिमें अपनी मतिको मत बिगाड़....मत लगा, और परब्रह्मस्वरूपमें जो कि अमृतसे तृप्त-तृप्त आनन्दका कन्द है, इसमें मति लगा तो आनन्दकी धारा बहेगी! ३६९.

❀ श्रोता :—किस प्रकार श्रवण करें?

पूज्य गुरुदेव :—भाई, आत्माको रागसे जरा भिन्न रखकर सुनना। मैं सिद्ध हूँ–ऐसा लक्ष प्रथम रखकर सुनना। यह तो भाई! परमेश्वरकी बातें हैं; परमेश्वर कैसे हुआ जाये उसकी बातें हैं। ३७०.

❀ भगवान पूर्णानन्दका नाथ है कि जिसका कथन करनेके लिये योगीन्द्रदेवको शब्द कम पड़ते हैं। तेरी महानता तो देख! तेरा जो स्वरूप भगवानने देखा है उसे भगवान भी कह नहीं सके। जड़ वाणी द्वारा आत्माका वर्णन किस प्रकार हो सकता है? शत्रु द्वारा कितनी प्रशंसा करवायी जा सकती है? 'जो स्वरूप सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें, कह न सके उसको जब श्री भगवान भी!'—ऐसा परमब्रह्म तेरा स्वरूप है! उस स्वरूपमें प्रभु अपनी मति लगा; एक बार उसकी रुचि कर। निर्विकल्प आनन्दका स्वामी, सुखका सागर, गुणोंका भण्डार तू है–ऐसी महिमा एकबार तो ला! बिना उस महिमाके तेरी मति वहाँ नहीं लगेगी। बाहरकी महिमा छोड़....वहाँ क्या है? इसलिये परकी महिमा एवं आकर्षण छोड़कर एकबार परब्रह्म प्रभुकी महिमा लाकर वहाँ मति लगा तो तेरा चार गतियोंका भ्रमण मिट जायेगा। ३७१.

❀ भगवान पूर्ण शुद्ध निर्मलानन्द है और उसके सिवा दया-दान-व्रत-भक्तिके परिणाम तथा शरीरकी क्रियाको अपनी माननेवाला–उसे भिन्न नहीं माननेवाला आत्मा बहिरात्मा है। रागादिके परिणाम जो आस्रवतत्त्व है वह बहिरतत्त्व है, उसे आत्महितरूप माननेवाला बहिरात्मा है। कर्मजन्य उपाधिके संसर्गमें आकर कहीं भी उल्लसित वीर्यसे रुचि करना वह बहिरात्मा है। भगवान आत्माका उल्लसित वीर्यसे आदर छोड़कर बाह्यके किसी भी उपाधिभाव या कर्मजन्य संयोगके संसर्गमें आने पर वहाँ वीर्य उल्लसित हो जाये कि—'अहाहा! .....अहाहा!'–इसप्रकार परमें विस्मयता हो जाये उसे बहिरात्मा कहते हैं। अंतरंग आनन्दमें सन्तुष्ट न होकर बाह्य शुभाशुभभाव तथा उनके फलमें जो कि आत्मस्वभावसे बाह्य वर्तते हैं उनमें सन्तुष्ट–प्रसन्न हुआ, उनमें आत्मपना माना उसे बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कहते हैं। ३७२.

❀ जिसने अंतरमें आराधना की उसे भगवानका विरह नहीं है। अरे! हमारा भगवान

www.vitragvani.com

हमारे पास है। हमारी भगवानसे भेट हुई है, हम भगवान ही हैं। अहाहा! पंचमकालके मुनियोंने अपूर्व कार्य किये हैं। यहाँसे स्वर्गमें गये हैं और वहाँसे मनुष्य होकर मोक्षमें जायेंगे। पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए इसलिये एकाध भव शेष रहा गया है, महाविदेहक्षेत्रमेंसे तो उसी भवमें मोक्ष जाते हैं। छह महिना और आठ समयमें छह सौ आठ जीव मोक्ष जाते हैं और उतने ही जीव निगोदसे निकलते हैं, बाकी तो ज्योंके त्यों निगोदमें पड़े रहते हैं। जब देखो तब निगोदके एक शरीरमें रहे हुए जीवोंके अनन्तवें भाग ही मोक्ष जाते हैं। अहाहा! उस निगोदसे निकलकर ऐसा मनुष्य भव प्राप्त हुआ और भगवानकी वाणी मिली यह तो धन्य भाग्य महा पुण्यका ढेर हो.....मेरु समान पुण्यकी राशि हो तब ऐसा योग्य मिलता है। अब कार्य कर लेना वह उसके हाथकी बात है। भाई! ऐसे अपूर्व कालमें तू अपना कार्य कर ले। ३७३.

❀ सुवर्णको वान-भेदसे देखने पर वान-भेदरूप भी है और सुवर्णमात्रसे देखा जाये तो सुवर्णमात्र है, वान-भेद झूठे हैं। उसीप्रकार जीववस्तुको नवतत्त्वके भेदरूप, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप, गुण-गुणीभेदरूप देखने पर वे भेद सत्यार्थ हैं। वस्तु भेदरूप भी है और जीवको वस्तुमात्ररूपसे देखनेपर वे सब भेद झूठे हैं। वस्तु अभेद-भेदरूप है, परन्तु सरागीको भेद देखनेसे विकल्प उठते हैं और अभेदरूप देखनेपर निर्विकल्प अनुभव होता है। केवलीको भेद देखने पर भी वीतरागताके कारण राग उत्पन्न नहीं होता, सरागीको भेदपर लक्ष जानेसे राग होता है। भेदको देखना वह रागका कारण नहीं है, परन्तु सरागीको भेद देखनेसे राग उत्पन्न होता है, इसलिये निर्विकल्पताका प्रयोजन होनेके कारण सरागीको भेदका लक्ष गौण करके अभेदका लक्ष करनेको कहा है। ३७४.

❀ जबतक ज्ञेयमें दो भाग करता है तबतक मिथ्यात्वभाव उत्पन्न होता है। स्त्री-पुत्र मेरे नहीं और देव-शास्त्र-गुरु मेरे, ऐसे भी ज्ञेयमें दो भाग करता है, तबतक मिथ्यात्वभाव उत्पन्न होता है। ३७५.

❀ अनन्त द्रव्योंका मैं कर्ता नहीं–ऐसा जहाँ ज्ञानमें निर्णय करे, वहाँ मैं उनका ज्ञाता अनन्त हूँ–ऐसे अपने ज्ञानकी अनन्तता बैठने पर रागका अंत आ जाता है। अनंत ज्ञेयोंको जान लेनेसे ज्ञेयोंका अंत नहीं आ जाता, परन्तु अपने ज्ञानकी अनन्तता जिसे बैठ गई उसे रागकी एकता टूटकर रागका अंत आ जाता है। ३७६.

❀ वस्तुमें प्रतिक्षण नवीन अवस्थाकी उत्पत्ति और पूर्व अवस्थाका विनाश होता ही

www.vitragvani.com

रहता है, वह कहाँ चला जायेगा? उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्यकी एकता स्वरूप वृत्ति वह परिणामका लक्षण है। अपनी मूल जातिको छोड़े बिना पर्यायमें बदलते रहना वह तो वस्तुका परिणमन स्वभाव है; स्वभाव कहाँ चला जायेगा? आत्मा भी वस्तु होनेसे, पर्याय स्वभावके कारण, द्रव्यस्वभावसे नित्य स्थायी रहकर अवस्थाएँ बदलता ही रहता है। निज आत्मवस्तु द्रव्य तथा पर्यायस्वरूप होने पर भी दृष्टि तो मात्र उसके त्रैकालिक ध्रुवस्वरूपका ही स्वीकार करती है। परिणाम होनेपर भी, कल्याणके लिये आश्रय करने योग्य तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभाव ही है। दृष्टिके विषयकी मुख्यतामें वर्तमान शुभाशुभ परिणाम गौण हो जाते हैं, परिणमन कहीं चला नहीं जाता। सिद्धमें भी परिपूर्ण शुद्ध परिणमन तो निरंतर होता ही रहता है। सिद्धपना स्वयं भी आत्माकी पूर्ण शुद्ध पर्याय है। ३७७.

❁ भगवान आत्माने तो अपनेमें ज्ञानस्वरूप ही धारण कर रखा है। त्रैकालिक ज्ञानात्मक सो मैं–ऐसी पर्यायमें प्रतीति हुई, उस पर्याय सहित ज्ञानात्मकको आत्मा धारण करता है। त्रैकालिक ज्ञान धारण करनेवाला आत्मा सो मैं–ऐसी प्रतीति पर्यायमें हुई है, इसलिये उस पर्याय सहित ज्ञानात्मकको आत्माने धारण किया है। मैं ज्ञानात्मक हूँ ऐसा जाना किसने? ऐसा स्वीकार किसने किया? ज्ञानकी पर्यायने....त्रिकाल ज्ञानात्मक हूँ, एक हूँ, परसे भिन्न हूँ, एकत्वके कारण शुद्ध हूँ और शुद्धके कारण ध्रुव हूँ–ऐसा जिस ज्ञानकी पर्यायने स्वीकार किया है उस पर्याय सहित अभिन्न हूँ; ऐसे ही ध्रुव हूँ, ध्रुव हूँ–ऐसा नहीं; परन्तु पर्यायमें ऐसी स्वीकृति आयी उसको ध्रुव है....३७८.

❁ (दिन–प्रतिदिन होनेवाली अकस्मात–देहान्तकी घटनाएँ सुनकर पूज्य गुरुदेव वैराग्यभरे शब्दोंमें कहते हैं।–) हे भाई! यह शरीर तो क्षणमें छूट जायेगा। शरीरका संयोग तो वियोगजनित ही है। जिस समय आयुकी स्थिति पूर्ण होना है उस समय तेरे करोड़ों उपाय भी तुझे बचा सकनेमें समर्थ नहीं हैं। तू लाखों रुपये खर्च कर या करोड़ों....चाहे तो विलायतके डॉक्टर बुलवा ले, लेकिन यह सब छोड़कर तुझे जाना पड़ेगा। देहावसानकी ऐसी नियत स्थितिको जानकर, वह स्थिति आ पहुँचे उससे पूर्व ही तू चेत जा! अपने आत्माको चौरासीके चक्रसे बचा ले। आँख मिंचनेसे पहले तू जागृत हो जा। आँख मिंचनेके बाद कहाँ जायेगा उसकी तुझे खबर है? वहाँ कौन तेरा भाव पूछेगा?–फिर यहाँ लोग क्या कहेंगे और समाजका क्या होगा–ऐसे मोहजालमें फँसकर क्यों अपने आत्माको उलझा रहा है? ३७९.

www.vitragvani.com

❁ जीव कभी भी त्रैकालिक स्वभावके सन्मुख नहीं हुआ, उसने कभी भूतार्थ स्वभावकी दृष्टि नहीं की। वास्तवमें अज्ञानीको भी एक समयकी अज्ञान पर्यायमें भी ज्ञायक जाननेमें आता है, परन्तु उसकी दृष्टि न होनेसे–पर्यायदृष्टि होने से मात्र पर्यायका–रागका ज्ञाता रहता है इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। पर्यायमें संपूर्ण वस्तु ज्ञात होती है, क्योंकि स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है, तथापि अज्ञानकी दृष्टि स्वोन्मुख नहीं होनेसे उसकी दृष्टिमें मात्र पर्याय ही आती है। दृष्टि त्रैकालिक स्वभावकी ओर नहीं किन्तु पर्यायकी ओर लग रही है, परन्तु जहाँ दृष्टि स्वभावोन्मुख हुई वहाँ द्रव्यकी श्रद्धा हो जाती है। यद्यपि श्रद्धाको खबर नहीं है कि 'यह द्रव्य है' परन्तु श्रद्धाके साथ जो अनुभूति है–ज्ञान है उसमें ज्ञात होता है कि 'यह द्रव्य है'। ३८०.

❁ त्रैकालिक वस्तुस्वभावके सन्मुख होकर जो निर्विकल्प शान्तिकी दशा प्रगट हुई वह उपचारसे आत्माका स्वरूप है। प्रभु! एक बार सुन तो सही! यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है तो उसमें क्या करना?–कि चिदानन्द प्रभुके ध्यानसे जो वीतरागी समाधि प्रगट हुई वह साधक दशा भी उपचारसे आत्माका स्वरूप कही जाती है; ऐसा जो परमोत्कृष्ट परमात्मा सो मैं हूँ–ऐसा निर्णय करना। अरे! यह तो भाग्यशालीके कानोंमें पड़े ऐसी दुर्लभ बात है। जिन्दगी चली जा रही है, देहकी स्थिति समाप्त होनेका काल निश्चित है, उसमें यह करना है। शरीरमें सुख नहीं है, अनुकूल संयोगोंमें सुख नहीं है, दया–दान–व्रत–भक्तिमें या व्यवहाररत्नत्रयमें सुख नहीं है; आनन्दके नाथ निज परमात्मतत्त्वकी दृष्टि करना, उसकी महिमा लाकर स्वीकार करना वह करना है। ज्ञानमें–लक्षमें तो ले कि ऐसी वस्तु है, फिर प्रयोग करना। ३८१.

❁ कोई कहे कि केवली पहले समयमें वाणी ग्रहण करते हैं और दूसरे समय छोड़ते हैं। अरे प्रभु! केवली तो वाणीका ग्रहण और त्याग कदापि नहीं करते, किन्तु सम्यग्दृष्टि भी वाणीका ग्रहण–त्याग तो नहीं करते किन्तु सम्यग्दृष्टि रागका भी ग्रहण और त्याग नहीं करते। वस्तु स्वरूप ही ऐसा नहीं है–रागको ग्रहना–छोड़ना ऐसा वस्तुके स्वरूपका गुण ही नहीं है। यह दिगम्बर संतोंकी मौज है.....आत्मा तो शुद्धिका सागर है न! उसमें राग है ही कहाँ? ३८२.

❁ ज्ञायकभाव जीव है और जीवके विकारका–विशेष कार्यका हेतु (निमित्तकारण) अजीव है। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष–वे मात्र अजीव हैं। जीव द्रव्यके स्वभावको छोड़कर स्व और पर अर्थात् जीव और पुद्गल जिनके कारण हैं–कर्ता हैं

www.vitragvani.com

ऐसे इन नव तत्त्वोंको एक द्रव्यकी पर्यायोंरूपसे अनुभवनेसे वे भूतार्थ हैं; परन्तु अखण्ड, ध्रुव, एकरूप जीव द्रव्यके स्वभावके समीप जाकर अर्थात् उसे दृष्टिमें लेकर एकत्वका अनुभव करनेसे वे नव भेद अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। ३८३.

❁ जिनके पर्यायबुद्धि छूट गई है वे अन्य जीवोंको भी पर्यायबुद्धिसे नहीं देखते। अन्य जीवोंको भी वे पूर्ण प्रभुरूपसे ही देखते हैं। चौदह ब्रह्माण्ड सब भगवानसे ही भरपूर हैं, एक समयका लक्ष छोड़ दे तो सर्व जीव भगवान समान हैं। ३८४.

❁ वास्तवमें तो खण्ड-खण्ड ज्ञान त्रैकालिक स्वभावकी अपेक्षासे संयोगरूप है। जिस प्रकार इन्द्रियाँ संयोगरूप हैं उसी प्रकार यह खण्ड–खण्ड ज्ञान भी संयोगरूप है, स्वभावरूप नहीं है। ३८५.

❁ चारों अनुयोगोंका तात्पर्य वीतरागता है। आत्मा वीतराग स्वरूप है उसके आश्रयसे वीतरागता प्रगट हो वह धर्म है। कर्ता, कर्म, कारण आदि छह कारक वीतरागी गुण है। षट्कारकोंसे स्वतंत्र परिणमन करना वह आत्माका गुण है और अनन्त गुणोंमें उसका रूप है। वीतरागरूपसे परिणमना ऐसा उसमें गुण है, रागरूप होना ऐसा गुण उसमें नहीं है। अकर्ता होना वह आत्माका गुण है। रागको न करना, नहीं भोगना ऐसे गुण आत्मामें हैं। अहाहा! वस्तुकी ऐसी ही मर्यादा है। वस्तु अपनी मर्यादामें ही रहती है, पर्यायके बाहर नहीं जाती। सर्व आत्मा वीतरागस्वरूप है। राग तो पुण्य तत्त्वमें जाता है। आत्मा तो मात्र वीतराग ज्ञायकस्वरूप है। उसे ज्ञानप्रधानसे कहो तो ज्ञानस्वरूप है, दर्शनप्रधानसे कहो तो दर्शनस्वरूप है, चारित्रप्रधानसे कहो तो चारित्रस्वरूप है, वीर्यप्रधानसे कहो तो वीर्यस्वरूप है; स्वच्छत्व, विभुत्व, प्रभुत्व आदिकी प्रधानतासे कहो तो प्रभुत्वादि स्वरूप ही है। अहाहा! आत्मा मात्र वीतराग स्वभावका सागर है। वीतराग कहो या अकषायस्वभाव कहो। 'सर्व जीव हैं सिद्धसम, जो समझे सो होय।' सर्वज्ञस्वरूपकी दृष्टि हुई अर्थात् पर्यायमें जिन हुआ, अमृतका सागर उमड़ पड़ा। ३८६.

❁ यह निर्विकल्प आत्मा....निर्विकल्प आत्मा.....ऐसा बारम्बार सुनता है उसका यही अर्थ है कि वह उसे रुचता है। भीतर विपरीत मान्यता पर संस्कारके घन गिरते हैं वह निर्विकल्प होगा ही। शास्त्रमें कहा है न! कि सम्यग्दर्शनके ध्यानसे सम्यग्दर्शन होता है। ३८७.

❁ द्रव्य कैसा है उसकी प्रतीति पर्यायमें आयी है परन्तु द्रव्य स्वयं पर्यायमें नहीं आया है। द्रव्य कितनी शक्तिवाला है उसका ज्ञान पर्यायमें आया किन्तु द्रव्य पर्यायमें नहीं

www.vitragvani.com

आया है। इस प्रकार पर्याय मात्रमें द्रव्य नहीं आता इसलिये निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र उपचारसे आत्माका स्वरूप कहलाता है तथापि परम सूक्ष्म शुद्ध निश्चयनयसे वह आत्माका स्वरूप नहीं है। निश्चय-मोक्षमार्गकी पर्याय वह भी व्यवहारसे आत्मा है। त्रैकालिक ध्रुव परमात्मा ही निश्चय आत्मा होनेसे उसे दृष्टिमें लेना है। ३८८.

❀ साधकको पूर्ण शुद्धिरूप परिणति नहीं है, आंशिक शुद्धिरूप परिणति है। वह शुद्ध परिणति शुद्ध पारिणामिक भावके लक्षसे–आश्रयसे ही प्रगटती है। ऐसी परिणति जिसे प्रगट हुई है वह धर्मी जीव अर्थात् ध्याता पुरुष ऐसा ध्याता है कि—'जो सकलनिरावरण-अखण्ड–एक–प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वर–शुद्ध–पारिणामिक- परमभाव लक्षण–निज परमात्मद्रव्य ही मैं हूँ'–ऐसा निर्णय जिस पर्यायमें वर्तता है वह पर्याय 'मैं खण्ड ज्ञानरूप हूँ' या 'मैं निर्मल पर्यायरूप हूँ'–ऐसा नहीं मानती, परन्तु शुद्ध पारिणामिक भाव ही मैं हूँ ऐसा मानती है–भाती है। ३८९.

❀ भाई! यह मनुष्यभव अमूल्य है। उसका एक समय भी कौस्तुभमणिकी अपेक्षा महा मूल्यवान है। अपना हित करनेके लिये यह अवतार है। यह भव, भवका अभाव करनेके लिये है। शरीरमें रोग आये, इन्द्रियाँ शिथिल हो जायें, जैसे–तैसे अक्षर दिखायी दें, कानोंसे कम सुनाई देने लगे, उससे पूर्व ही तू अपना आत्मकार्य कर ले प्रभु! भावप्राभृतमें कहा है कि–

रे! आक्रमे न जरा, गदाग्नि दहै न तन कुटि ज्यां लगी,
बल इन्द्रियोंका नहि घटे, कर ले तू निजहित त्यां लगी।

जब तक वृद्धावस्था घेर न ले, रोगरूपी अग्नि कायारूपी कुटीको जला न दे, इन्द्रियाँ शिथिल न हो जायें उससे पूर्व हे भाई! तू अपना हित कर ले। चाहे जैसी विकट स्थितिमें तू अपना कार्य कर ले। वादे करेगा तो फिर नहीं होगा; इसलिये किसी भी प्रकार तू ज्ञान–ध्यानका समय निकाल ले। आया कुछ समझमें?....बाह्य संयोगोंमें बड़ा फेरफार हो जाये–चारों ओर आपत्तियोंसे–दुखोंसे घिर गया हो; अरे प्रभु! तू अटक कहाँ गया? ऐसे कठिन समयमें भी तू अपना ज्ञान–ध्यानका समय निकाल लेना। ऐसा नरभव बारम्बार प्राप्त नहीं होगा। ३९०.

❀ हे भाई! तू किसी भी प्रकार कुतूहल करके भी जाननहारको जाननेका प्रयत्न कर। चैतन्यका तेज आत्माको जाननेका कौतूहली हो। मृत्युकी घटना हो तथापि आत्माका

www.vitragvani.com

अनुभव कर। भगवान! एकबार तू कौन है यह जाननेका कौतूहली तो था! ३९१.

❁ आत्माके गूढ़ रहस्यभूत परमात्मस्वरूपको बतलाते हुए संत भव्य जीवको उत्साहित करते हैं कि–हे जीव! एक समयके विकल्पको देखकर तू डर मत...उलझनमें मत पड़....उल्लसित वीर्यसे महिमा लाकर अपनी अंतरंग शक्तिको उछाल! ३९२.

❁ शरीर–वाणी–मन तथा दया–दान, व्यवहाररत्नत्रयके परिणाम अर्थात् देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका राग, पंचमहाव्रतके परिणाम तथा परलक्षी ज्ञान–यह सब पुद्गलके परिणाम हैं और पुद्गलका कार्य हैं, पुद्गल उनका कर्ता है, आत्मा उनका कर्ता नहीं है। ३९३.

❁ क्या आँख पानी गर्म करती है? रेत उठाकर ला सकती है?–नहीं। बस, मात्र उन सबको जानती ही है; उसी प्रकार आत्मा भी उदयको, निर्जराको, बंधको, मोक्षको, हों वैसे जानता ही है। अहाहा! अकर्तापना सिद्ध करनेके लिये आँखके दृष्टांतसे कैसा न्याय सिद्ध किया है! ३९४.

❁ शुद्ध निश्चयनयके बलसे व्यवहारनयको हेय कहा है, उस हेयरूप व्यवहारनयके विषयमें उदय आदि चार भाव आ जाते हैं। चौदह जीवस्थान, चौदह मार्गणास्थान तथा चौदह गुणस्थान भी आ जाते हैं। उन सबको शुद्ध निश्चयनयके बलसे हेय गिना जाता है। अरे! संसार और मोक्ष वे सब पर्याय होनेसे त्रैकालिक शुद्ध जीव वस्तुमें उनका अभाव होनेसे उन्हें व्यवहार जीव कहकर हेय कहा है। अहाहा! गजब बात कही है। निमित्त को तो परस्वभाव गिनकर परद्रव्य गिनकर हेय कहा जाता है परन्तु यहाँ नियमसार गाथा ५०में तो निर्मल पर्यायको भी परस्वभाव कह कर परद्रव्य कहकर हेय कहा है। अहाहा! आचार्यदेवने अंतरके मूल मक्खनकी बात खोल दी है। निर्मल पर्यायके ऊपर लक्ष जानेसे विकल्प उठता है, इसलिये उनका लक्ष छुड़ानेके हेतु उसे परस्वभाव और परद्रव्य कहकर हेय कहा है। ३९५.

❁ हम तो सबको भगवान देखते हैं। भीतर नित्यानन्द प्रभु त्रैकालिक चैतन्य भगवान विराज रहा है, उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन धर्म होता है। विकल्पका तथा परका लक्ष छोड़कर अंतरमें भूतार्थ स्वभावी भगवान आत्माका आश्रय करना वही एक ही करने योग्य मुख्य कार्य है। ३९६.

❁ परम सत् निर्विकल्प विज्ञानघन द्रव्य अन्य द्रव्योंसे तो पृथक् है किन्तु पर्यायके भेदोंसे भी अभेदवस्तु पृथक् है ऐसा प्रथम निर्णय तो कर! अरेरे! चौरासीके अवतारमें तूने

www.vitragvani.com

अनन्तानन्त भव धारण किये और देखनेवालोंको रोना आ जाये ऐसे दुःख सहन किये हैं, उन दुःखोंको मिटाना हो तो यह करने योग्य है कि जिसमें जन्म-मरण तो नहीं हैं, उनके दुःख तो नहीं हैं किन्तु पर्यायके भेद भी नहीं हैं–ऐसे निर्विकल्प ज्ञानघन स्वद्रव्यकी श्रद्धा करना, उसका अवलोकन करना। ३९७.

❀ प्रत्येक पदार्थकी होनेवाली क्रिया उसकी काललब्धिसे हुई है, निमित्तसे नहीं हुई। प्रत्येक परिणाम अपनी उत्पत्तिके जन्मक्षणसे उत्पन्न हुआ है, निमित्तसे नहीं हुआ। यह जो अक्षर लिखे जाते हैं वे कलमसे नहीं लिखे जाते, अक्षरके परमाणुकी क्रियाका कर्ता अक्षरके परमाणु हैं। अच्छी कलमसे सुन्दर अक्षर लिखे जाते हैं अथवा लिखनेवालेकी शैलीसे मौड़दार अक्षर लिखे जाते हैं ऐसा भी नहीं है। अज्ञानी जगतको ऐसी बात पागल जैसी लगेगी, परन्तु भाई! तुझे यदि संसारसे छूटना है तो वस्तुस्थितिकी मर्यादाका स्वीकार किये बिना अन्य कोई उपाय नहीं है। दुनिया भले ही पागल माने, उससे तुझे क्या? दुनियाकी दुनिया जाने; तू अपने आत्माका हित हो वह कर ले न! यह तो आत्महित कर लेनेका अवसर है। यदि यह निकल गया तो फिर हाथ नहीं आयेगा। भाई! बाहरका तो सब एक–दो–चार बार नहीं अनन्त-अनन्त वार कर चुका है उसमें नया क्या है? लोग क्या कहेंगे और क्या मानेंगे उससे तुझे मतलब? दूसरोंको सन्तुष्ट करनेमें या सन्तुष्ट, रखनेमें तेरा आत्मा जल रहा है, किन्तु उसकी तूने कभी कहाँ परवाह की है?....अब तो जाग! आचार्यदेवने भेदज्ञानका मार्ग तेरे लिये खोल दिया है। अरे, तूने जो दुःख भोगे हैं उनका पूरा वर्णन भगवानकी वाणी द्वारा भी नहीं हो सकता....अब एकबार तो अपने आत्माकी ओर देख! अब तो परोन्मुखता छोड़कर स्वोन्मुखता कर! ३९८.

❀ तू परद्रव्यकी पंचायतमें पड़ गया है! लेकिन एक वीतरागी निश्चयरत्नत्रय ही इष्ट है, बाकी अनिष्ट है। इसलिये अपनी वृत्ति बदल दे। परोन्मुखताको छोड़कर स्वोन्मुख वृत्ति कर। जब तक परका, निमित्तका या विकल्पका प्रेम है तबतक आत्माका द्वेष है। अरे जीव! भाग्यके बिना यह बात सुननेको भी कहाँसे मिलेगी? भगवान तुझसे कहते हैं कि प्रभु! तू अपनी ओर देख न! वहाँ सुख भरा पड़ा है। लक्ष्मी तिलक करने आयी हो तब मुँह धोनेको नहीं जाते भाई! यह बात सुननेका सुयोग प्राप्त हुआ हो तब संसारके यह कार्य कर लूँ, वह कार्य अभी बाकी है—ऐसा नहीं सोचते। यदि यह अवसर चला गया तो फिर लौटकर नहीं आयेगा, इसलिये पहले यह कर ले। ३९९.

www.vitragvani.com

❁ जीव-पुद्गलकी अनादि बंधपर्यायके समीप जाकर देखनेसे, अर्थात् जीव-अजीवकी बंधपर्यायके साथ एकत्वका अनुभव करनेसे, रागके साथ एकत्वका अनुभव करनेसे यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं। जीव-पुद्गलकी बंधपर्यायको विषय बननेवाले व्यवहारनयसे देखने पर वे भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं। परन्तु जो एकरूप ज्ञायकभाव है ऐसे एक जीवद्रव्यके स्वभावको एकरूप अनुभवने पर नवतत्त्व अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। ज्ञायकभाव जिसका स्वभाव है ऐसे एक जीवद्रव्यके समीप जाकर अर्थात् उसके साथ एकत्व करके अनुभवनेसे, एकरूप ज्ञायकभावको देखनेसे यह नवतत्त्व अभूतार्थ हैं। ४००.

❁ योगीन्द्रदेव कहते हैं कि अरे जीव! अब तुझे कब तक संसारमें भटकना है? अभी तू थका नहीं है। अब तो आत्मामें आकर आत्मिक आनन्दका उपयोग कर। अहाहा! जैसे पानीकी धारा प्रवाहित होती है वैसे ही यह धर्मकी धारा बह रही है। पीना आता हो तो पीले। भाई! चौथे कालमें तो कलका लकड़हारा भी आज केवलज्ञान प्राप्त करता था.....ऐसा था वह काल! जैसे पुण्यशालीको पग-पगपर भण्डार निकलते हैं वैसे ही आत्मपिपासुको पर्याय-पर्यायमें आत्मानन्दके भण्डार मिलते हैं। ४०१.

❁ वीतरागदेव कहते हैं कि—मेरी वाणी द्वारा जाननेमें आये ऐसा तू नहीं है, तू स्वयंके द्वारा ज्ञात हो–अनुभवमें आये ऐसा है। अहाहा! ऐसा सत्य वीतरागके सिवा कौन कहेगा? तुझे जाननेमें वाणी या शास्त्रकी अपेक्षा नहीं है। तू स्वयं अपनेसे ज्ञात हो ऐसा है। दिव्यध्वनि या शास्त्रोंसे ज्ञात हो ऐसा आत्मा नहीं है, आत्मा आत्मासे ही ज्ञात होता है। अहाहा! जिसमें किसी परकी अपेक्षा न आये उस मार्गपर जानेमें कितना धैर्य चाहिये। भाई! तू तुझसे ही ज्ञात हो ऐसा महाप्रभु है—ऐसी श्रद्धाको तो दृढ़ कर। पहले विकल्पसहित तो ऐसा निर्णय कर! वह निर्णय इतना पक्का होना चाहिये कि स्वर्गसे इन्द्र उतरें तब भी बदले नहीं। फिर अंतरमें जानेपर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होगा। ४०२.

❁ जिस काल जिस गुणकी जो विकारी या अविकारी पर्याय होना है वह होगी, वह तो वस्तुस्थिति ही है। शुभराग या अशुभराग जो आना है वही आयेगा, परन्तु उपदेश ऐसा नहीं होता.....

श्रोता :—पुरुषार्थ काम नहीं आता–बदल नहीं सकता?

पूज्य गुरुदेव :—बदल क्या सकेगा? रागकी रुचि बदल देना वह जीवके अपने अधिकारकी बात है, फिर राग तो जो आना है वही आयेगा; पुरुषार्थको इस ओर

www.vitragvani.com

(स्वभावकी दिशामें) मोड़ना है। पुरुषार्थ स्वभावकी दिशामें मुड़ गया, फिर भी राग मन्द या तीव्र जो आना है वही आयेगा। परन्तु उसका भी ज्ञातारूपसे जाननेवाला है। अज्ञानीको भी राग जो आना है वही आयेगा, परन्तु वह जो राग आता है उसका कर्ता बनता है। ४०३.

❀ मुमुक्षुको सत्समागम आदिका शुभभाव आता है, परन्तु साथ ही साथ भीतर शुद्धताका ध्येय–शोधकवृत्ति–चलता रहता है। जो शुद्धताको ध्येयरूप नहीं करता और कहता है कि पर्यायमें चाहे जितनी अशुद्धता हो उससे मुझे क्या?—इसप्रकार स्वच्छन्द रूपसे वर्तता है वह शुष्कज्ञानी है। मुमुक्षुजीव शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता, हृदयको भिगो रखता है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि—'कोई क्रिया जड़ हो रहे, शुष्क ज्ञानमें कोई'....अनेक जीव रागकी क्रियामें जड़ जैसे हो रहे हैं और अनेक जीव ज्ञानके विकारकी बातें करते हैं, वे भीतर परिणामोंमें स्वच्छन्द सेवन करनेवाले निश्चयाभासी हैं। चाहे जैसे पापके भाव हों उसकी परवाह नहीं करते वे स्वच्छन्दी हैं, स्वतंत्र नहीं। जिसे पापका भय नहीं है, परसे तथा रागसे उदासीनता नहीं आयी है वह जीव रूखा–शुष्क ज्ञानी है। भाई! पापका सेवन करके नरकमें जायेगा, तिर्यंचगति मिलेगी। प्रकृतिके नियमसे विरुद्ध चलेगा तो प्रकृति तुझे छोड़ेगी नहीं। इसलिये हृदयको भीगा—कोमल रखना, शुष्कज्ञानी नहीं हो जाना। अहा! बड़ा कठिन काम है भाई! ४०४.

❀ नवतत्त्वोंका अनुभव तो मिथ्यात्व है, वे सम्यग्दर्शनसे विपरीत परिणाम हैं। आत्मामें श्रद्धा नामक त्रैकालिक गुण है, उस गुणका विपरीतरूप परिणमन उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं और वह भवभ्रमणका कारण है। उस कारणके नाश हेतु भगवान आत्माका अन्य द्रव्योंसे भिन्न श्रद्धा करना। भले रागादि हों परन्तु रागसे तथा परसे भिन्न ऐसा यह आत्मा है उसकी श्रद्धा करना ही मिथ्यात्वके नाशका तथा मोक्षकी प्राप्तिका कारण है। ४०५.

❀ आनन्दमें झूलते हुए संत कहते हैं कि हमने सैकड़ों शास्त्र देखकर निर्णय किया है कि चैतन्यस्वरूपमें तो मात्र ज्ञान और आनन्द ही भरा है, दूसरा कुछ उसमें नहीं है। ४०६.

❀ तेरा निराकुल ज्ञायकस्वभाव आकुलतामय शुभाशुभ भावोंसे भिन्न है। उसके अनुभवनका प्रबल पुरुषार्थ कर। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्पर्श नहीं करता, पदार्थकी प्रतिसमयकी पर्याय क्रमबद्ध होती है–यह बात समझनेमें महा पुरुषार्थ है। भाई! क्रमबद्ध

www.vitragvani.com

होनेवाली पर्यायको परकी तो अपेक्षा नहीं है परन्तु अपने द्रव्य-गुणकी भी अपेक्षा नहीं है—ऐसे तत्त्वको समझ लेनेसे तेरे भवभ्रमण अन्त आयेगा। यह एक ही करने योग्य कार्य है। ४०७.

❁ श्रद्धा ऐसी होती है जो रागको कम करे, ज्ञान ऐसा होता है जो रागको कम करे, चारित्र ऐसा होता है जो रागको कम करे, क्रमबद्धकी श्रद्धा भी उसे कहते हैं जो रागको कम करे। क्रमबद्धकी श्रद्धामें अकर्तापन आता है। जो होता है उसे करेगा क्या? जो होता है उसे जानता है। जाननहार रहनेसे, ज्ञाता रहनेसे राग टलता जाता है और वीतरागता बढ़ती जाती है। वीतरागतामें वृद्धि ही शास्त्रोंका तात्पर्य है। ४०८.

❁ श्री समयसारकी पहली ही गाथामें कहा है कि—अनंत सिद्धोंको अपने ज्ञानमें स्थापित करता हूँ। ऊपर सिद्धलोकमें अनंत सिद्ध तो हैं ही, लेकिन उससे अपनेको क्या? इसलिये कहा है कि अपने ज्ञानमें अनंत सिद्धोंकी स्थापना करता हूँ–पधराता हूँ। अहाहा! पहली ही गाथामें यह बात ली है, राग है तथा अल्पज्ञता है उसे याद नहीं किया किन्तु पूर्णताकी स्थापना की है! ४०९.

❁ जब किसी स्त्रीका पति मर जाये और विधवा हो जाये तथा दुनिया उस स्त्रीको अनाथ कहती है, परन्तु वास्तवमें वह अनाथ नहीं हुई परन्तु आत्माका हित करनेके लिये निवृत्ति मिली है। यहाँ अनाथ अर्थात् दुःखी तो उसे कहते हैं जो रागमें तथा पुण्य-पापके भावमें एकता मानकर आनन्दकन्द स्वभावको भूल गया है, वह सचमुच अनाथ अर्थात् दुःखी है। भगवानका मार्ग जगतसे भिन्न है। ४१०.

❁ भगवान आत्मा ज्ञायकभावरूप है वह शुभाशुभभावरूप परिणमित नहीं होता इसलिये प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं है। क्योंकि शुभाशुभरूप हो तो प्रमत्त हो और प्रमत्तका अभाव हो तो अप्रमत्त हो, परन्तु ज्ञायकभाव शुभाशुभरूपसे परिणमित नहीं होता इसलिये प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं है। शुभाशुभभाव पर्यायमें हैं अवश्य परन्तु वे जड़ हैं। जड़ अर्थात् रूपी पुद्गल नहीं किन्तु अजागृत होनेसे जड़ हैं। चैतन्य जगमग ज्योतिरूप जो ज्ञायकभाव है वह कभी पुण्य-पापरूप नहीं हुआ इसलिये आत्माका अनुभव करने पर वे टल जायेंगे। पुण्य-पाप भावका लक्ष छोड़कर हम शुद्धात्माका अनुभव करते हैं उसी प्रकार तू भी पुण्य-पापका लक्ष छोड़ दे तो तू भी ज्ञायकभावका अनुभव कर सकेगा, तुझे भी पर्यायमें आनन्दका वेदन होगा। पुण्य-पापभाव चैतन्यकी सत्तामें अभावरूप हैं इसलिये ज्ञायकभाव जड़ भावरूप कदापि हुआ नहीं

www.vitragvani.com

है। ज्ञायकभाव कभी शुभाशुभभावरूप परिणमित नहीं होता। तू कभी शुभाशुभरूप नहीं हुआ है, इसलिये उसका लक्ष छोड़नेपर शुद्धात्माका अनुभव कर सकेगा। ४११.

❁ गुरु कहते हैं कि भाई! शांत था, द्रव्यदृष्टिका विषय ऐसा जो आत्मद्रव्य उसे सम्यक्रूपसे समझनेके लिये ही आचार्यदेवने नयका अधिकार लिखा है। प्रमाणज्ञानका विषय ऐसा जो द्रव्य-गुण-पर्यायसहित आत्मा, उसके यथार्थ ज्ञान विना शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके विषयभूत द्रव्यसामान्यका अवलम्बन किस प्रकार लेगा? द्रव्य-गुण तो त्रिकाल शुद्ध ही है, परन्तु योग्यतारूप अनंत धर्म हैं वह जानकर त्रैकालिक वस्तुस्वभावको मुख्य करके उसका अवलम्बन लेना वह नयोंके कथनका प्रयोजन है। ४१२.

❁ अरे! माता-पिताकी गोदमें बालक बैठा हो उसे भी चिन्ता नहीं होती तो भगवानकी गोदमें बैठे हुएको क्या भव होंगे? हो ही नहीं सकते। जिसे भगवानकी प्रतीति हुई और मैं स्वयं भगवान हूँ ऐसी प्रतीति आयी उसे भव होते ही नहीं। ४१३.

❁ सिद्धान्त तो ऐसा कहता है कि छहों द्रव्यकी पर्यायका जन्मक्षण होता है। जिस समय पर्याय होनेका काल है उसीसमय पर्याय होती है। वह पर्याय परद्रव्यसे नहीं होती, निमित्तसे नहीं होती, अपने द्रव्यसे भी नहीं होती, किन्तु पर्यायकी योग्यतारूप जन्मक्षणमें स्वकालसे पर्याय होती है ऐसी भगवानकी घोषणा है और अनंत द्रव्योंका ऐसा ही स्वभाव है। ४१४.

❁ भीतर भगवान आत्मा जोकि अनंत-अनंत अतीन्द्रिय शान्ति एवं आनन्दका सागर है, उसकी महिमा और रागादि विकल्परूप संसारकी महिमा-यह दोनों एकसाथ नहीं रह सकते। जिसे शुभाशुभ रागकी और उसके कर्तृत्वकी महिमा है उसे आनन्दका नाथ और विश्वका उदासीन साक्षी ऐसे निज चैतन्य प्रभुकी महिमा नहीं है। जिसमें परका करना-भोगना कुछ है ही नहीं मात्र अंतरस्वरूपमें स्थित रहना है ऐसे चारित्रवान शांत-शांत अकषायस्वभावी निज चैतन्यकी महिमा और रागादि संसारकी महिमा एकसाथ नहीं रह सकती। ४१५.

❁ भरत चक्रवर्ती और बाहुबलीजीने तद्भव मोक्षगामी होने पर भी युद्ध किया और तीनों प्रकारके युद्धमें भरतजी हार गये तब क्रोधावेशमें भाईको मारनेके लिये चक्र फेंका! देखो तो सही, धर्मात्मा भरत चक्रवर्तीके मनमें भाईको मार डालनेका तीव्र क्रोध आया! तथापि जिस प्रकार समुद्र ऊपरी सतह पर उछलता दिखायी दे किन्तु भीतर तो शान्त-गम्भीर रहता है, उसी प्रकार ज्ञानीको अस्थिरताके कारण कदाचित् ऐसा क्रोध आ जाये तथापि अंतरंगमें

www.vitragvani.com

ज्ञाता-द्रष्टापनेका गंभीर प्रवाह चलता है। इसलिये क्रोधके समय भी भरतजी चक्र फेंकनेकी क्रियाके तथा क्रोधपरिणामोंके मात्र ज्ञाता ही हैं, कर्ता नहीं। अरे! स्वयं बाहुबलीजी भी जानते हैं कि चक्र फेंकनेकी क्रियाके अथवा मेरे प्रति क्रोधके कर्ता भरतजी है ही नहीं! भरतजी तो ज्ञाता-द्रष्टा ही हैं। देखो तो सही धर्मकी लीला! बाह्यमें चक्र चलाने पर लोगोंमें हाहाकार मच जाता है और अंतरमें तो दोनों धर्मात्मा मात्र ज्ञाता-द्रष्टारूपसे वर्त रहे हैं। यहाँ तो कहते हैं कि युद्धकी वह क्रिया और तत्कालीन क्रोध–द्वेषके कर्ता तो ज्ञानी नहीं हैं, उसमें निमित्त भी नहीं है, परन्तु वे क्रोधादि ज्ञानीके ज्ञानमें निमित्त होते हैं। ४१६.

❁ इस ज्ञायक आत्माको विभावभावरूप अशुद्धता तो दूर रहो अर्थात् है ही नहीं, परन्तु उसको दर्शन–ज्ञान–चारित्र ऐसे भेद भी नहीं हैं। अभेद ज्ञायकभावमें भेदका अस्तित्व ही नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय जो एकरूप अभेद ज्ञायकभाव उसमें दर्शन–ज्ञान–चारित्र ऐसे भेद विद्यमान नहीं हैं। ४१७.

❁ सम्यग्दर्शनकी पर्यायमें सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आता किन्तु सम्पूर्ण द्रव्यकी प्रतीति आती है। जिनको एक समयकी केवलज्ञानपर्यायमें सम्पूर्ण द्रव्य क्या है तथा लोकालोक क्या है वह जाननेमें आया है ऐसे त्रिलोकी परमात्माने दिव्यध्वनिमें ऐसा कहा कि भगवान आत्मा परद्रव्यका तो कर्ता नहीं है, रागका तो कर्ता नहीं है किन्तु निर्मल परिणतिका भी कर्ता नहीं है। शुद्ध निश्चयनयसे भगवान आत्मा बंध–मोक्षसे रहित है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है। ४१८.

❁ अपूर्णता और अल्पज्ञताकी मान्यता थी उसे अब पूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ ऐसा निर्विकल्परूपसे स्वीकार! तू ज्ञान–दर्शनादि अनंत शक्तियोंका समूह है। क्षेत्र भले ही अल्प हो परन्तु संख्यासे तथा स्वभावसे अपरिमित एवं अनन्त है। तू अनंत ज्ञान एवं परम आनन्दस्वभावी है इसलिये बाहरी तड़क भड़कको भूल जा! व्रत–तपादिके विकल्पको भूल जा और अल्पज्ञताको भी तू भूल जा। अरे! चार ज्ञान प्रगट हुए हों तो उन्हें भी भूल जा और त्रैकालिक पर दृष्टि रख। ४१९.

❁ ज्ञानकी पर्यायमें स्वज्ञेय ज्ञात होता है, परन्तु उसकी ओर तूने दृष्टि नहीं की, वहाँ दृष्टि करके अपनेको जान तो तुझे सुख होगा। परोन्मुख ज्ञानसे दुःख होगा क्योंकि वह परके लक्षसे होता है। स्वप्रकाशक ज्ञान होनेके पश्चात् ज्ञान परको जाने तो वह दुःखरूप नहीं है, क्योंकि वह तो अपनी पर्याय है वह परके कारण परप्रकाशक नहीं है। जिसे

www.vitragvani.com

स्वसत्ताका अवलम्बन आया है वह जानता है कि परप्रकाशकज्ञान अपने ज्ञानकी पर्यायका सामर्थ्य है इसलिये उसे वह दुःखरूप नहीं है। ४२०.

❁ भगवान ज्ञानस्वरूप है वह अपनेको जानता है और रागादिका स्पर्श किये बिना रागादिके ज्ञानको प्रकाशता है—इसप्रकार अपनी स्वपरप्रकाशकरूप द्विरूपताको प्रकाशित करता है, रागादिको प्रकाशित नहीं करता। तथापि आत्मा एवं रागकी एकसाथ उत्पन्न होनेरूप अत्यंत निकटताके कारण अनादिसे अज्ञानीको उनके बीच भेद नहीं दिखनेसे आत्मा और रागमें एकत्वका भ्रम हो रहा है, परन्तु उस भ्रमको आत्मा तथा बंधके नियत स्वलक्षण जानकर प्रज्ञा द्वारा अवश्य छेदा जा सकता है। ४२१.

❁ बिहारकी घटना है—एक लग्न-मण्डपमें वर–वधूके विवाहका मंत्रोच्चार हो रहा था कि अचानक वरको हृदयाघात हुआ और शरीर छूट गया! अहाहा! सब कुटुम्बीजन और स्नेही-मित्रगण मिलकर विवाहकी खुशियाँ मना रहे होंगे, किन्तु क्षणभरमें यह क्या हो गया! हाहाकार मच गया! अरे, क्षणभंगुर देहका क्या भरोसा?

श्रोता :—हजारों विवाह होते हैं उनमें ऐसी घटना तो शायद ही होती होगी?

पूज्य गुरुदेव :—अरे! ऐसी मृत्युकी घटनाएँ तो अनन्तबार हुई हैं। ऐसी मृत्यु दूसरोंकी हुई है ऐसा नहीं मानना, किन्तु ऐसे कुमरण अपने भी अनन्तकालमें अनन्तबार हुए हैं—ऐसा समझकर क्षणभंगुर शरीरकी शरण छोड़कर अपनी शरण लेकर मृत्यु आनेसे पूर्व अपना हित कर ले। भाई! ऐसा अवसर फिर न जाने कब मिलेगा? इसलिये अपना हित कर ले। ४२२.

❁ वर्तमानकालका लक्ष यदि छोड़ दे तो वस्तु अकेली शुद्ध ही है। वस्तु है वह अन्य प्रकारसे नहीं हो सकती। वर्तमान समयका लक्ष छोड़नेसे मात्र आनन्दकी लहरका अनुभव होता है। ४२३.

❁ अहो! संत कितनी करुणापूर्वक ऐसे गहन विषयको समझा रहे हैं। ज्ञानसे मुक्ति होती है यह बात सच है परन्तु वह भी पर्याय है, इसलिये वह मात्र जानने योग्य है, पर्यायका आश्रय लेने जैसा नहीं है। ध्यानका विषय तो अखण्ड चिदानन्दस्वरूप त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य है। मोक्षमार्गकी निर्मल पर्यायका भी जिसमें अभाव है ऐसा शुद्ध चैतन्यद्रव्य ही साधकका ध्येय है। उसके आश्रयसे ही मोक्षमार्गकी शुद्ध पर्याय प्रगट होती है और उसीसे मोक्ष प्राप्त होता है। ४२४.

www.vitragvani.com

❁ ज्ञायकभाव तो ज्ञायक है। द्रव्यस्वभाव तो नित्य ज्ञायक ही है, वह कभी शुभाशुभभावरूप नहीं हुआ है। पर्यायमें अशुद्धता है परन्तु द्रव्यदृष्टिसे देखने पर अशुद्धता गौण है। त्रैकालिक द्रव्यस्वभावसे देखने पर उसमें अशुद्धता नहीं है, इसलिये पर्यायकी अशुद्धता गौण हो जाती है। द्रव्य तो त्रैकालिक शुद्ध है ही, किन्तु द्रव्यदृष्टिमें भी अशुद्धता नहीं है। यहाँ अशुद्ध पर्यायकी बात है। शुद्ध पर्याय द्रव्यमें नहीं है ऐसा यहाँ नहीं कहना है, क्योंकि द्रव्यका आश्रय करनेवाली शुद्ध पर्याय है। द्रव्यदृष्टि भी शुद्ध पर्याय है। ४२५.

❁ भगवान कहते हैं कि प्रभु! तू ज्ञानस्वरूप है न! तो तू परकी कोई क्रिया करे या भोगे ऐसा तेरा स्वरूप ही नहीं है; तू तो ज्ञेयोंका ज्ञाता-दृष्टा ज्ञानस्वरूप ही है। परकी, शरीरकी, परिवारकी किसी क्रियाको स्वयं करता है—ऐसा जो मानता है, दया-दानादि भावोंको स्वयं करता है तथा स्त्री-पुत्रादिको या रागको स्वयं वेदता है—ऐसा माननेवालेने आत्माके ज्ञानस्वभावको नहीं जाना है, नहीं माना है। जो जीव ऐसा मानता है कि मैं परकी दया पालता हूँ वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, क्योंकि ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा ज्ञेयको पररूपसे जाननेवाला है, उसके बदले जो ज्ञेयोंका स्वयं कर्ता-भोक्ता बनता है—मानता है वह मिथ्यात्व है। ४२६.

❁ समयसारकी ४९वीं गाथाकी टीकामें अव्यक्तके पाँचवें बोलमें कहा है—व्यक्तपना और अव्यक्तपना एकमेक-मिश्रितरूपसे उसे प्रतिभासित होने पर भी वह व्यक्तपनेको स्पर्श नहीं करता इसलिये (आत्मा) अव्यक्त है। व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, दोनों एकमेक-मिश्रितरूपसे जाननेमें आते हैं तथापि अव्यक्त ध्रुव टंकोत्कीर्ण जीव व्यक्तपनेको-पर्यायको स्पर्श नहीं करता, त्रैकालिक ध्रुव अंश वर्तमान क्षणिक पर्यायांशरूप नहीं हो जाता। इसलिये ध्रुव द्रव्य और पलटती पर्याय दोनों भिन्न हैं। जहाँ पर्यायमात्र ध्रुवतत्त्वसे भिन्न है वहाँ रागादि विभावकी तो बात तो कहीं रह गई। वह तो भिन्न है ही। इसलिये यहाँ कहते हैं कि—व्यवहारश्रद्धाके या मंदकषायके परिणामसे निश्चय ध्रुवतत्त्वकी प्राप्ति होगी वह दृष्टि ही विपरीत है। क्या किया जाये? भाई! तुझे उस मान्यतामें हानि होती है। तू उत्साहित होकर जगतको बतलाता है कि हम निश्चय और व्यवहार दोनोंको मानते हैं, दोनोंसे लाभ होता है वह अनेकान्त है। भाई! वह सच्चा अनेकान्त नहीं है अनेकान्ताभास है, एकान्त है। स्वभावके आश्रयसे सदा लाभ होता है और पर्यायके, रागके या निमित्तके आश्रयसे कदापि लाभ नहीं होता—वही सच्चा अनेकान्त है। ४२७.

❁ भाई! तेरे माहात्म्यकी क्या बात! जिसका स्मरण होते ही आनन्द आये उसके

www.vitragvani.com

अनुभवके आनन्दकी क्या बात! अहो! मेरी शक्ति कितनी? जिसमें दृष्टि देनेसे निधान मिल जाये वह वस्तु कैसी? रागको रखनेका तो मेरा स्वभाव नहीं है, परन्तु अल्पज्ञताको भी मैं नहीं रख सकता, —ऐसी प्रतीति आनेपर मैं सर्वज्ञ होऊँगा और अल्पज्ञ नहीं रह सकूँगा— ऐसा उसे विश्वास आ जाता है। ४२८.

❁ क्रमबद्ध सिद्ध करनेका हेतु अकर्तृत्व बतलाना है। एक तत्त्वके परिणाम दूसरा तत्त्व करे ऐसा तीनकालमें नहीं होता। जिस समय जिस द्रव्यकी जो क्रमबद्धपर्याय होती है उसका कर्ता अन्य द्रव्य नहीं है ऐसा कहकर सिद्ध यह करना है कि जीव रागका कर्ता नहीं है, जीव तो ज्ञान–श्रद्धा–आनन्दका कार्य करता है। ४२९.

❁ विकारका स्वामित्व वह बंधका कारण है और स्वद्रव्यका आश्रय वह मुक्तिका कारण है। परद्रव्यकी ओर जितना लक्ष जाता है उतना बंध होता है। शरीर–मन–वाणी अजीव तत्त्वसे तथा पुण्य–पापसे भिन्न निज आत्माका आश्रय करनेसे जो दशा होती है वह धर्म और मोक्षका कारण होती है तथा उसे छोड़कर जितना परद्रव्यका आश्रय होता है वह अधर्मदशा है और वह बंधका कारण है। ४३०.

❁ एक कहता है कि क्रमबद्धपर्याय हो तब तो नियत हो जाता है, दूसरा कहता है कि क्रमबद्धमें हमें जो राग आना था वह आया। वे दोनों भूले हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। उलटा मिथ्यात्वको पुष्ट करके दोनोंने निगोदका मार्ग लिया है। जिसे क्रमबद्धकी यथार्थ प्रतीति हुई है उसकी दृष्टि पर्यायके ऊपरसे हटकर आनन्दमय आत्माके ऊपर लगी है, वह क्रमबद्धमें जो राग आता है उसका ज्ञाता रहता है। ज्ञानानन्दस्वभावकी दृष्टिपूर्वक जो राग आता है वह दुःखरूप लगता है, उसने क्रमबद्धको यथार्थ माना है। आनन्दके साथ दुःखकी तुलना करता है कि अरे! यह राग दुःखरूप है—इस प्रकार क्रमबद्धको माननेवाला आनन्दकी दृष्टिपूर्वक रागको दुःखरूप जानता है, उसे रागकी मिठास उड़ गई है। जिसे रागमें मिठास बनी हुई है और पहले अज्ञानमें रागको टालनेकी चिन्ता थी वह भी क्रमबद्ध.....क्रमबद्ध करके मिट गई है उसे तो मिथ्यात्वकी पुष्टि बढ़ी है। मिथ्यात्वको तीव्र किया है। राग मेरा नहीं है ऐसा कहता है और आनन्दस्वरूपकी दृष्टि नहीं है तो उसने मिथ्यात्वको बढ़ाया है। भाई! यह तो कच्चे पारे जैसा वीतरागका सूक्ष्म रहस्य है। अंतरसे पर्याये तो वीतरागताकी पुष्टि हो और उसका रहस्य न समझे तो मिथ्यात्वका पोषण करे। ४३१.

❁ व्यवहाररत्नत्रय वह कोई सुख नहीं है दुःख है, उसमें तू कैसे रहेगा? जिसे सुखके

www.vitragvani.com

सागरकी दृष्टि हुई है वह दुःखमें क्यों रहेगा? जिसे प्रभुकी दृष्टि हुई है वह रागकी पामरताके साथ क्यों रहेगा? प्रभु पामरतामें क्यों निवास करेगा? जिसमें प्रभुत्व नामकी शक्ति है ऐसा प्रभु रागकी पामरतामें क्यों रहेगा? प्रभु, तू तो प्रभु है न! उसकी जहाँ दृष्टि हुई वहाँ पर्यायमें प्रभुता प्रगट हो गई, वह अब रागकी पामरतामें क्यों रहेगा?—नहीं रहेगा। ४३२.

❁ देव–शास्त्र–गुरु ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्तिके प्रेममें, रुचिमें जो रुकता है उसको आत्मा हेय है; देव–शास्त्र–गुरु परद्रव्य हैं; उनके प्रति जो प्रेम है वह राग है। रागके प्रेमियोंको आत्मा हेय है। स्वद्रव्यसे विपरीत प्रशस्त शुभरागका तथा प्रशस्त रागके निमित्त जो देव–शास्त्र–गुरु उनका जिसे आदर वर्तता है–रुचि वर्तती है उसे आत्मा हेय है; अर्थात् व्यवहाररत्नत्रयका राग तथा व्यवहाररत्नत्रयके निमित्त जो देव–शास्त्र–गुरु उनका जिसे प्रेम है–रुचि है उसे आत्मा हेय है। ४३३.

❁ यह समयसार! ओहोहो! जगतके भाग्य हैं कि ऐसा शास्त्र रह गया! जिसने जगतको भगवानकी भेट दी है उस समयसारकी ४९वीं गाथामें पांचवें बोलमें कहते हैं कि अव्यक्त है वह व्यक्तको स्पर्श नहीं करता। आनन्दकी पर्यायको द्रव्य स्पर्श नहीं करता। जिसे अक्षय, अमेय कहा जाता है ऐसी पर्यायको अव्यक्त स्पर्श नहीं करता उसे हे शिष्य! तू जान! जान कहनेसे पर्याय सिद्ध हुई परन्तु जाने किसे?–कि जो पर्यायका स्पर्श नहीं करता ऐसे अव्यक्तको जाने। ४३४.

❁ द्रव्यदृष्टिमें तो एक त्रैकालिक सामान्य भूतार्थ स्वभाव ही आश्रयरूप है, उसमें तो शुद्ध पर्याय भी भिन्न हो जाती है और वह व्यवहारके विषयमें जाती है। त्रैकालिक द्रव्यस्वभावका आश्रय किया वह द्रव्य 'स्व' है। आश्रय तो एक स्वका—सामान्य त्रैकालिक द्रव्यस्वभावका ही होता है। स्वभावका आश्रय करनेवाली पर्याय भी द्रव्यदृष्टिके विषयमें पर है—भिन्न है। ४३५.

❁ समयसारकी १३वीं गाथामें ऐसा कहा है कि नवतत्त्वरूप पर्यायोंमें अन्वयरूपसे विद्यमान भूतार्थ एकरूप सामान्य ध्रुव वह सम्यग्दर्शनका विषय है। पंचाध्यायी (अध्याय–२)में भी कहा है कि भेदरूप नवतत्त्वमें सामान्यरूपसे विद्यमान अर्थात् ध्रुवरूपसे विद्यमान शुद्ध जीव भूतार्थस्वरूप है। इस प्रकार भेदरूप नवतत्त्वोंसे भिन्न शुद्ध जीवको बतलाकर उसे सम्यग्दर्शनका विषय अर्थात् ध्येयरूप बतलाया है। ४३६.

❁ एक समयकी रागकी पर्यायके पीछे अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखस्वरूप प्रभु विराजमान

www.vitragvani.com

है। उसके बदले जहाँ तेरी वस्तु नहीं है वहाँ तूने मतिको लगा दिया है। स्त्री, पुत्र, पैसा, मकान, शरीरादिमें तूने अपनी मति लगा दी है, परन्तु वह क्षेत्र तो भिन्न है। पाँच-पचास वर्षमें तो वह क्षेत्र छूट जायेगा। एकबार तू अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप परमब्रह्ममें मति लगा, तुझे आनन्दकी तृप्ति होगी। तू अमृतरससे तृप्त-तृप्त परिपूर्ण विद्यमान है। ४३७.

❁ जीवको जिस समय जो पर्याय होना हो वही होती है और जो पर्याय हो उसका वह उत्पत्तिकाल है, वह जन्मक्षण है, वह काललब्धि है। जो पर्याय हो उसे व्ययकी अपेक्षा नहीं है, निमित्तकी अपेक्षा नहीं है और द्रव्य-गुणकी भी अपेक्षा नहीं है, पर्यायके षट्कारकों द्वारा वह पर्याय स्वतंत्र उत्पन्न होती है। इसलिये तेरी जिस समय जो पर्याय हो उसका तू कर्ता क्यों होता है? भाई, एकके बाद एक क्रमानुसार निश्चयसे जो पर्याय होना हो वही होती है, दूसरे समय जो पर्याय होना हो वह होती है; इस प्रकार अनादि-अनन्त क्रमशः निश्चित्रूपसे पर्यायें होती हैं। ४३८.

❁ श्रद्धा-ज्ञानमें स्वीकार तो कर कि यह ज्ञानस्वरूप चैतन्य ही मैं हूँ। जिसकी रुचि आत्मामें जम गई है, ज्ञानस्वरूप ही हूँ ऐसा रुचिमें बैठ गया है, वह काम करके आगे बढ़ जायेगा और जिन्हें यह परम सत्य नहीं बैठेगा वे पीछे रह जायेंगे। आत्मा समझनेके लिये तो रागकी कुछ मंदता होना चाहिये, रागकी तीव्रतामें तो आत्मा समझमें नहीं आता। इसलिये रागकी मंदताको व्यवहार कहा जाता है। ४३९.

❁ सर्वज्ञ, संत और शास्त्र पुकार करके कहते हैं कि सर्व प्रथम आत्माको जानो, आत्माका अनुभव करो, उसके बिना एक डग भी आगे नहीं चला जायेगा। आत्माका परमार्थस्वरूप बतलानेके लिये सीधी बात कही है कि—सर्व प्रथम आत्माको जानकर अनुभव करो। श्री समयसारकी ५वीं गाथामें भी कहा है कि—मैं कहता हूँ उसका अनुभव करके प्रमाण करना। ४४०.

❁ निगोदके जीवको एक श्वासमें अढारह भव होते हैं। एक अंतर्मुहूर्तमें अर्थात् अडतालीस मिनिटमें ६६३३६ भव निगोदका जीव करता है—ऐसा भगवान सर्वज्ञने देखा है। अहाहा! एक अंतर्मुहूर्तमें ६६३३६ भव धारण करे वह दुःख कितना होगा? उसे सुनकर भीतरसे आघात लगना चाहिये। ऐसे दुःख तो अनन्तकाल तक सहे हैं। अरे! नरकके दुःख भी इतने हैं कि करोड़ो जिह्वाओं द्वारा करोड़ो वर्ष तक कहे नहीं जा सकते। इतने दुःख

www.vitragvani.com

तूने अनंतबार भोगे हैं। भाई! अब मनुष्यभव प्राप्त हुआ है तो उन दुःखोंसे छूटनेके लिये ऐसे दुःखोंसे रहित अर्थात् उनके कारणभूत शुभाशुभभावसे रहित, परम आनन्दस्वरूप आत्मा है उसकी पहिचान और दृष्टि कर तो भवके दुःखोंसे छूटकारा हो। ४४१.

❁ शुभाशुभ विभाव तथा अधूरी पर्यायको गौण करके त्रैकालिक अभेद ज्ञायक- स्वभाव पर दृष्टि होना, अपरिणामी अभेद ज्ञायकस्वभावका दृष्टिमें आश्रय होना, वही सम्यग्दर्शन है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञानकी पर्याय', 'यह मेरी श्रद्धाकी पर्याय', 'यह मेरी चारित्रकी पर्याय'—ऐसे पर्यायके ऊपर इतना जोर क्यों देता है? 'यह मेरी गुणकी पर्याय है', 'यह मेरी द्रव्यकी पर्याय है'—ऐसे पर्यायके ऊपर तेरी रुचिका वजन क्यों जाता है? यहाँ तो कहते हैं कि जितने व्यवहार और विकल्प हैं वे सब हैं अवश्य, परन्तु उन पर लक्ष करनेसे, उन पर रुचिका जोर देनेसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। ४४२.

❁ भाई! तू शरीर–वाणी–मन और रागको भूल जा, वे तुझमें नहीं हैं। अरे! तेरी निर्मल पर्यायके प्रगट होनेमें द्रव्य-गुणकी अपेक्षा नहीं है, पूर्व पर्यायके व्ययकी अपेक्षा नहीं है, तब व्यवहारसे होता है यह बात कहाँ रही? पर्यायका ऐसा स्वतंत्र सामर्थ्य है। पर्याय स्वतंत्र ही होती है ऐसा निर्णय करने पर उसका लक्ष कहाँ जायेगा?—कि द्रव्यकी ओर ही लक्ष जायेगा और उसका नाम ही पुरुषार्थ है। द्रव्यकी ओर लक्ष जानेसे ज्ञानमें द्रव्यका ज्ञान आता है परन्तु द्रव्य नहीं आता। जिसे सत्ता निर्णय हो उसकी दृष्टि द्रव्य पर ही जाती है। यही करना है, शेष सब तो धूल है—व्यर्थ है। ४४३.

❁ आनन्दका नाथ ऐसे शुद्धात्माकी बात प्रेमसे सुनता है उसे भावी निर्वाणका भाजन कहा है। उसे सुनकर मैं शरीरसे भिन्न हूँ, कर्मसे भिन्न हूँ, रागसे भिन्न हूँ और स्वयंसे परिपूर्ण हूँ यह बात उसे बैठना चाहिये, स्वीकृति आना चाहिये। इसमें कुछ उलझन जैसा नहीं है; सुनकर स्वीकार करनेसे, हँकार आनेसे भीतर संस्कार पड़ते जाते हैं। ४४४.

❁ सघन वृक्षोंके वनमें छाया माँगना नहीं पड़ती, स्वयं मिल जाती है। उसी प्रकार आत्मद्रव्यके समक्ष याचना नहीं करनी पड़ती, परन्तु पूर्णानन्दके समीप दृष्टि पड़नेसे छाया स्वयं मिल जाती है, माँगना नहीं पड़ती। हे जिनेन्द्र! तू तो वीतराग है इसलिये किसीको कुछ देता नहीं है, किसीसे कुछ लेता नहीं है, परन्तु वृक्षकी छायाकी भाँति जो तेरी शरण लेता है उसे स्वयं शरण मिल जाती है। आत्मद्रव्यकी दृष्टि करनेसे निःशंक है कि आत्मा कृपा करेगा ही। ४४५.

www.vitragvani.com

❀ श्रोता :—सर्व गुणोंका कार्य व्यवस्थित ही है, तो फिर उसे पुरुषार्थ करना कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेव :—जिसे क्रमबद्धपर्यायकी श्रद्धामें पुरुषार्थ भासित नहीं होता उसे व्यवस्थित बैठा ही कहाँ है?

श्रोता :—उसे व्यवस्थित नहीं बैठा ऐसा उसका परिणमन भी व्यवस्थित ही है। वह व्यवस्थितका निर्णय न कर सके ऐसा उसका परिणमन व्यवस्थित ही है, तो फिर उससे निर्णय कर–ऐसा क्यों कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेव :—उसका परिणमन व्यवस्थित ही है ऐसी उसे कहाँ खबर है? व्यवस्थित परिणमन है ऐसा सर्वज्ञने कहा है, परन्तु उसे सर्वज्ञका कहाँ निर्णय है? पहले वह सर्वज्ञका तो निर्णय करे? फिर व्यवस्थितकी खबर पड़ेगी।

श्रोता :—व्यवस्थित परिणमनशील वस्तु है, ऐसा भगवानका कहा हुआ उसे बैठा है।

पूज्य गुरुदेव :—नहीं, सर्वज्ञ भगवानका भी सच्चा निर्णय उसे कहाँ है? प्रथम सर्वज्ञका निर्णय हुए बिना व्यवस्थितका निर्णय कहाँसे आया? यों ही ज्ञानीकी बातें धारण करके करे वह नहीं चल सकता, पहले सर्वज्ञका निर्णय तो करो। द्रव्यका निर्णय किये बिना सर्वज्ञका निर्णय भी यथार्थ नहीं हो सकता। ४४६.

❀ अरे! ऐसी सत्यकी बात थी ही कहाँ? जिन्हें यह सत्य बात सुननेको मिली है वे भाग्यशाली हैं। सुन-सुनकर सत्यके संस्कार डालता है उसे संस्कार डालने पर भीतरसे मार्ग हो जायेगा। प्रतिदिन चार–पाँच घन्टे तक यही सुनना–पढ़ना हो उसे शुभभाव ऐसे होते हैं कि मरकर स्वर्गमें जाये, कोई-कोई जुगलिया हों, कोई महाविदेहमें जायें! बाकी जिनको सत्यका श्रवण भी नहीं है ऐसे अनेक जीव तो मरकर पशुगतिमें जायेंगे। अरे! ऐसा महँगा मनुष्यभव प्राप्त हुआ और अपना हित नहीं किया तो कब करेगा? वास्तवमें तो सत्यका प्रतिदिन चार–पाँच घन्टे तक पठन–श्रवण आदि होना चाहिये। भले ही व्यापार–धन्धा करता हो परन्तु इतना समय तो अपने लिये निकालना चाहिये। यहाँके श्रवण करनेवाले अनेक तो रुचिपूर्वक यह संस्कार गहरे डालते हैं। ऐसे सत्यके संस्कार पड़ जायें और जीवनमें उतर जायें तो उसे अधिक भव नहीं होते। धारणाज्ञान होना भिन्न वस्तु है और अन्तरमें अव्यक्त रुचि होना वह भिन्न वस्तु है। भेदज्ञानके संस्कार गहराईसे डालना चाहिये। इस बातकी गहराईसे महिमा आना चाहिये कि अहो! यह कोई अपूर्व बात है! इस प्रकार स्वयंसे अंतरमें

www.vitragvani.com

महिमा आना चाहिये। सच्ची रुचिवाला आगे बढ़ता जाता है। ४४७.

❁ सम्यग्दृष्टिको पंचपरमेष्ठी, देव–शास्त्र–गुरुके प्रति प्रेम और उसके विरुद्ध कुदेव–कुशास्त्र–कुगुरुके प्रति द्वेषका अंश है, परन्तु वे राग और द्वेष अपने ज्ञाताका ज्ञेय हैं; उन्हें अपना नहीं मानता, अपनेसे हुए नहीं मानता और न उनसे लाभ मानता है। व्यवहार-सम्यक्त्व है परन्तु वह ज्ञानका ज्ञेय है। राग है तो मुझे लाभ है, राग किया तो अच्छा किया ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है। धर्मीको जब तक अस्थिरता है तब तक राग रहता है और द्वेषका अंश भी रहता है परन्तु स्वरूपमें एकत्व नहीं करता और अज्ञानी तो उसीमें पड़ा रहता है कि राग किया वह ठीक किया। ४४८.

❁ द्रव्यका ऐसा लक्ष होना चाहिये कि उसे उसका पक्ष कदापि न छूटे। अभी अनुभव नहीं हुआ है, परन्तु निश्चयका ऐसा पक्ष आया है कि अनन्तकालमें ऐसा पक्ष कभी हुआ ही नहीं था। पूर्वकालमें कभी सम्यक्त्व नहीं हुआ ऐसा न कहकर वहाँ (११वीं गाथाके भावार्थमें) निश्चयनयका पक्ष कभी आया ही नहीं ऐसा कहा है न! पूर्वकालमें द्रव्यलिंगी हुआ तब भी उसे द्रव्यका ऐसा लक्ष नहीं हुआ था। इस प्रकार धारणामें तो द्रव्य ऐसा है वह तो आया था, परन्तु उसकी बात नहीं है। यह तो द्रव्यका ऐसा अपूर्व लक्ष हो जाता है कि उसका उसे स्वयंको ही ख्याल आ जाता है। ४४९.

❁ श्रोता :—आत्माकी दृष्टि करना चाहे तब होती है या जब होना हो तब होती है?

पूज्य गुरुदेव :—जब आत्माकी दृष्टि करना चाहे तब होती है परन्तु वह होना हो तभी होती है। जब करना चाहे तब होती है अर्थात् स्वभावोन्मुखताका पुरुषार्थ करे तब काललब्धि आदि पांचों समवाय साथ ही होते हैं; काललब्धिका निर्णय करनेवाला पुरुषार्थ जागृत हो तब निर्णय होता है। ४५०.

❁ प्रत्येक आत्मा परमात्मस्वरूप ही है ऐसा कहकर द्रव्यबुद्धि कराई और पर्यायबुद्धि छुड़ाई है। प्रत्येक आत्मा अर्थात् अनंतकालमें भी सिद्ध नहीं होनेवाले अभव्य और भव्य सभी आत्मा परमात्मस्वरूप ही हैं। वस्तुस्वभाव ही ऐसा है, केवलज्ञान ही निज स्वभाव है। ऐसा कहकर कहते हैं कि सारी दुनियाको एक ओर रखकर, रागको भी एक ओर रखकर तथा जिसकी अस्ति है ऐसी एक समयकी प्रगट अवस्थाकी भी रुचि छोड़ दे। यह सब है परन्तु इसे लाँघकर त्रैकालिक ज्ञानस्वभावकी रुचि कर। ४५१.

www.vitragvani.com

❁ भगवान आत्मा स्वयं अपनेसे ही बाह्य-अभ्यंतर स्पष्ट अनुभवमें आ रहा है अर्थात् पर्यायमें पर्यायका तथा त्रैकालिकका स्पष्टरूपसे अनुभव है तथापि, एक समयके आनन्दके अनुभवसे उदासीन वर्तता है और त्रैकालिककी ओर झुक जाता है इसलिये अव्यक्त है। विकल्प, निमित्त या संयोगकी अपेक्षा बिना स्वयं अपनेसे ही अपनेको बाह्य–अभ्यंतर अनुभवता है। बाह्य अर्थात् एक समयकी आनन्द पर्यायको अनुभवता है और अभ्यंतर अर्थात् त्रैकालिक ध्रुवतत्त्वको भी स्पष्ट अनुभवता है। त्रैकालिक स्वयं वेदनमें नहीं आता परन्तु त्रैकालिकका ज्ञान अनुभवमें आता है। इस प्रकार बाह्य–अभ्यंतर प्रत्यक्ष अनुभवमें आने पर भी एक समयके आनन्दकी पर्यायमें नहीं रुकता, परन्तु उससे उदासीनरूप वर्तता हुआ त्रैकालिककी ओर झुकता है। प्रगट आनन्दकी व्यक्तदशासे उदासीन वर्तता होनेके कारण भगवान आत्मा अव्यक्त है। ४५२.

❁ आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ प्रभु है, उसके अतीन्द्रिय आनन्दकी उत्कंठा जागृत हो उसे आत्माके सिवा अन्य कुछ रसप्रद नहीं लगता, जगतके पदार्थोंका रस नीरस हो जाता है, संसारके रागका रस उड़ जाता है। अहो! जिसकी इतनी–इतनी प्रशंसा होती है वह आत्मा अनंतानंत गुणोंका पुंज प्रभु है कौन?—ऐसा आश्चर्य हो, उसकी लगन लगे, उसकी धून चढ़े उसे आत्मा मिलेगा ही, नहीं मिले ऐसा हो ही नहीं सकता। जितना कारण दे उतना कार्य आता है। कारण दिये बिना कार्य नहीं आता। कारणमें कचाश होनेसे कार्य नहीं आता। आत्माके आनन्द- स्वरूपकी अंतरसे सच्ची लगन लगे, उत्कंठा जागे, स्वप्नमें भी वहका वही रहे, उसे आत्मा प्राप्त होगा ही। ४५३.

❁ किसीको फांसीकी सजा हुई हो और जब उसे फाँसीके मंच पर ले जाते हैं तब वह कैसा थरथराने लगता है! उसी प्रकार जो संसारके दुःखोंसे भयभीत हो गया है उसके लिये यह बात है। ४५४.

❁ ज्ञानीको जो शुभभाव आता है वह अशुभसे बचनेके लिये आता है, ऐसा जो कहा जाता है, वह तो लोगोंको थोड़े संतोषके लिये कहा जाता है। वास्तवमें तो शुभराग उसके आनेके कालमें ही आता है।

श्रोता :—तब फिर प्रायश्चित क्यों किया जाता है?

पूज्य गुरुदेव :—वह सब कहनेकी बातें हैं, कथनकी पद्धति है। वास्तवमें तो ऐसा

www.vitragvani.com

विकल्प आनेका काल था वही आया है और वाणी भी ऐसी ही निकलना थी वही निकली है। बहुत सूक्ष्मतामें जायें तो वास्तवमें शुभ विकल्प एवं प्रायश्चितकी वाणी निकलना तथा गुरुवाणी निकलना वह पुद्गलका स्वाभाविक कार्य है, आत्माका कार्य नहीं है। आत्मा तो मात्र ज्ञानस्वभावी है। ४५५.

❁ भगवान पूर्णानन्दका नाथ कि जिसका लक्ष करनेसे, रागकी अपेक्षा बिना निरपेक्षरूपसे स्वतंत्ररूपसे षट्कारकोंसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट होते हैं। अरे! रागादि विकार या मिथ्यात्वके परिणाम हों वे भी षट्कारकोंके परिणामसे स्वतंत्ररूपसे होते हैं। मिथ्यात्वभाव होते हैं उसमें कर्मके कारकोंकी अपेक्षा नहीं है। मिथ्यात्वका परिणमन षट्कारकोंके परिणमन द्वारा स्वतंत्ररूपसे होता है। मिथ्यात्वभाव है वह विकारी भाव है, वह भी अपने षट्कारकोंसे होता है, उसे कर्मकी या निमित्तकी अपेक्षा नहीं है। जब विकारकी पर्याय भी— जोकि आत्माका स्वभाव नहीं है, तथा कोई ऐसी शक्ति नहीं है कि विकारको करे तथापि— स्वतंत्ररूपसे अपने एक समयके षट्कारकोंसे होती है, तब फिर सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप निश्चय मोक्षमार्गकी जो निर्मल पर्याय है वह स्वयं एक समयके षट्कारकोंसे परिणमन होकर ही उत्पन्न होती है। जिस निश्चय मोक्षमार्गको त्रैकालिक शुद्ध द्रव्यकी भी अपेक्षा नहीं है वह व्यवहाररत्नत्रयके रागसे हो ऐसा कैसे हो सकता है? ४५६.

❁ अहा! जहाँ अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप ज्ञायककी प्रतीति हुई, वहाँ जो कषायभाव आये वह परज्ञेयरूपसे आता है, स्वज्ञेयरूपसे तो ज्ञायकभाव आता है; क्योंकि ज्ञानकी पर्यायका स्वभाव स्व-परप्रकाशक होनेसे वह स्वको भी जानती है और परको तथा पर्यायमें रागादि अशुद्धता आये उसे भी जानती है। ज्ञातास्वभाव है वह जाननेके सिवा और क्या करेगा? वस्तु है वह ज्ञायकभावरूपसे विद्यमान वस्तु है, निर्लेप है। उसका जिसे ज्ञान हुआ उसे भी, अभी पूर्ण वीतराग नहीं हुआ है इसलिये, व्रतादि रागका विकल्प आता है, उसे वह जानता है, परन्तु उससे लाभ होगा ऐसा नहीं मानता। कषाय आये उसे जानना वह तेरी प्रभुता है, कषायको करना और 'कषाय मेरे हैं' ऐसा मानना वह तेरी प्रभुता नहीं है, पामरता है। अरेरे! जीवने अपने आत्महितकी इच्छा नहीं की, परके जंजालमें फंसकर मर गया। कषाय तो विभावरूप परज्ञेय हैं, स्वभावरूप स्वज्ञेयरूप तो ज्ञायकभाव है। ४५७.

❁ भगवान आत्मा शक्तिरूपसे परमात्मा था, उसका ध्यान करके वर्तमान पर्यायमें सिद्ध भगवान परमात्मपदको प्राप्त हुए। वस्तु तो शुद्ध थी ही परन्तु उसका ध्यान करनेसे उसकी

www.vitragvani.com

दशामें परमात्मदशा उस आत्माने प्राप्त कर ली। ऐसे परमात्माको जानकर अपने लक्षमें लेकर ऐसे सिद्ध परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। श्री समयसारमें लिया है कि भाई! सिद्ध परमात्माको नमस्कार कौन कर सकता है? कि जो हृदयमें–ज्ञानकी दशामें सिद्धपदको स्थापित कर सके और विकारादि मुझमें नहीं हैं, मैं शक्तिरूपसे पूर्णानन्द सिद्ध समान हूँ—इस प्रकार जो श्रद्धा–ज्ञानमें सिद्धकी स्थापना करे वह सिद्धको सच्चा नमस्कार कर सकता है। ऊर्ध्व स्थित होने पर भी सिद्धोंको नीचे उतारता हूँ कि–हे प्रभो! पधारो! पधारो! मेरे आँगनमें पदार्पण करो! सिद्धोंका आदर करनेवालेका आँगन भी कितना उज्वल होगा! राजाको आना हो तब आँगन कितना स्वच्छ करता है! अनंतानंत सिद्धोंको मैं वंदन करता हूँ अर्थात् उसके सिवा मैं रागका, अल्पज्ञताका, निमित्तका आदर दृष्टिमेंसे छोड़ देता हूँ। अपना आँगन उज्वल किया है प्रभु! आप पधारो न! अपनी ज्ञानकलाकी प्रगट दशामें अनंत सिद्धोंकी स्थापना करता है कि पधारो प्रभु! निर्विकल्प पर्यायमें प्रगट होओ!—ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है वह अनन्त सिद्धोंका अपनी पर्यायके आँगनमें पदार्पण करता है और उसीने भगवानको नमस्कार किया कहा जाता है। ४५८.

❀ एक गाँवसे दूसरे गाँव जाये तो पाथेय (नाश्ता) साथ लेकर जाता है, तब फिर अन्य भवमें जानेके लिये कुछ पाथेय होना चाहिये या नहीं? श्रद्धा–ज्ञानका पाथेय साथ लेकर जाना चाहिये। स्त्रीके सामने देखे तो पाप, बच्चोंके सामने देखे तो पाप, पैसेके सामने देखे तो पाप, परकी ओर देखनेसे सर्वत्र पाप....पाप....और.....पाप है। अरे! उसे जाना कहाँ है? राग और मैं एक हूँ–ऐसा मिथ्यात्वका पाथेय लेकर जाना है? मैं तो रागसे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ ऐसा पाथेय लेकर जाये तो उसे आगे बढ़नेमें काम आयेगा। भीतर असंख्य प्रदेशमें गहराई तक ध्रुवधरातलमें पर्यायको ले जाना है। यह तो धीरोंका–वीरोंका काम है। ४५९.

❀ अनंत-अनंत ज्ञान एवं आनन्दादि स्वभावोंसे भरपूर ऐसे निजात्म द्रव्य पर दृष्टि करानेके लिये द्रव्यस्वभावका माहात्म्य बतलाया है कि—प्रभु! तेरा ध्रुव द्रव्य ऐसा है, तू भगवानस्वरूप ही है। भाई! भगवानमें और तेरे द्रव्यस्वभावमें किंचित् भी न्यूनाधिकता नहीं है। भगवान पर्यायमें पूर्ण हुए हैं और तू स्वभावमें पूर्ण है। उस पूर्ण स्वभावका आश्रय करके अंतरोन्मुखताका पुरुषार्थ कर तो तू भी पर्यायमें पूर्ण भगवान हो जायेगा। ४६०.

www.vitragvani.com

❀ वास्तवमें तो मोक्षकी पर्याय अपने षट्कारकोंसे उत्पन्न हुई है। विकारी पर्याय भी अपने षट्कारकोंसे उत्पन्न होती है, क्योंकि द्रव्य-गुणमें विकार नहीं है तथापि पर्यायमें विकार होता है वह पर्याय अपनी स्वतंत्रता प्रगट करती है और उस स्वतंत्रताकी प्रगटताका तात्पर्य वीतरागता है, तथा वह वीतरागता द्रव्य पर दृष्टि जानेसे होती है। सम्यग्दर्शनकी पर्यायका उस काल जन्मक्षण है, वह अपने षट्कारकोंसे होती है, उसे द्रव्य-गुणकी भी अपेक्षा नहीं है। आज भगवान महावीर मोक्ष पधारे तब मोक्ष-पर्यायकी उत्पत्तिका काल था, उसे मोक्षमार्गके कारण हुई कहना सो व्यवहार है, क्योंकि मोक्षमार्गका व्यय होता है; व्यय वह कारण कैसे हो सकता है? उत्पादका कारण उत्पाद स्वयं है। ४६१.

❀ आचार्य महाराज तो भगवान कहकर बुलाते हैं। कहते हैं कि अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभवमें आने पर भी तू उसे देखता नहीं है। क्यों? कि पर्यायबुद्धिके वश हो जानेसे परद्रव्योंके साथ एकत्वबुद्धिके कारण स्वद्रव्यको नहीं देख सकता। प्रभु! अंतरमें आनन्दरसके इक्षुकी पोर है और पुण्य-पापके भाव उस इक्षुका कूचा है, तथापि पुण्य-पापके भावके वश होकर पुण्य-पापके कूचेमें एकत्वबुद्धिसे रागादि ज्ञात होते हैं वह मैं हूँ—ऐसा अज्ञानी मानता है, वह बहिरात्मा मूढ़ है। मूढ़ अज्ञानी जीव ज्ञातृत्वकी दशामें 'यह मैं आत्मा हूँ'—ऐसा न मानकर 'रागादि मैं हूँ' ऐसा मानता है। ४६२.

❀ सच्चे भावलिंगी मुनिको छठवें गुणस्थानमें जितने शुभपरिणाम आते हैं उन्हें भी श्री समयसार नाटकमें जगपंथ कहा है। जिनके प्रचुर आनन्दका वेदन है ऐसे भावलिंगी संतके शुभरागको भी जगपंथ कहा है, क्योंकि वह बंधका कारण है और उसमें धर्म मानता है वह मिथ्यादृष्टि ही है। समयसार कलश १०८में भी कहा है कि व्यवहारचारित्र होता हुआ भी शुद्ध परिणमनका घातक है, दुष्ट है, अनिष्ट है, इसलिये विषय-कषायकी भाँति निषेध्य है; उपादेय नहीं है। इसलिये शुभ क्रियारूप यतिपनेका विश्वास छोड़कर शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अनुभवन योग्य है। ४६३.

❀ अहाहा! क्षणमें अनेक प्रकारके विचित्र रोग हो जायें ऐसा शरीर है, कहाँ शरीर और कहाँ आत्मा! उनका मेड़ पर या सीमान्त पर कोई मेल नहीं है। अहाहा! ऐसा दुर्लभ मनुष्यशरीर प्राप्त हुआ और यह वीतरागका मार्ग महाभाग्यसे मिला है, उसे मनका बोझ अत्यन्त कम करके आत्माको समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। पाँच इन्द्रियोंके ओरकी वृत्तिका बोझ कम करके आत्माको पहिचाननेके विचारमें रुक जाना चाहिये। भीतर अनंत आनंदादि स्वभाव

www.vitragvani.com

भरे हैं, ऐसे स्वभावकी महिमा आये उसे अंतर पुरुषार्थका उद्भव हुए बिना रहेगा ही नहीं। ४६४.

❁ हे जीवो! परद्रव्यमें परिवर्तन करने तथा स्वकार्यमें अन्य साधन ढूँढ़नेकी चिन्ता छोड़कर, स्वसंवेदनसे निजात्माका अनुभव करो! आत्माकी ज्ञानकिरण जो कि प्रगट है उस प्रगट पर्याय द्वारा आत्माको जानो। ४६५.

❁ सर्वज्ञ परमात्माने इन्द्रोंकी उपस्थितिमें कहा कि भाई! हम तुझे सिद्ध समान देखते हैं, तू भी ऐसे देखना सीख न! तीन लोकका नाथ, अतीन्द्रिय आनन्दकी मूर्ति, दर्शन, ज्ञान एवं चारित्रसे पूर्णानंदको प्राप्त हो ऐसा यह आत्मा, उसे हड्डी–मांसके शरीरमें रहना पड़े, जन्म–मरण करना पड़े वह कलंक है, कलंक है! ४६६.

❁ आत्मा परद्रव्यका तो स्पर्श नहीं करता, रागका भी स्पर्श नहीं करता, परन्तु यहाँ अलिंगग्रहणके १९वें बोलमें तो कहते हैं कि आत्मद्रव्य अपनी निर्मल पर्यायका भी स्पर्श नहीं करता। निर्मल पर्यायमें द्रव्य नहीं आता। द्रव्यसामान्य है वह विशेषरूप पर्यायमें नहीं आता–स्पर्शता नहीं है। द्रव्य वस्तु है वह पर्यायको नहीं करती, पर्यायको स्पर्शती नहीं है और पर्याय है वह द्रव्यमें नहीं है, द्रव्यको नहीं स्पर्शती। पर्यायका लक्ष करनेसे राग उत्पन्न होगा और द्रव्यका लक्ष करनेसे राग टूटकर निर्विकल्पता होगी, अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होगा। भाई! तेरी निर्मल पर्याय हो उसे भी द्रव्य स्पर्श नहीं करता। अहाहा!....द्रव्य और पर्याय दोनोंकी स्वतंत्रता बतलाते हैं। पर्याय क्षणिक है वह ध्रुव द्रव्यको नहीं स्पर्शती। अहाहा! अलौकिक बातें हैं। द्रव्य है वह पर्यायको द्रवता है–उत्पन्न करता है यह कथन भी अपेक्षासे है, अन्य द्रव्यसे पर्याय नहीं होती ऐसा बतलानेके लिये कहा है। परन्तु यहाँ अध्यात्मकी बिलकुल सूक्ष्म बात कहते हैं कि द्रव्य है वह पर्यायका दाता नहीं है। ध्रुव अस्तित्व और क्षणिक अस्तित्व दोनोंको भिन्न बतलाते हैं। ४६७.

❁ मोक्षका मार्ग प्रगट हुआ उस पर्यायको द्रव्यकी अपेक्षा नहीं है और व्यवहारके कारकोंकी भी अपेक्षा नहीं है, वह तो षट्कारकके परिणमनसे स्वतंत्ररूपसे उत्पन्न हुई है। सम्यग्दर्शनकी पर्यायका कर्ता पर्याय, सम्यग्दर्शनकी पर्यायका कार्य पर्याय, पर्यायका कारण पर्याय, पर्यायका साधन पर्याय—ऐसी जो सम्यग्दर्शनकी पर्याय है वह भी त्रिकाल स्वभावभावसे भिन्न है; क्योंकि जो मोक्षमार्गकी पर्याय है वह जब मोक्ष होता है तब नाशको प्राप्त होती

www.vitragvani.com

है; वह पर्याय तथा त्रैकालिक द्रव्य यदि अभिन्न हों तो पर्यायका नाश होने पर पारिणामिक द्रव्यका भी नाश होगा, परन्तु ध्रुवका कभी नाश नहीं होता। ४६८.

❁ अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे रागादि विभावपर्याय आत्माकी है। प्रवचनसारमें कहा है कि शुद्ध द्रव्यके निरूपणस्वरूप निश्चयनयसे पुण्य-पापके भाव आत्माके हैं। परन्तु वह तो ज्ञेयकी-पर्यायकी सिद्धि सिद्ध की। परन्तु जब त्रैकालिक ज्ञायक पर दृष्टि पड़ती है, तब तो वह राग, पुण्य-पापके तथा दया-दानके भाव परज्ञेयरूपसे ज्ञात होते हैं—ऐसा ही ज्ञानका सहज स्वभाव है। स्वका ज्ञान हुआ, वहाँ उस ज्ञानकी पर्यायमें स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य होनेसे स्वको जानते हुए राग बीचमें आया उसे परज्ञेयरूप जानता है। ज्ञाता प्रभु और क्या करेगा? वह तो उदयको तथा बंधको तथा निर्जरा और मोक्षको जानता है—उसका ज्ञाता रहता है। यह बात श्री समयसारकी ३२०वीं गाथामें कही है। ४६९.

❁ मुनिको भी पंचमहाव्रतादिका भाव आता है, दृष्टिमें वह हेय है परन्तु अस्थिरताके कारण शुभराग आये बिना नहीं रहता; तथापि वे उसे आदरणीय नहीं मानते। हेयदृष्टि पूर्वक व्यवहारका विकल्प आता है, परन्तु वह जगपंथ है, मोक्षपंथ नहीं है ऐसा साधक जानता है। मुनिको भी शुभभाव आता है परन्तु जितना शुभभाव है उतना जगपंथ है, शिवपंथसे उतने दूर हैं, तथापि अस्थिरताके कारण आये बिना नहीं रहता। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि प्रभु! अपने शुद्धात्माको छोड़कर बाहर देव-गुरु-तीर्थकी ओर मत जा, मत जा। उसके लक्षसे शुभराग होगा ऐसा कहकर व्यवहारसे धर्म होनेका निषेध किया है। ४७०.

❁ कालनयसे जिसकी सिद्धि समय पर आधार रखती है अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, केवलज्ञानादि जिस समय होना हैं उसी समय होते हैं। जिस काल जो होना है उसी काल वह होता है परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि बिना पुरुषार्थके हो जायेगा! कालनयको देखनेवाले साधककी दृष्टि काल पर नहीं किन्तु स्वभाव पर होती है। इसलिये कालनयसे जानता है कि जिस समय चारित्र प्रगट होना है उसी समय प्रगट होगा। जिस काल केवलज्ञान होना है उसी काल होगा। कोई मुनि लाखों वर्ष चारित्र पालता है और केवलज्ञान होनेमें देर लगती है; किसी मुनिको अल्पकालमें केवलज्ञान हो जाता है; उससे दीर्घकाल चारित्र पालन करनेवाले मुनिको अधैर्य नहीं होता। वे जानते हैं कि केवलज्ञान होना ही है वह स्वकालमें होगा। ४७१.

❁ आत्मा तो अकेला मौनस्वरूप ही है। वह कहाँ वाणीको या विकल्पको भी करता

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है! आत्मा विकल्पको करता है यह तो असत्यनयका कथन है। आस्रवतत्त्व आत्मामें है ही नहीं। ऐसा बोलना और ऐसा कहना तथा ऐसे समाधान करना....अहाहा! क्या वाणीको किया जा सकता है?—कि ऐसा बोले और कहे! ४७२.

❁ अहा! अभी तक जितने सिद्ध हुए उससे अनंतगुने जीव निगोदके एक-एक शरीरमें हैं। उन जीवोंमेंसे कितने ही तो सदा उसीमें रहनेवाले हैं। निगोदमेंसे संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्यपर्याय मिलना अनंत-अनंत दुर्लभ है। उसमें सच्चे देव-शास्त्र-गुरुका योग मिलना महा दुर्लभ है। यहाँ तक आकर अब उसे करने योग्य यह एक ही है कि अपने भगवान आत्माको पहिचान लेना। अन्यत्र कहीं रुकने जैसा नहीं है। यह अवसर चूका तो पुनः प्राप्त नहीं होगा। वर्तमानमें तो 'सब अवसर आ चुका है'। ४७३.

❁ कोई कहे कि अध्यात्ममें ऐसा कहा है और आगममें तथा न्यायशास्त्रोंमें ऐसा कहा है, तो कहते है कि भाई! यह सब कथन हैं; प्रथम तो छह द्रव्यस्वरूप लोक है;—इसप्रकार 'है' कहनेसे अनंतद्रव्यकी पर्यायें भी हैं वह उसमें आ गया। पर्याय किसीके कारण है—ऐसा नहीं है; पर्याय सत् है उसका कोई हेतु नहीं है। 'छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है और व्यक्त है'—उसमें 'है' वह सत् है। द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय भी सत् है। जिस प्रकार द्रव्यका कोई दूसरा कारण नहीं है, गुणका कोई दूसरा कारण नहीं है, उसी प्रकार विकारी या अविकारी पर्यायका भी कोई दूसरा कारण नहीं है; वह पर्याय भी अपने कारणसे उस समयमें निरालम्बरूपसे—द्रव्य-गुणके आलम्बन बिना, निमित्तके आलम्बन-अपेक्षा बिना अपने षट्कारकसे—उत्पन्न होती है यह लोकका स्वरूप है। ४७४.

❁ श्रोता :—पर्याय पर्यायसे स्वतंत्र होती है तो द्रव्यके कारण क्यों कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेव :—पर्याय पर्यायसे स्वतंत्र ही होती है परन्तु पर्याय द्रव्यका लक्ष करती है इसलिये द्रव्यको कारण कहा जाता है। कारणपरमात्मासे कार्यपरमात्मा होता है, वहाँ पर्याय द्रव्य पर लक्ष करती है इसलिये द्रव्यको कारण-निमित्त कहा जाता है। द्रव्यका लक्ष करती है इसलिये द्रव्यका आश्रय भी कहा जाता है। कारणवस्तु तो त्रिकाल है परन्तु उसे कारण कब कहा जाता है?—कि जब पर्याय द्रव्यका लक्ष करे तब त्रैकालिक द्रव्यको कारण कहा जाता है। ऐसी वस्तुस्थिति है उसे समझने पर खोटा पानी उतर जाये और सच्चा पानी चढ़ जाये ऐसी बात है। वास्तवमें तो द्रव्य पर्यायको नहीं करता, पर्याय पर्यायसे होती है, परन्तु यह बात जगतको कठिन लगे ऐसी सूक्ष्म है। पर्याय पर्यायसे होती है—यह जाननेका तात्पर्य

www.vitragvani.com

द्रव्यस्वभाव पर लक्ष एवं दृष्टि करना वह है। सबका सार तो पर्यायको अन्तरोन्मुख करना वह है। सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागता है। वह वीतरागता द्रव्यके आश्रयसे प्रगटती है। ४७५.

❁ 'सदव्वाओ सुगई परदव्वाओ दुगई।' (मोक्षपाहुड गाथा–१६) भगवान त्रिलोकीनाथकी भक्तिका राग उठना उसे भी दुर्गति कहते हैं। शुभरागसे स्वर्ग, सेठाई मिलती है, वह भी परमार्थतः दुर्गति है; सुगति तो एक मोक्ष ही है। परद्रव्यके ऊपर लक्ष जाये वह दुर्गति है; उसमें चैतन्यकी सुगति नहीं है। निज भगवान आत्मा पर लक्ष जाये वह एक ही सुगति है। परमात्मप्रकाशमें कहा है कि अनेक भवोंमें समवसरणमें भगवानकी पूजा–भक्ति की, परन्तु वह तो परद्रव्यका लक्ष है इसलिये दुर्गति है। गृहस्थको पापसे बचने हेतु शुभभाव होता है, आता है, उसे व्यवहारसे उपादेय भी कहा जाता है, परन्तु उसमें परद्रव्यका लक्ष होनेसे वह चैतन्यकी सुगति नहीं है। सुगति तो एक ही निज कारणपरमात्माके लक्षसे ही होती है। अब तो यहाँ ४१–४२ वर्ष हो चुके हैं; सूक्ष्म बातें बड़ी स्पष्टतासे कही जाती हैं; अपने हितके हेतु समझकर अंतरमें पचानेकी यह बातें हैं, कानोंमें पड़ना वह भी महाभाग्य है। ४७६.

❁ जिसे आत्माकी यथार्थ रुचि जागृत हो उसे चौवीसों घन्टे वहका वही चिंतन, मंथन, मनन बना ही रहता है; नींदमें भी वही रटन चला करता है। अरे! नरकमें पड़ा नारकी भीषण वेदना सह रहा हो किन्तु पहले सत्श्रवण किया हो तो उसका स्मरण करके झटसे अंतरमें उतर जाता है, उसे प्रतिकूलता बाधक होती ही नहीं! और स्वर्गकी अनुकूलतामें रहा हो तथापि अनुकूलताका लक्ष छोड़कर अंतरमें उतर जाता है। और यहाँ किंचित् प्रतिकूलता हो तो अरे, मुझे ऐसा लग रहा है, मुझे यह कष्ट है...इस प्रकार अनन्तकाल गँवाया। अब उसका लक्ष छोड़कर अंतरमें उतर जा, भाई! उसके बिना अन्य कोई सुखका मार्ग नहीं है। ४७७.

❁ आचार्यदेव कहते हैं कि हम अल्पकालमें सिद्ध होनेवाले हैं! हमने अनंत सिद्धोंका प्रस्थान पर्यायमें रखा है तो हम भी भविष्यमें अल्पकालमें सिद्ध होनेवाले हैं। अनंतानंत सिद्धोंको निर्विकल्प दशा द्वारा अपनी अल्पज्ञ पर्यायमें तथा रागमें स्थापित करता हूँ। ज्ञानमें तो जानकर स्थापित करता हूँ और रागमें विकल्पमें बहुमान लाकर स्थापना करता हूँ, क्योंकि विकल्प कुछ जानता नहीं है। इस प्रकार भाव एवं द्रव्यस्तुति द्वारा अपनेमें अनंत सिद्धोंको स्थापित करते हैं और श्रोताकी पर्यायमें भी स्थापते हैं। अभी

www.vitragvani.com

तो श्रोताके रूपमें श्रवण करने आया है, भले ही अज्ञानी है फिर भी कहते हैं कि तू श्रोतारूपमें श्रवण करने आया इसलिये तेरी पर्यायकी भी हमें इतनी योग्यता लगती है कि तेरी पर्यायमें हम अनंत सिद्धोंकी स्थापना करते हैं, और तेरे विकल्प द्वारा भी अनंत सिद्धोंको तेरी पर्यायमें स्थापते हैं, क्योंकि स्व और परमें भाव एवं द्रव्य दोनोंसे स्थापना करते हैं न! ४७८.

❀ समयसार गाथा ५०से ५५में अनुभूतिको आत्मा कहा है, वहाँ जितने विकल्प उठते हैं उनसे भिन्न और स्वसे अभिन्न कहना है, इसलिये अनुभूतिकी निर्मल पर्यायको आत्मा कहा है, परन्तु जब यह बतलाना हो कि वह अनुभूति कैसे प्रगट होती है तब तो त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य वह स्व है और उसका आश्रय करनेवाली पर्याय वह पर है—भिन्न है—ऐसा श्री नियमसारकी ५०वीं गाथामें कहा है। उस अनुभूतिकी निर्मल पर्याय ध्रुव द्रव्यका स्पर्श नहीं करती और ध्रुव द्रव्य अनुभूतिको नहीं स्पर्शता। अहो! यह तो परम अध्यात्मके अंतरके गंभीर सूक्ष्म भाव हैं। ज्ञातृत्व- क्रिया और त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य वे एक-दूसरेका स्पर्श नहीं करते, तथापि ज्ञातृत्व- क्रियाका आधार आत्मद्रव्य है। ४७९.

❀ अंतरमें ज्ञायकदेवकी महिमा आये तब समस्त संसारका रस छूट जाता है और तभी भगवान आत्मा समीप आता है। भाई! यह तो भगवानकी कथा है, भागवत् कथा! निज ज्ञायक भगवानको बतलानेवाली है और वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा कही गई है इसलिये यह भागवत् कथा है। अनंत अगाध शक्तियोंके धारक ऐसे निज अभेद चैतन्यस्वरूपका रस लगे उसको संसारका रस छूट जाता है—विषयकी वासनासे सुखबुद्धि उड़ जाती है। अंतरमें जहाँ अतीन्द्रिय आनन्दके नाथकी—आनन्दस्वरूप निज ज्ञायक प्रभुकी—महिमा आयी, दृष्टिमें उसका स्वीकार और सत्कार हुआ वहाँ शुभभावकी महिमा भी उड़ जाती है—ज्ञानीको व्रतादिके शुभ परिणाममें भी राग और दुःख लगता है, उसमेंसे सुखबुद्धि उड़ जाती है। ४८०.

❀ प्रवचनसार गाथा १७२में अलिंगग्रहणके १८वें बोलमें कहा है कि आत्मामें अनंत गुण होने पर भी उन गुणोंके भेदको आत्मा स्पर्शता नहीं है, क्योंकि गुणके भेदको लक्षमें लेनेसे विकल्प उठते हैं, निर्विकल्पता नहीं होती। शुद्ध निश्चयनयसे एकरूप अभेद सामान्य ध्रुव द्रव्यको लक्षमें लेनेसे विकल्प टूटकर निर्विकल्पता होती है। इसलिये ऐसा कहा है कि आत्मा गुणोंके भेदको नहीं स्पर्शता। और १९वें बोलमें आत्मा पर्यायके भेदको

www.vitragvani.com

नहीं स्पर्शता, अर्थात् जिस प्रकार गुण ध्रुवमें है तथापि उसके भेदको नहीं स्पर्शता; उसी प्रकार ध्रुवमें पर्यायें हैं और स्पर्श नहीं करता ऐसा नहीं कहना है, परन्तु ध्रुव- सामान्यसे पर्याय भिन्न ही है। ऐसे पर्यायके भेदको आत्मा स्पर्श नहीं करता ऐसा कहकर निश्चयनयके विषयमें अकेला सामान्य द्रव्य ही आता है वह बतलाया है। ४८१.

❀ श्रोता :—ध्रुव आत्मा ही उपादेय होनेसे उसीका मनन और मंथन करते हैं, तथापि अनुभव नहीं होता, तो पुरुषार्थकी कमी मानें या निर्णयकी त्रुटि समझे?

पूज्य गुरुदेव :—पुरुषार्थकी कमी कहो या निर्णयकी त्रुटि कहो दोनों एक ही हैं, इसलिये निर्णय बराबर करना चाहिये। विकल्पात्मक निर्णय बराबर करना चाहिये। वह भी वास्तविक कारण नहीं है। वास्तवमें तो अनुभव होने पर ही सच्चा निर्णय होता है, उससे पूर्व व्यवहार भी यथार्थ नहीं होता। परन्तु अनुभवसे पूर्व क्या होता है उसकी अपेक्षासे बात है। ४८२.

❀ श्री पद्मनन्दि आचार्य ब्रह्मचर्यकी महिमा करके कहते हैं कि हे युवानो! तुम्हें मेरी बात न रुचे तो मैं मुनि हूँ ऐसा जानकर क्षमा करना....ऐसी यह तत्त्वकी परम सत्य बात हम कहते हैं, बंधनसे छूटनेका कारणरूप परम अध्यात्मतत्त्वकी बात करते हैं, तथापि किसीको अनादिके आग्रहवश न रुचे तो हमें क्षमा करना! भाई! हम तो मोक्षके मार्गमें हैं इसलिये हम और क्या कहें! तुम्हें न रुचे और दुःख हो तो क्षमा करना भाई! ४८३.

❀ जो श्रमण त्रिलोकके मुकुटमणि समान निर्मल विवेकरूपी दीपकके प्रकाश द्वारा, यथास्थित पदार्थके निश्चय द्वारा, उत्सुकता छोड़कर स्वरूपमें स्थिर हो गये हैं, आनन्दकी धारामें मस्त हो गये हैं, उपशमरसके सांचेमें ढल गये हैं और उसमेंसे बाहर आनेके निरुद्यमी हो गये हैं, वनमें बाघ, सिंह और भेड़िये चिंघाड़ते हो तथापि निर्भय होकर स्वरूपके शांतरसका–अतीन्द्रिय आनन्दका पान करते हैं–चूसते हैं, एक स्वरूपमें ही अभिमुख होकर वर्तते हैं उन श्रमणको साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं। अभी है तो साधकदशा, तथापि स्वरूपमें एकमें ही अभिमुखरूपसे वर्तते श्रमणको साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं। अहाहा! पंचमकालके संत मुनि पंचमकालके श्रोतासे यह कहते हैं। स्वरूपमें वर्तते संतको साक्षात् मोक्षतत्त्व कहा है क्योंकि अल्पकालमें मोक्ष होना है इसलिये उस अल्पकालको गौण करके साक्षात् मोक्ष है ऐसा कहते हैं। ४८४.

❀ अहो! ज्ञानस्वभावका माहात्म्य कितना है! सामर्थ्य कितना है! उसकी जगतको

www.vitragvani.com

खबर नहीं है। आकाशके अनंत प्रदेश हैं उनमें यहाँसे (किसी स्थानसे) उनकी गिनती करने पर आकाशका अन्तिम प्रदेश कौनसा? उसका अंत है ही नहीं। कालके अनंत समय हैं उनमें वर्तमान समयसे गिनने पर कालका अन्तिम समय कौनसा? उसका अंत है ही नहीं। उसी प्रकार द्रव्य अनंत हैं उनकी गिनती करने पर अन्तिम द्रव्य कौनसा? उसका अन्त है ही नहीं। उसी प्रकार एक जीव द्रव्यके ज्ञान–दर्शनादि गुण भी आकाशके प्रदेशोंकी अपेक्षा अनंतगुने हैं, उनमें अन्तिम गुण कौनसा? उसका अंत है ही नहीं। अहाहा! गजब बात है! ज्ञानकी पर्याय ज्ञेयप्रमाण है और ज्ञेय लोकालोक है, जिसका पार नहीं है ऐसे अपार अनंतानंत द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको ज्ञेय बनानेवाली एक समयकी ज्ञानपर्यायका सामर्थ्य कितना? शक्ति कितनी? उस एक समयकी पर्यायमें अनंतानंत ज्ञेयप्रमाण ज्ञानकी पर्यायके अविभागप्रतिच्छेद कितने? उसका अन्तिम प्रतिच्छेद कौनसा? अहाहा? गजब बात है! सिद्ध हों उनका आदि गिना जा सकता है किन्तु अन्त नहीं। सिद्ध हुए उनके भवका अंत तो आ गया परन्तु उनका पहला भव कौनसा? अनादि है उसका प्रारम्भ है ही कहाँ? अंत रहित द्रव्य हैं उनका अंत कैसे आये? अंत रहित क्षेत्र है उसका अंत आये कैसे? अंत रहित काल है उसका अंत आये कैसे? अंत रहित भाव हैं उनका अंत आये कैसे? अहाहा! इतने-इतने अनंत ज्ञेय हैं उन्हें जाननेवाला ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। ऐसे अनंत पदार्थोंको श्रुतज्ञानमें ज्ञेय बनाया उसकी पर्यायमें विषयोंका रस नहीं रह सकता। राग रह सकता है किन्तु रागका रस नहीं रह सकता। अहाहा! आत्मवस्तु ही कोई ऐसी चमत्कारिक है! उसका क्या कहना भाई! ४८५.

❀ जिज्ञासुको प्रथम ऐसा निर्णय होता है कि मैं मोक्ष प्राप्त करने योग्य ही हूँ; उसमें शंकाको अवकाश नहीं होता। आयु बँध गई होगी तो? ऐसी शंकाकी गुंजाइश नहीं होती। हलकी-पतली बात आत्माके लिये नहीं करना। स्वयं अनंत गुणोंसे समृद्ध है उसे देखना, तू ही देवाधिदेव है ऐसा मानना! ४८६.

❀ भविष्यकी पर्यायकी अपेक्षा भूतकालकी पर्याय अनंतवें भाग है और भूतकालकी अपेक्षा वर्तमान एक समयकी पर्याय अनंतवे भाग है तथा गुण तो तीनों कालकी पर्यायोंका पिण्ड है। इस प्रकार वस्तु कालसे और भावसे एक समयकी पर्यायकी अपेक्षा अनंतगुनी बड़ी है। पर्याय तो कालसे तथा भावसे वस्तुकी अपेक्षा अनंतवें-अनंतवें भाग है। वस्तुके ऐसे महान अस्तित्वकी दृष्टिमें एक समयकी पर्याय वह भले ही पर्यायरूपसे सत् हो, परन्तु ऐसे महान द्रव्यकी दृष्टिमें एक समयकी पर्याय भी अभूतार्थ है। ४८७.

www.vitragvani.com

❀ श्रोता :—यह स्वरूप लक्षमें आने पर भी प्रगट क्यों नहीं होता होगा?

पूज्य गुरुदेव :—पुरुषार्थ चाहिये भाई, पुरुषार्थ चाहिये। भीतर शक्ति पड़ी है उसका माहात्म्य आना चाहिये। वस्तु तो प्रगट ही है। पर्यायकी अपेक्षा वस्तु अप्रगट कही जाती है; वैसे तो वस्तु भी प्रगट ही है, कहीं आच्छादन-ढक्कन नहीं है।

प्रथम तो वस्तुका माहात्म्य आना चाहिये, प्रतीति हो तो माहात्म्य आये—ऐसा नहीं। कुछेक ऐसा ले लेते हैं, परन्तु पहले माहात्म्य आये तो माहात्म्य आते-आते प्रतीति होती है। ४८८.

❀ पर्यायमें अशुद्धता होने पर भी द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल शुद्ध ही है। आर्त्त एवं रौद्रध्यानके क्रूर परिणाम वे सब पर्यायमें हैं, उसी क्षण त्रैकालिक द्रव्य तो शुद्ध ही है। निगोदके जीवको महा रौद्रध्यानके तीव्र मलिन परिणाम हैं परन्तु वे पर्यायमें हैं, उसका द्रव्य तो उस समय भी शुद्ध ही है। संसारके परिणाम वे पर्यायमें हैं। त्रैकालिक शुद्ध भगवान है वह कभी पर्यायमें आता ही नहीं। ऐसे त्रैकालिक भगवान पर दृष्टि करनेसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ४८९.

❀ अनंतकालके पश्चात् जो पर्याय होगी उसका ज्ञान केवलज्ञानमें सीधा होता है। अहाहा! विचारकोंके लिये विचार और मंथन करनेकी यह बात है। ऐसे ही मान ले वह कोई वस्तु नहीं है। ज्ञानका ऐसा ही कोई अचिंत्यस्वभाव है कि जो पर्याय हो गई है और जो होगी उसे सीधा जान लेता है। यह वर्तमान है इसलिये भविष्य होगा और वर्तमान है इसलिये भूत था—ऐसे नहीं, किन्तु उसे सीधा जान लेता है। अहाहा! धन्य भाग्य कि वीतरागकी ऐसी वाणी प्राप्त हुई! ४९०.

❀ जिनवाणीमें व्यवहारका उपदेश शुद्धनयका हस्तावलम्ब—निमित्त—जानकर बहुत किया है किन्तु उसका फल संसार ही है। जिनवाणीमें निमित्तका ज्ञान करानेको कहा वहाँ निमित्तको पकड़ लिया; परन्तु उसका फल संसार है। वस्तु पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु है, उसकी दृष्टि करानेके लिये वह सत्य है और रागके आश्रयसे सम्यग्दर्शन नहीं होता इसलिये उसे छुड़ानेके लिये गौण करके व्यवहार कहकर नहीं है ऐसा कहा है। त्रैकालिक ज्ञायकभावकी दृष्टि करानेके लिये वही सत्य है और पर्याय होने पर भी उसकी दृष्टि छुड़ानेके लिये उसे गौण करके नहीं है ऐसा कहा है। ऐसा क्यों कहा?—कि व्यवहारका पक्ष तो अज्ञानियोंको अनादिसे है तथा परस्पर व्यवहारका उपदेश भी करते हैं और

www.vitragvani.com

जिनवाणीमें भी निमित्तका ज्ञान करानेके लिये व्यवहारका उपदेश बहुत किया है, परन्तु उन तीनोंका फल संसार है। जैनशास्त्रोंमें व्यवहारका उपदेश आया उसका आश्रय लेकर व्यवहार स्थापित करते हैं—व्यवहारका पक्ष करते हैं परन्तु उसका फल संसार है। ४९१.

❁ शुद्धनय एक भूतार्थ है; भूत अर्थात् है....है.....है, शुद्धनय अथवा शुद्धनयका विषय एक ही भूतार्थ है, सत्यार्थ है। त्रैकालिक परमानन्दकी मूर्ति पारिणामिकभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य वही शुद्धनय है, वही भूतार्थ है। जिसमें पर्यायका भी अभाव है ऐसी वस्तुको शुद्धनय प्रगट करता है। व्यवहार असत्को अर्थात् जो त्रैकालिकमें नहीं है उसे बतलाता है इसलिये अभूतार्थ है, और शुद्धनय परम विद्यमान सत् त्रैकालिकको बतलाता है इसलिये भूतार्थ है। जो सकल निरावरण प्रत्यक्षप्रतिभासमय वस्तु है उसे शुद्धनय प्रगट करता है इसलिये भूतार्थ है। व्यवहारनय है वह पर्यायको बतलाता है; पर्याय है अवश्य, नहीं है ऐसा नहीं, परन्तु वह नाशवान होनेसे, त्रैकालिकमें न होनेसे उसे गौण करके व्यवहार कहकर असत्य कहा है। ४९२.

❁ रागका और संयोगका निषेध होता है वह श्रद्धा–ज्ञानकी पर्याय है या नहीं? तथा घन्टे–दो घन्टे एककी एक बात घुँटती है, पठनमें, श्रवणमें, विचारमें, मननमें एककी एक बात आती रहती है कि—यह शरीरके कार्य मेरे नहीं, रागकी क्रिया वह मेरी नहीं ऐसा मंथन होता रहता है तो वह श्रद्धा–ज्ञानमें कोई अंतर ही नहीं पड़ा? यह क्या क्रिया नहीं है? परन्तु लोगोंको उसका कोई माहात्म्य नहीं आता, परन्तु यह श्रद्धा–ज्ञानका कार्य सम्यक् होता जाता है, वह क्रमानुसार झट्से विकल्प टूटकर निर्विकल्प हो जायेगा। ४९३.

❁ संसारमें स्त्री-पुत्र-व्यापारादिका लक्ष करनेसे तो पाप ही होगा और देव-शास्त्र-गुरुका लक्ष करनेसे पुण्य होगा। वह तो ठीक परन्तु एकरूप द्रव्यसामान्य ध्रुव है उसमें गुणभेदका लक्ष करने जायेगा तब भी उसके लक्षसे विकल्प होगा, राग होगा। भाई, उस रागका तुझे दुःख होगा और ध्रुववस्तु सामान्य एकरूप चैतन्यस्वभाव है उसका लक्ष करनेसे भेदका लक्ष छूट जायेगा और तुझे अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होगा। अहाहा! ध्रुवस्वभावकी महिमाका क्या कहना! संतोंने गजब काम किया है। ४९४.

❁ हे भव्यो! तुम ऐसा काम करो कि जिससे आत्मा अपनी ज्ञानभूमिकामें आ जाये। देहान्त हो उससे पूर्व यह प्रयत्न कर ले। आग लगने पर कुँआ खोदनेसे क्या

www.vitragvani.com

होगा? इसलिये मृत्युसे पूर्व आत्माका यत्न कर ले। मनुष्यभवसे ही शिवपदकी प्राप्ति हो सकती है। देव, नारकी, पशुगतिसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये यह अमूल्य अवसर चूकने जैसा नहीं है। ४९५.

❁ 'मैं तो अखण्ड ज्ञानानन्दमय एक परिपूर्ण वस्तु हूँ'—इस प्रकार अभेद त्रैकालिक निज ज्ञायकतत्त्वमें ही ज्ञानीकी दृष्टि लगी है; पर्यायमें भले राग आये, तथापि अंतरमें श्रद्धाका जोर ध्रुव ज्ञायक पर ही होता है; ध्रुव ध्येय परसे दृष्टि किंचित् भी नहीं हटती। 'मैं तो अभेद ज्ञानानन्दमय हूँ',.....'ज्ञान और आनन्दवाला हूँ'—ऐसा भी नहीं; वह तो भेद हो गया। धर्मात्माकी दृष्टि तो अंतरमें अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय अभेद ज्ञायक पर ही सदा होती है। ४९६.

❁ भाई! तेरा कर्त्तव्य तो यह है। यदि तुझे अपना हित करना हो, यदि तू संसारभ्रमणका अंत करना चाहता हो तो छह महीने तक अभ्यास कर और देख कि जिसका प्रकाश पुद्गलसे भिन्न है ऐसा आत्मा अपने हृदयसरोवरमें तुझे प्राप्त होता है या नहीं? अवश्य प्राप्त होगा। क्योंकि अपनी अप्राप्ति कहीं शोभा देती है? पूर्णानन्दस्वरूप चैतन्यवस्तुको देख, छह महीने तक उसका अभ्यास कर और देख कि तुझे वह आत्मा प्राप्त होता है या नहीं? प्राप्त होगा ही। ४९७.

❁ सूत्रकर्ता आचार्य भगवान कहते हैं कि अनेक प्रकारके शुभ विकल्पोंसे कार्यसिद्धि तो नहीं होती। कार्यसिद्धि तो अनंतानन्त आनन्दके सागर आत्माकी ओर जानेसे ही होती है। वहाँ क्यों नहीं जाता? ज्यों-ज्यों अनेक प्रकारके शुभ विकल्पोंकी क्रियामें आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों स्वानुभवकी कार्यसिद्धिमें पिछड़ता जाता है–भ्रष्ट होता है। सर्व प्रथम आत्माका निर्णय करके स्वानुभवका प्रयत्न करना चाहिये; वह न करके शुभ विकल्पोंमें आगे बढ़ता जाता है वह स्वानुभवसे भ्रष्ट होता है। अशुभमें जानेकी तो बात ही नहीं है। श्रीमद् राजचन्द्र भी कहते हैं कि मात्र पठन करते रहनेसे मननकी शक्ति कम होती है। उसी प्रकार मात्र शुभ विकल्प और क्रियाकाण्डमें बढ़ता जाता है वह स्वानुभवसे भ्रष्ट होता जाता है। सर्व शास्त्रोंको जाननेका सार तो आत्माका अनुभव करना है। बारह अंगमें भी आत्मानुभूति करना कहा है। ४९८.

❁ सम्यग्दर्शनमें अनंत पुरुषार्थ है। पाँचों समवाय साथ होते हैं। क्रमबद्धके निर्णयमें भी अनन्त पुरुषार्थ है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्पर्श नहीं करता ऐसे निर्णयमें भी अनन्त

www.vitragvani.com

पुरुषार्थ है। एक द्रव्य दूसरेका स्पर्श नहीं करता यह बात बहुत सूक्ष्म आ गई है। ४९९.

❁ व्रत, नियम और तपके—शुभरागके—अभ्याससे आत्मा जाननेमें नहीं आता। मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे, ज्ञायककी ओर उन्मुख होनेसे, अंतरमें ज्ञातृत्व प्रगट होनेसे आत्मा ज्ञात होता है और परका तथा रागका कर्तृत्व छूटता है। यह सम्यग्दर्शन करनेकी विधि है। मैं मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा अंतर्मुख अभ्यास बारम्बार करनेसे पर्यायमें ज्ञातापना प्रगट होता है और तब परका कर्तापना छूटता है; रागके विकल्पका भी कर्तापना तभी छूटता है। अज्ञानी अपने ज्ञातास्वभावसे अनभिज्ञ है। वह शरीरादि परकी क्रिया तो नहीं कर सकता, परन्तु वह ज्ञातापनेके अभ्याससे रहित है, इसलिये व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदि बाह्य क्रियाओंका तथा पुण्य-पापके भाव जो अपना स्वभाव नहीं है उनका वह कर्ता होता है। अकेले शास्त्रज्ञानके अभ्याससे ज्ञातापना प्रगट नहीं होता और व्रत, नियम, भक्तिके ढेर लगाये तब भी उसे आत्माका ज्ञाताद्रष्टापना प्रगट नहीं होता। अहा! ऐसी बात है प्रभु! ५००.

❁ श्रोता :—आत्मा मात्र ज्ञाता ही है तो उसमें कुछ करना ही नहीं?

पूज्य गुरुदेव :—अरे भाई! उसमें तो अपार करना है। शरीरादि परद्रव्योंकी ओर जो लक्ष जाता है उसे ज्ञाता ऐसे आत्माको जाननेकी ओर ले जाना है। आत्माको जाननेमें तो अनंत पुरुषार्थ आता है। ५०१.

❁ जिसे भीतर चैतन्य ज्ञायकदेवका अभिप्रायमें आश्रय हुआ है ऐसे ज्ञानीको अथवा जिसे स्वभावका आश्रय प्राप्त करना है ऐसे सच्चे आत्मार्थीको स्वभाव समझनेमें निमित्त ऐसे वीतराग देव-शास्त्र-गुरुकी महिमाका शुभराग आता है; पूजा–भक्ति तथा व्रतादि व्यवहारनयका विषय तो अवश्य है, नहीं है ऐसा नहीं, परन्तु वह भाव राग है, संसार है, उसका आश्रय करने योग्य नहीं है, वह उपादेय नहीं है, हितकर नहीं है, हेय है। अरेरे! कब यह तत्त्व सुननेको मिलेगा? मनुष्यभव तो चला जा रहा है, आयु कब पूर्ण हो जायेगी उसकी किसे खबर है? ५०२.

❁ पानीको अग्निका स्पर्श हुआ है न?—नहीं; पानी अग्निके संगसे उष्ण तो हुआ है न? पानी उष्ण हुआ वह अपनी पर्यायकी योग्यतासे स्वयंसे ही उष्ण हुआ है, अग्निके कारण नहीं। पाँव धरती पर रखा दिखायी देता है न? परन्तु उस पाँवने धरतीको छुआ नहीं है, धरतीके आधारसे पाँव नहीं रहा है; पाँव पाँवके अपने आधारसे रहा है। अहाहा!

www.vitragvani.com

है न आश्चर्यकी बात! दिखता है धरतीके आधारसे फिर भी धरतीको छूता नहीं है। यदि पाँव धरतीको छुए तो धरती और पाँव दोनों एकरूप होना चाहिये; परन्तु वे दोनों वस्तुएँ भिन्न-भिन्न हैं। वस्तुके द्रव्य-गुण-पर्यायकी स्वतंत्रता चमत्कारिक है। एक वस्तु दूसरी वस्तुको छुए या करे तो दो वस्तुएँ ही नहीं रहेंगी। ५०३.

❁ योग्यता, काललब्धि, क्रमबद्ध आदि सबका ज्ञान द्रव्यदृष्टि करने पर सच्चा होता है। रुचि रखे परमें और क्रमबद्ध तथा काललब्धि पर डाले वह नहीं चलेगा। यह कोई पोपाबाईका राज्य नहीं है। ५०४.

❁ समयसारका–द्रव्यदृष्टिका पठन-पाठन करे और निमित्तों तथा पर्यायका विवेक न रखे तो मूढ़ हो जायेगा। ५०५.

❁ श्रोता :—पठन-मनन आदि शुभभाव छठवें गुणस्थानवालेको तो हेय हैं, परन्तु चौथे-पाँचवेंवालेको तो दीर्घकालके पश्चात् निर्विकल्पता आती है, इसलिये उसे श्रद्धामें हेय है, परन्तु चारित्रमें तो उपादेय है न?

पूज्य गुरुदेव :—चौथे-पाँचवेंवालेको भी श्रद्धान तथा चारित्र अपेक्षासे भी हेय ही है। वे परिणाम आते हैं, होते हैं, परन्तु हैं तो हेय ही। ५०६.

❁ त्रेपन भावोंमें शुद्ध जीवका पारिणामिकभाव एक ही उपादेय है, शेष बावन भाव हेय हैं। त्रेपन भावोंमें एक ध्रुवभाव है और बावन पर्यायें है। एक ध्रुवभावमें बावन पर्यायरूप भावोंका अभाव है; इसलिये परभावरूप हैं परद्रव्यरूप हैं इसलिये वे बावन भाव हेय हैं। ५०७.

❁ रागादिको अपना मानना वह अपने त्रैकालिक जीवनकी हिंसा है। आत्मा जैसा है वैसा उसको स्वीकार करना वह आत्माकी दया है। ५०८.

❁ भाई, तू शांत हो! धैर्य रख! तेरी प्रभुता तो प्रभु! तेरे पास ही है और अपनी प्रभुताका उपयोग तू कर सकता है। अपनी प्रभुतासे तू स्वभावका साधन कर, उसमें तुझे दूसरोंके पास दीनता करनेकी आवश्यकता नहीं है। त्रिभुवनके नाथ तीर्थंकरदेव सौ इन्द्रोंकी उपस्थितिमें समवसरणमें यह बात कहते थे। उन्हींकी मार्ग- परम्परामें मुनिराज यह बात कह रहे हैं। उसका तू विश्वास कर! प्रतीति ला! ५०९.

❁ भगवान आत्मा द्रव्य-अपेक्षासे अभी–वर्तमानमें ही मुक्तस्वरूप है, कर्मसे तथा

www.vitragvani.com

विभावसे भिन्न निर्लेप वस्तु है। ऐसा न हो तो पर्यायमें निर्लेपता कहाँसे आयेगी? जिस प्रकार स्फटिकमें रंगोंकी झलक दिखने पर भी स्फटिक उसी काल स्वभावसे निर्मल है, उसी प्रकार जीवकी पर्यायमें विभाव दिखने पर भी जीव उसी समय स्वभावसे निर्मल है, निर्लेप है। 'यह सब जो शुभाशुभ विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं; मैं तो बिलकुल भिन्न ज्ञायक हूँ'—ऐसा जाने-परिणमन करे तो पर्यायमें प्रगट निर्लेपता होती है। ज्ञानी जानता है कि 'मेरा आत्मा कर्म और विभावके लेप रहित, शुद्ध चैतन्यदेव है', वह तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे चाहे जैसे उदयमें सदा निर्लेप-अलिप्त ही है। मूल तत्त्वमें तो अन्य कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता, फिर चिन्ता कैसी? ५१०.

❀ ज्ञायकभाव है वह शुभाशुभभावरूप हुआ ही नहीं। शुभाशुभभाव तो अचेतन हैं, जड़ हैं, उनरूप हो तो ज्ञायकभाव जड़ हो जाये। आत्मा चैतन्य ज्ञायकभावरूप होनेसे शुभाशुभभावरूप नहीं होता, इसलिये उस ज्ञायकभावमें प्रमत्त-अप्रमत्तके भेद नहीं हैं। ज्ञायकभाव तो एक चैतन्यरसरूप ही रहा है, शुभाशुभभावके अचेतनरसरूप हुआ ही नहीं है। ज्ञायकभाव चैतन्यके तेजका ध्रुवप्रवाह है, वही दृष्टिका विषय है; उसमें पुण्य-पापके भाव हैं ही नहीं; अप्रमत्त-प्रमत्त गुणस्थानके भेद या पर्यायभेद उसमें नहीं हैं। परन्तु वह तुझे ज्ञात कब होगा?—कि जब तू परद्रव्यके भावसे भिन्न होकर ज्ञायकोन्मुख हो तब शुद्धताका अनुभव होगा और तभी यह आत्मा शुद्ध ज्ञायक ही है ऐसा यथार्थ जाना है। तेरी पर्यायमें चैतन्य ज्ञायकभावका आदर हो, सेवा हो, सन्मान हो, चमत्कारिक लगे, विशेषता आये तब परद्रव्यका सत्कार, सन्मान, आदर, चमत्कार छूट जाये और तब यह आत्मा शुद्ध ज्ञायक ही है ऐसा जाननेमें आता है। ५११.

❀ अहा! प्रभु! एकबार सुन तो सही अपनी प्रभुताकी बातें! आचार्यदेव तुझे 'भगवान' रूपमें सम्बोधन करके उपदेश देते हैं। श्री समयसारकी पहली गाथाकी टीकामें कहा है कि-मैंने अपनी पर्यायमें तो अनंत सिद्धोंको स्थापित किया है और हे श्रोताओ! तुम्हारी पर्यायमें अल्पज्ञता होने पर भी, 'द्रव्य-अपेक्षासे सिद्ध समान शुद्ध हूँ'—इस प्रकार अनंत सिद्धोंको स्थापित करो; रागको नहीं, राग तो स्वभावसे भिन्न है। बात कुछ सूक्ष्म है, प्रभु! चलते पंथसे सर्वज्ञ भगवानका मार्ग किसी भिन्न प्रकारका है। अहा! जैनधर्म अर्थात् क्या? जैनधर्म पूर्णतः आत्मानुभूति पर आधारित है। जिसमें गुरुका उपदेशादि बाह्य निमित्त परमार्थतः अकिंचित्कर हैं। निमित्तके लक्षसे जो ज्ञान हुआ उससे भी आत्माकी प्रतीति नहीं होती। परलक्षी ज्ञान भी वास्तविक ज्ञान नहीं है, उससे धर्म नहीं होता। ५१२.

www.vitragvani.com

❁ समस्त व्यवहार हेय है, परन्तु हेय कहनेसे 'है अवश्य' ऐसा सिद्ध होता है। यदि व्यवहार सर्वथा ही न हो तो वह हेय कैसे होगा? इसलिये व्यवहार है अवश्य परन्तु वह आश्रय करने योग्य नहीं है। पर्याय स्वयं व्यवहार है और द्रव्य निष्क्रिय है वह निश्चय है। द्रव्यकी अपेक्षासे निश्चय मोक्षमार्गकी पर्याय भी व्यवहार है, सच्चे मोक्षमार्गको साधना वह व्यवहार है। यदि व्यवहार न हो तो पर्याय ही सिद्ध नहीं होगी, परन्तु उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि व्यवहारके आश्रयसे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति होती है। ५१३.

❁ निर्मल पर्याय विकसित हुई वह व्यवहार-आत्मा है, केवलज्ञानकी पर्याय विकसित हुई वह भी व्यवहार-आत्मा है और आस्रव वह अनात्मा है, जड़ है, विपरीत है। ५१४.

❁ सम्यग्दृष्टि तो जीव, अजीव, आस्रव, बंध आदिके स्वाँगोंके द्रष्टा हैं, रागादि आस्रव–बंधके परिणाम आये परन्तु सम्यग्दृष्टि उन स्वाँगोंको जानने–देखनेवाले ज्ञाता-द्रष्टा हैं, वे स्वाँगोंके कर्ता नहीं हैं। सम्यग्दृष्टि उन स्वाँगोंको कर्मकृत जानकर शांतरसमें ही मग्न रहते हैं। शुभाशुभभाव आते हैं परन्तु सम्यग्दृष्टि उन्हें कर्मकृत स्वाँग जानकर उनमें मग्न नहीं होते। मिथ्यादृष्टि जीव जीव-अजीवका भेद नहीं जानते, इसलिये वे कर्मकृत स्वाँगोंको ही सच्चे जानकर उनमें मग्न हो जाते हैं। रागादिभाव कर्मकृत भाव होने पर उन्हें अपने भाव जानकर उनमें लीन हो जाते हैं। ऐसे अज्ञानी जीवोंको धर्मी जीव आत्माका यथार्थ स्वरूप बतलाकर उनका भ्रम मिटाकर, भेदज्ञान कराके, शांतरसमें लीन करके सम्यग्दृष्टि बनाते हैं। ५१५.

❁ जिसे भवभ्रमणसे सचमुच छूटना हो उसे परद्रव्यसे अपनी भिन्नताका निर्णय करके अपने ध्रुवस्वभावकी महिमा लाकर सम्यग्दर्शन प्रगट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जैसे–अकाल पड़ा हो तब निर्धन–गरीब लोग धनवान पुरुषोंके आश्रयसे जीवन व्यतीत करते हैं, उसी प्रकार अज्ञानके कारण पर्यायमें अकाल पड़ा है, वह महान पुरुष ज्ञायक भगवानके आश्रय बिना किसके बलसे सम्यग्ज्ञानका सुकाल प्रगट करेंगे? ध्रुवस्वरूप ज्ञायक भगवान वे महान–धनवान पुरुष हैं; उनके आश्रयसे पर्यायमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका सुकाल प्रगट होता है। ध्रुवस्वभावकी शक्तिके बिना किसके बलसे साधकपना प्रगट होगा? ५१६.

❁ शुद्ध पर्याय स्वद्रव्योन्मुख होती है, इसलिये शुद्ध पर्यायको द्रव्यसे अभिन्न कहा जाता है, परन्तु अभिन्नताका यह अर्थ है कि द्रव्यका जितना सामर्थ्य है–शक्ति है वह

www.vitragvani.com

ज्ञानपर्यायमें आ जाती है, प्रतीतिमें आ जाती है, इसलिये शुद्ध पर्यायको द्रव्यसे अभिन्न कहा है। परन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि अनित्य पर्याय नित्य द्रव्यके साथ एकमेक हो जाती है। द्रव्य-पर्याय दोनोंका स्वरूप ही भिन्न होनेसे दोनों भिन्न हैं। पर्याय द्रव्यका आश्रय करती है—लक्ष करती है इसलिये पर्याय शुद्ध होती है, परन्तु उससे द्रव्य-पर्याय एक हो जायें ऐसा नहीं है। दोनोंके स्वरूप भिन्न होनेसे पर्याय द्रव्यरूप नहीं होती और द्रव्य पर्यायरूप नहीं होता। ५१७.

❁ जिस समय जड़के परिणाम होते हैं उसी समय ज्ञाताके परिणाम जाननेके होते हैं, वही ज्ञाताका व्याप्य है, वही ज्ञानका पुरुषार्थ है। फेरफार करना वह तो विपरीत पुरुषार्थ है। ज्ञाता है वह उसी समयके ज्ञेयपरिणामको जानता है, वही ज्ञाताका कार्य है। ५१८.

❁ भगवान, तू अकारणकार्यशक्तिवान है, उस अकारणकार्यशक्ति पर दृष्टि पड़नेसे पर्यायमें अकारणकार्यपना प्रगट हुआ इसलिये पर्यायमें भी अकर्ता हुआ। अहाहा! ज्ञाता-द्रष्टा प्रभु तू है, होता है उसका ज्ञाता है। राग हो उस काल ज्ञान उसे जानता हुआ परिणमता है। ज्ञाता....ज्ञाता....ज्ञाता ही है। ५१९.

❁ आत्मा विश्वका प्रकाशक है, ज्ञाता है। राग आता है उसका भी ज्ञाता है। क्या उसकी शैली है! अहाहा! शरीर-मन-वाणीको आत्मा करता नहीं है, कराता नहीं है, कर्ताका अनुमोदन नहीं करता। शुभरागको भी आत्मा करता नहीं है, कराता नहीं है, अनुमोदन नहीं करता। अहाहा! ऐसी वस्तुस्थिति है। ५२०.

❁ त्रैकालिक स्वभावको मुख्य करके भूतार्थ कहा और पर्यायको अभूतार्थ कहा अर्थात् पर्याय नहीं है ऐसा कहा, वहाँ पर्यायको गौण करके नहीं है ऐसा कहा, इसलिये पर्याय सर्वथा है ही नहीं—ऐसा नहीं है। पर्यायमें जितना राग है उतना दुःख भी है। सम्यग्दृष्टिको राग या दुःख नहीं है ऐसा कहा है वह तो दृष्टिकी प्रधानतासे कहा है, परन्तु पर्यायमें जितना आनन्द है उसे भी ज्ञान जानता है और जितना राग है उतना दुःख भी साधकको है ऐसा जानता है। पर्यायमें राग है, दुःख है, उसे यदि न जाने तो धारणाज्ञानमें भी भूल है। सम्यग्दृष्टिको दृष्टिका जोर बतलानेके लिये आस्रव नहीं है ऐसा कहा है, परन्तु यदि सर्वथा आस्रव न हो तब तो मुक्ति होना चाहिये। श्री समयसारके कर्ताकर्म अधिकारमें कहा है कि सम्यग्दृष्टिको राग होता है उसका कर्ता पुद्गलकर्म है, आत्मा कर्ता नहीं है ऐसा कहा है और श्री प्रवचनसारमें कहा है कि ज्ञानीको राग होता है उसका कर्ता आत्मा है, रागका

www.vitragvani.com

अधिष्ठाता आत्मा है–ऐसा कहा है, तथापि एकान्त माने कि ज्ञानी रागका या दुःखका कर्ता या भोक्ता नहीं है वह नयविवक्षाको नहीं समझता है। ५२१.

❁ एक द्रव्यके भीतर कोई भी अन्य द्रव्य रहा हुआ भासित नहीं होता। ज्ञान ज्ञेयको जानता है वह तो ज्ञानकी जाननेकी स्वच्छताका सामर्थ्य है, तथापि ज्ञानका अन्य द्रव्यके साथ स्पर्श होनेकी मान्यतासे जगत आकुलित होता है। ज्ञानमें बिच्छूका डंक भासित हो वहाँ मुझे बिच्छूने काटा ऐसा मानकर आकुलित होता है। ज्ञान रागको जानते हुए रागमयरूप अपनेको मानकर आकुलित होता है। ज्ञान रागको या अन्य द्रव्योंको छूता–स्पर्शता नहीं है। ज्ञान ज्ञेयको जाने वह तो ज्ञानकी स्वच्छताका सामर्थ्य है। ५२२.

❁ बाहरके भगवानके दर्शनकी बात तो कहीं दूर रही, किन्तु यहाँके (भीतरके) भगवानमें भी पर्यायके दर्शन–नवतत्त्वरूप भेदके दर्शन–वह भी अभी मिथ्यादृष्टिपना है। ५२३.

❁ छह द्रव्यस्वरूप लोक वह ज्ञेय और बाह्य है, उससे भिन्न आत्मा ज्ञायक अव्यक्त है; वह ज्ञेयके कारण ज्ञायक नहीं है, स्वयंसे ही ज्ञायक है; तथापि किंचित् भी ज्ञेयके साथ सम्बन्ध करने जाये तो वह अजीव सिद्ध होता है। ५२४.

❁ परकी ममताके भाव जिसके अंतरमें पड़े हैं और निर्विकल्प होने जाये वह निर्विकल्प नहीं हो सकेगा। अभी तो नीति आदिके परिणाम भी नहीं हैं और निर्विकल्प होना चाहता है तो वह निर्विकल्प नहीं हो सकता। यह बात मोक्षमार्गप्रकाशकमें भी कही है। लौकिक प्रामाणिकताका भी जिसके ठिकाना न हो उसे धर्म हो जाये वह तीनकालमें नहीं हो सकता। अनीतिपूर्वक जिसे एक पैसा भी लेनेके भाव हैं उसे अनुकूलता हो तो सारी दुनियाका राज्य ले लेनेके भाव हैं।

एक मंत्री राज्यके कार्य हेतु राज्यकी मोमबत्ती जलाकर काम करता था और जब स्वयंका अपना कार्य करने लगता तो राज्यकी मोमबत्ती बुझाकर अपने घरकी मोमबत्ती जला लेता था....अपने कार्यके लिये राज्यकी मोमबत्तीका उपयोग नहीं करना चाहिये। (ऐसा तो पहले नीतिमय जीवन होता था।) ५२५.

❁ श्रोता :—वाणीके कर्ता नहीं हैं तो मुनिराज उपदेश क्यों देते हैं?

पूज्य गुरुदेव :—मुनिराज उपदेश देते ही नहीं, वे तो उपदेशको जानते हैं। भगवान कहते हैं, जिनेश्वरदेव कहते हैं—ऐसे कथन शास्त्रोंमें आते हैं, परन्तु भगवान कहते ही नहीं।

www.vitragvani.com

भगवान वाणीको जानते ही हैं। वास्तवमें तो स्वको ही जानते हैं। स्व-पर जानना सहज है, परकी अपेक्षा ही नहीं है। जाननेका स्वभाव ही है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि मैं अपने निजवैभवसे कहूँगा, तुम प्रमाण करना। अरे भगवान! वाणी तुम्हारी नहीं है न? वाणीसे ज्ञान नहीं होता है न? अहाहा! गजब बात है! अद्भुत बात है! वस्तुका स्वरूप ही अद्भुत है! निमित्त– नैमित्तिकके ऐसे कथन भी सर्वज्ञके सिवा अन्यत्र कहीं नहीं हो सकते। ५२६.

❁ तेरे समीप स्थित (ऐसा तेरा आत्मा) उसकी भावना कर न! दूरस्थकी भावना क्या करता है? ५२७.

❁ आत्मामें परमेश्वर होनेका गुण है, पामर होने और पामर रहनेका गुण नहीं है। ५२८.

❁ जो-जो होना होगा वह होगा, उसका अर्थ यह हुआ कि उसका ध्यान नहीं रखना है, किन्तु 'तू अपना ध्यान रख।' ज्ञायकस्वभावमें एकाग्रता कर। ५२९.

❁ वस्तुका स्वरूप ही कोई ऐसा अचिंत्य है! उसकी द्रव्यशक्ति, गुणशक्ति, पर्यायशक्ति अचिंत्य है! विकार क्यों हुआ वह प्रश्न ही नहीं है। ऐसी ही वस्तुकी कोई अचिंत्य पर्यायगत योग्यता है। ५३०.

❁ अकेले दुःखका वेदन वह आत्मा ही नहीं है, अनात्मा है। अहाहा! स्त्री-पुत्र आत्मा नहीं, शरीर आत्मा नहीं, परन्तु पुण्य-पापका मात्र दुःखका वेदन वह आत्मा ही नहीं है, अनात्मा है। ५३१.

❁ रागकी बात तो कहीं रह गई....परन्तु पर्यायकी ओरका लक्ष छोड़ता है तब अन्तर्मुख हुआ जाता है। ५३२.

❁ श्री समयसार गाथा ७२में जो ऐसा कहा है कि आस्रवोंकी अशुचिता आदि जानकर आस्रवोंसे निवर्तता है, वह नास्तिसे कथन आया है। वास्तवमें आस्रवोंको जानकर आस्रवोंसे निवृत्त होता ही नहीं; वह तो पर्यायका ज्ञान हुआ। पर्यायके ज्ञानसे आस्रवसे निवृत्त हो ही नहीं सकता। आत्मवस्तु चैतन्यधाम है ऐसी दृष्टि करते ही आस्रवसे निवृत्त होता है। ५३३.

❁ अरे! बाह्य संगमें किसके साथ सम्बन्ध रखना और किसका बुरा लगाना! तथा

www.vitragvani.com

कितना रहना! अरे! विकारका संग भी कहाँ आत्माको है! असंग चैतन्यको परका संग नहीं है और विकल्पका भी संग नहीं है। ५३४.

❀ अहो! सत्य बात तो बालक कहे वह भी स्वीकार करना चाहिये। सत्य स्वीकार करनेमें अपना हित है न! जिससे हित हो उसे कौन स्वीकार नहीं करेगा? ५३५.

❀ छोटे बच्चेको चुम्बन करता है तो वह उसे पाप है ऐसा लगता है; परन्तु यह रागका चुम्बन करके रागको अपना मानकर वर्तता है वह मिथ्यात्वभाव है जो कि नरक और निगोदके कारणरूप महान अपराध है, वह इसे पापरूप भासित नहीं होता। ५३६.

❀ प्राणियोंको भेदरूप व्यवहारका पक्ष तो अनादिका ही है और वे परस्पर व्यवहारका उपदेश भी करते हैं, तथा जिनवाणीमें भी व्यवहारको शुद्धनयका हस्तावलम्बनरूप जानकर उसका उपदेश बहुत किया है; परन्तु उसका फल संसार ही है। जैसे कि ज्ञानसे मोक्ष होता है, वहाँ निचली दशामें साथ ही रागकी मंदताका विकल्परूप व्यवहार होता है इसलिये क्रियासे मोक्ष होता है ऐसा व्यवहारसे शास्त्रमें कहा है। मुनिको श्रावक आहार देता है, आहार शरीरकी स्थितिमें निमित्त और शरीरके संयममें निमित्त है; संयमसे मुनि मोक्ष साधते हैं, इसलिये मुनिको आहारदान देनेसे श्रावकने मुनिको मोक्ष दिया–ऐसा उपचार परम्परासे कहा जाता है। पूजा, भक्ति, वात्सल्य, प्रभावना आदि शुभराग श्राववकको परम्परासे मोक्षका कारण शास्त्रमें कहा है; व्यवहार साधन है और निश्चय साध्य है, ऐसा कथन शास्त्रमें आता है; केवली–श्रुतकेवलीके पादमूलमें ही क्षायिक सम्यग्दर्शन होना कहा है। सत्संगसे, जिनवाणीसे, गुरुसे, जिनप्रतिमासे, देवऋद्धिदर्शनसे, नारकीको वेदनासे सम्यग्दर्शन होनेका कथन शास्त्रमें आता है। व्यवहारसे निश्चयधर्म प्रगट होता है, इस प्रकार व्यवहारको शुद्धनयका हस्तावलम्ब–सहायक जानकर अनेक प्रकारके व्यवहारके कथन शास्त्रमें आते हैं, परन्तु यदि उन्हें परमार्थ मान ले तो उसका फल संसार ही है, क्योंकि जो कुछ व्यवहार है वह सब शुभरागरूप होनेसे उसके आश्रयसे संसार ही फलता है। शुद्धनयका पक्ष तो प्राणियोंको कभी आया नहीं है और उसका उपदेश भी विरल है। इसलिये उपकारी श्रीगुरुने शुद्धनयके ग्रहणका फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश किया है कि—"हे जीवो! शुद्धनय एक ही भूतार्थ, सत्यार्थ है और उसके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। इसलिये तुम शुद्धनयको ही अंगीकार करो।" ५३७.

❀ श्रोता :—द्रव्यमें पर्याय नहीं है तो फिर पर्यायको गौण क्यों कराया जाता है?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेव :—द्रव्यमें पर्याय नहीं है, परन्तु वर्तमान प्रगट पर्याय है वह पर्याय पर्यायमें है। पर्याय सर्वथा नहीं है ऐसा नहीं है। पर्याय है उसकी उपेक्षा करके, गौण करके, नहीं है ऐसा कहकर पर्यायका लक्ष छुड़ाकर द्रव्यकी दृष्टि करानेका प्रयोजन है। इसलिये द्रव्यको मुख्य करके, भूतार्थ है उसका लक्ष एवं दृष्टि कराना है और पर्यायकी उपेक्षा करके, गौण करके, पर्याय नहीं है, असत्यार्थ है ऐसा कहकर उसका लक्ष छुड़ाया है। परन्तु पर्याय सर्वथा ही न हो तो गौण करना भी कहाँ रहता है? द्रव्य और पर्याय दो होकर पूर्ण द्रव्य वह प्रमाणज्ञानका विषय है। ५३८.

❁ अरे प्रभु! तेरा कभी मरण ही नहीं होता फिर डरता क्यों है? अतीन्द्रिय आनन्दमें जा! प्रभु! तेरे शरीर ही नहीं है तो रोगसे क्यों डरता है? भगवान आत्मा जन्म, जरा और रोगरहित है वहाँ जा!—ऐसा जिनेश्वर, जिनवाणी और गुरु कहते हैं। तू जन्म, जरा, मरण रहित प्रभु है वहाँ दृष्टि दे! तुझे जन्म, जरा, मरण रहित होना हो तो जन्म, जरा, मरण रहित भगवान भीतर विराजमान है वहाँ जा! वहाँ दृष्टि देकर स्थिर हो जा! ५३९.

❁ सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि शुद्ध निश्चयनयसे मैं मोह-राग-द्वेष रहित शुद्ध हूँ। इससे सम्यग्दृष्टिको ऐसा नहीं लगता कि शुभ और अशुभ दोनों समान है इसलिये अशुभ भले आये? सम्यग्दृष्टि अशुभसे बचनेके लिये पठन, श्रवण, विचार, भक्ति आदि करता है। प्रयत्नसे भी अशुभ छोड़कर शुभ करो ऐसा शास्त्रमें उपदेश आता है। शुभ और अशुभ परमार्थतः समान हैं तथापि अपनी भूमिकानुसार अशुभकी अपेक्षा शुभमें रहनेका विवेक होता है और वैसा विकल्प भी आता है। ५४०.

❁ अहो! अनंतकालमें यह बात हमने नहीं सुनी—इस प्रकार प्रसन्नचित्तसे ज्ञानस्वभावकी बात अंतरसे सुने, रुचिकी कुलाँट मारकर श्रवण करे उसे भविष्यमें मुक्ति होना ही है। अहो! उसे पक्ष दृढ़ हो गया है वह बदलेगा नहीं; वह अवश्य मोक्षमें जाता है। उसे तो यह काल और यह योग ही विशेष भासता है। ५४१.

❁ श्रोता :—धर्म करनेमें इतनी अधिक मेहनत करना पड़ती है?

पूज्य गुरुदेव :—इसमें मेहनत कहाँ है? यह तो समझको बदलनेकी बात है।

श्रोता :—परन्तु इसमें विचारकी मेहनत तो करना पड़ती है न?

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेव :—वह मेहनत कहाँ है? वह तो ज्ञानकी पर्याय है, उसमें मेहनत नहीं है। ५४२.

❀ श्रोता :—दो नयोंको जानना कहा है न?

पूज्य गुरुदेव :—जानना वह तो ज्ञानका स्वभाव है; जाननेके लिये तो सर्व नय कहे हैं, परन्तु धर्मरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये तो एकरूप त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध चैतन्य सामान्यद्रव्य है वही आश्रय करने योग्य है। जाननेके विषयमें आदरणीय मान लेनेसे दृष्टिकी विपरीतता होती है। ५४३.

❀ श्रोता :—आत्माकी पहिचान न हुई हो और शुभरागको विष कहनेसे स्वच्छन्दी नहीं हो जायेगा?

पूज्य गुरुदेव :—अज्ञानी तो स्वच्छन्दी ही है, मिथ्यात्व ही महान पाप है और स्वच्छन्द है। शुभरागको विष कहकर उसकी रुचि छुड़ाना है। पहले शुभराग नहीं छूटता, शुभकी रुचि पहले छूटती है। शुभरागको विष कहकर उसकी रुचि छुड़ाना है। ५४४.

❀ केवलज्ञान पूर्ण जानता है, द्रव्यको जानता है, पूर्ण शुद्ध पर्याय है उसे भी जानता है तथापि पर्याय उपादेय नहीं है, त्रैकालिक द्रव्य ही एक उपादेय है। केवलज्ञान साधकको तो है नहीं और उसका लक्ष करते हुए राग होता है। त्रैकालिक द्रव्यका लक्ष करनेसे राग टूटकर निर्विकल्पता होती है; इसलिये वही एक उपादेय है। ऐसा होने पर भी मोक्षपर्याय परम हितकर है, संवर-निर्जरा उपादेय है—ऐसा कहा है वह प्रगट करने योग्य है इस अपेक्षासे कहा है। आश्रयके रूपमें आदरणीय तो त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य एक ही उपादेय है तथा अन्य सब हेय है। ५४५.

❀ श्रोता :—पर्यायको नहीं माननेसे तो एकान्त हो जाता है?

पूज्य गुरुदेव :—'पर्याय है ही नहीं' ऐसा नहीं है। श्रद्धा करती है, जानती है, स्थिरता करती है वह पर्याय ही है; परन्तु पर्यायका आश्रय करना वह विपरीतता है। चैतन्यसामान्यका आश्रय करनेके लिये पर्यायको गौण करके निषेध किया जाता है, परन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं है कि पर्याय पर्यायरूपमें सर्वथा है ही नहीं। ५४६.

❀ किसीका इकलौता जवान पुत्र मर जाये तो कैसा आघात लग जाता है? वैसे ही इसे आघात लगना चाहिये। राग और संयोगकी ओटमें तू मरा जा रहा है उसका तुझे कोई आघात लगता है? ५४७.

www.vitragvani.com

❁ आत्मा तो महा परमेश्वर पदार्थ है। अनंत केवलियोंको अपने उदरमें समा ले ऐसा महान है। प्रगटमें भले थोड़ी हो, परन्तु अप्रगटरूपसे महान शक्ति भरी है। प्रगट न होनेसे उसमें इतनी महान शक्ति है यह बात बैठती नहीं है। ५४८.

❁ भगवान आत्मा एक-एक रजकणके परिधान रहित और रागके परिधान रहित है, ऐसी दृष्टिके बिना सचमुच (सादा जीवन हो फिर भी) सादा जीवन नहीं है। ५४९.

❁ श्रोता :—मैं अकर्ता हूं वहाँ (ऐसा विकल्प है वहाँ) उसने थोड़ा तो आलम्बन लिया है न? चाहिये उतना नहीं लिया.....

पूज्य गुरुदेव :—आलम्बन लिया ही नहीं, किंचित् भी आलम्बन नहीं लिया है। वह तो धारणासे पर्यायमें बैठा बातें करता है। अकर्ता स्वभावके आलम्बन बिना पर्यायमें स्थित रहकर आलम्बन नहीं होता।

श्रोता :—उसे कुछ तो लक्षमें आया है न?

पूज्य गुरुदेव :—नहीं, वह तो धारणामें खड़े-खड़े बातें करता है। ऐसे तो ग्यारह अंगधारी द्रव्यलिंगीने भी ऐसी धारणा की थी। ५५०.

❁ पृथक् वस्तुको पृथक् करनेकी तेरी शक्ति नहीं है तो तू नपुंसक है। पृथक् तो है ही परन्तु पृथक् माना नहीं है; इसलिये पृथक् माननेमें वीर्यकी आवश्यकता है। ५५१.

❁ अपने भावके सिवा, भाई! अन्यत्र कहीं भी तुझे मिठास रह गई तो वह चैतन्यकी मिठासमें नहीं आने देगी। चैतन्यकी मिठासमें परकी मिठास विघ्नकारक होगी। ५५२.

❁ भगवान ऐसा कहते हैं कि भीख माँगनेकी तेरी शक्ति नहीं है, तेरा स्वभाव नहीं है। भगवान ऐसा कहें और तुझे वह जँचे ही नहीं तो तूने भगवानको नहीं माना। ५५३.

❁ अपने भगवानके साथ जीवने कलह कर रखी है और सुखके लिये इधर-उधर भटकता रहता है। ५५४.

❁ ऐसी दृष्टि करे कि परके कार्य मेरे नहीं हैं, तो वहाँ दुःख हलका हो जाता है। ५५५.

❁ इतना ऐसे करूँ, वैसे करूँ और इतना पढ़ लूँ! कर लूँ!–ऐसी जिसकी दृष्टि है उसे परमात्मा हेय वर्तता है। ५५६.

www.vitragvani.com

❁ ज्ञानका स्वभाव जगतके पदार्थोंको जाननेका है, उसके बदले उन्हें करना–रखना माने तो अनंत कषाय-गृह खोलने जैसा महान पाप है। ज्ञेय हैं उन्हें रचने जाये तो बड़ा खूनी महापापी कषायी है। ५५७.

❁ उसे रागका और निमित्तका माहात्म्य आया है अथवा एक समयकी प्रगट पर्यायका माहात्म्य आया है, परन्तु वस्तु सम्पूर्ण भीतर पड़ी है उसका माहात्म्य नहीं आता। श्रीमद् राजचंद्रने कहा है कि जगतको सृष्टिका गुप्त चमत्कार भासित नहीं होता अर्थात् भीतर पूर्ण शक्ति विद्यमान है वह भासित नहीं होती। ५५८.

❁ शरीरको घटा दो, पुण्य-पापको घटा दो, अल्पज्ञताको घटा दो, तो घटाते-घटाते जो शेष रह जाये वह सम्पूर्ण आत्मा है। ५५९.

❁ सबके परिणामकी जिम्मेदारी सबके सिर है। ५६०.

❁ गुरु कहते हैं कि तू अपनेमें समा, गुरुकी प्रथम यह आज्ञा है। प्रथम दृष्टि वीतराग, ज्ञान वीतराग, स्थिरता वीतराग। त्रिकालके तीर्थंकरोंका यह आदेश है। ५६१.

❁ नयपक्षका अर्थ ही विकल्पकी ममता है, अभिनिवेश है, वहाँ पकड़ा गया है, पर्यायके पक्षमें खड़ा है वह रागमें पकड़ा गया है। ५६२.

❁ आत्मा मात्र ज्ञानस्वरूप वस्तु है, उसमें राग जोकि अज्ञानस्वरूप है वह करना आता ही नहीं, परन्तु ज्ञानस्वरूपमें स्थिर रहना ही आता है। ज्ञानस्वरूपमें स्थिर रहना ही प्रत्याख्यान है। यह ज्ञानस्वरूपमें स्थिर रहनेकी जिसे खबर नहीं है उसे किस भूमिकामें कितना राग आता है उसकी खबर ही नहीं होती। ५६३.

❁ प्रभु! आप एक समयमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनको त्रिलोक सम्बन्धी जानते हैं यह आपकी सर्वज्ञताका चिह्न है। छोटेसे छोटा काल एक समय और उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीन स्वरूप ऐसे अनंत पदार्थ, उन्हें आप एक समयमें जानते हैं यही आपकी सर्वज्ञताका चिह्न है। अनंत पदार्थोंके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप तीन भाग हैं ऐसी आपकी वाणी सर्वज्ञताका चिह्न है। एक समयके दो भाग नहीं हो सकते परन्तु एक समयमें तीनलोकके अनंत उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप तीन भागोंको सर्वज्ञ भगवान एक समयमें जान लेते हैं। काल छोटा वस्तु बड़ी! और वह भी एक समयमें तीन-तीन भागवाली तथा ऐसे ही अनंत पदार्थ, उन्हें एक समयमें जान लेते हैं और उन सहित भूतकालके तथा भविष्यकालके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले अनंत पदार्थ, उन्हें सर्वज्ञ एक समयमें जान लेते हैं....अहाहा! ५६४.

www.vitragvani.com

❁ ग्राहक ऐसी ज्ञानकी पर्याय परज्ञेयकी ओरसे छूटकर स्वज्ञेय ऐसे निज चैतन्यतत्त्वको ग्राह्य बनाती है तब अपनी चैतन्यशक्तिका असंगपना अनुभवने पर इन्द्रियके विषयोंसे सर्वथा भिन्नपना प्रगट होता है, वही इन्द्रियविषयोंको जीतना है। ५६५.

❁ मात्र संसारको अशरण एवं अनित्य माने, परन्तु भीतर चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द एवं पूर्ण शान्तिसे भरा है उसकी दृष्टि नहीं करता उसे चैतन्यकी समीपता नहीं होती। वास्तवमें तो चैतन्यकी महिमापूर्वक विभावोंकी महिमा छूट जाती है। अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आने पर शुभाशुभ रागसे विरक्त हो जाता है। चैतन्यकी समीपता और शुभाशुभरागकी विरक्ति दोनों एक साथ होते हैं। ५६६.

❁ जड़-इन्द्रिय, भाव-इन्द्रिय तथा उनके विषयोंसे भिन्न एक अखण्ड ज्ञायकको अनुभवनेका नाम परमात्माकी निश्चयस्तुति है। अरिहंत परमात्माका शरीर, दिव्यवाणी आदि पुण्यप्रकृतियोंका चिंतवन या गुणगान करनेसे अरिहंतदेवकी निश्चयस्तुति नहीं होती। परन्तु जैसा निज परमात्मा है उसे यथार्थ स्वीकार करनेका नाम इन्द्रियोंका जीतना है, वही परमात्माकी सच्ची स्तुति है। ५६७.

❁ राग होने पर भी ज्ञानकी पर्याय रागसे पराङ्मुख होकर अंतरमें ज्ञायकोन्मुख हो वही बस है! पर्यायने त्रैकालिकका स्वीकार कर लिया। पहले पर्याय पर्यायका स्वीकार करती थी तब तक मिथ्यादृष्टि था, अब पर्यायने द्रव्यका स्वीकार किया इसलिये सम्यग्दृष्टि हो गया। यह तो भीतरसे आयी हुई वस्तु है। दुनिया कुछ भी कहे परन्तु वस्तु पलटेगी नहीं; वस्तु तो वस्तुरूप ही रहेगी। ५६८.

❁ आत्मजिज्ञासु जीव प्रश्न करता है कि प्रभो! आपने जो अबद्धस्पृष्टादि भाववाला आत्मा कहा, उसका अनुभव कैसे हो सकता है? क्योंकि हमें तो बद्धस्पृष्टत्व, अन्यत्व, अनियत्व, विशेषत्व तथा संयुक्तत्व आदि भावोंरूप ही आत्मा दिखायी देता है। तब आचार्यदेव कहते हैं कि–बद्धस्पृष्टादि भाव ऊपर-ऊपर तैरते भाव हैं, स्वभावमें प्रवेश नहीं पाते, विनाशीक हैं, इसलिये अभूतार्थ हैं। वे भाव पर्यायमें ही हैं, त्रैकालिकमें वे नहीं हैं, वे स्थायी नहीं है, इसलिये असत्यार्थ होनेसे भूतार्थस्वभावके आश्रयसे अबद्ध-अस्पृष्टत्वादि भावस्वरूप आत्माकी अनुभूति अवश्य हो सकती है। ५६९.

❁ जिस प्रकार नेत्र परमें करने–वेदनेकी कोई क्रिया नहीं करता, मात्र परमें जो क्रियाएँ होती हैं उन्हें जानता है; उसी प्रकार ज्ञान भी परवस्तुका कुछ करता या भोगता

www.vitragvani.com

नहीं है, ज्ञाता-द्रष्टारूपसे जगतको ज्ञेयरूप जानता ही है। जड़के कारण जड़की अवस्था होती है और उस अवस्थाका वेदन जड़में होता है, आत्मा जड़की उस अवस्थाको करता नहीं है और उसे भोगता नहीं है। ५७०.

❁ भगवान और भगवानकी वाणी, शास्त्रादि भावेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जानेवाले इन्द्रियविषय हैं, ज्ञात होने योग्य परज्ञेय हैं। भगवानकी वाणीसे या शास्त्रसे अर्थात् इन्द्रियके विषयोंसे मुझे लाभ होगा ऐसी मान्यता ही मिथ्या है। इन्द्रियके विषयसे लाभ होगा ऐसा माननेवाला परज्ञेयको तथा ज्ञायकको एकरूप मानता है। ग्राह्य-ग्राहकलक्षण-सम्बन्धकी निकटताके कारण मानों वे परस्पर एकमेक हो गये हों ऐसा दिखनेसे, परज्ञेयोंका तथा रागका ज्ञान होने पर उनके कारण ज्ञान हुआ ऐसी एकत्वबुद्धि अज्ञानीको वर्तती है। जो भी इन्द्रियोंके विषय हैं तथा रागादि हैं वे समस्त ज्ञात होने योग्य परज्ञेय हैं–ग्राह्य हैं और उन्हें जाननेवाली ज्ञानकी पर्याय वह ग्राहक है, वे दोनों सर्वथा भिन्न हैं। परन्तु जब तक ग्राहक ऐसी ज्ञानकी पर्याय परज्ञेयोंको ग्राह्य बनाती है तब तक अज्ञानीको उन दोके बीच परस्पर एकत्वका अनुभव होता है। ५७१.

❁ प्रवचनसारमें ४६ और ४७वें नयमें ऐसा कहा है कि मिट्टीको घट आदि वर्तनकी अवस्थासे देखना वह अशुद्धनय है। और मिट्टीको मिट्टीके रूपसे देखना शुद्धनय है। द्रव्यको बंध-मोक्षसे देखना वह अशुद्धनय है और बन्ध-मोक्ष रहित द्रव्यको देखना वह शुद्धनय है। क्योंकि वस्तुमें बन्ध-मोक्ष नहीं है, वह सम्यग्दर्शनका विषय है और वही भूतार्थ है। ५७२.

❁ भगवान निज ज्ञायकप्रभु जो स्वतःसिद्ध है वह तो सुगम ही होता है न? उसे प्राप्त करनेमें मात्र दृष्टिका परिवर्तन होना चाहिये। जिसे रागकी रुचि है उसे सारे संसारकी रुचि है। रागका कर्ता हुआ उसने 'समस्त विश्वका कर्ता हूँ'–ऐसा माना। अहा! वह मान्यता परसंगका आश्रय करनेसे हुई है। परसंगका आश्रय छोड़कर स्वयं अपने असंगरूपसे स्वतंत्रतापूर्वक पृथक् रह सकता है। आत्मा असंग वस्तु है उसका संग करना; रागादि तो अपनी मूल वस्तुमें है ही नहीं, इसलिये उनका आश्रय छोड़ना। अपने असंग स्वभावको प्राप्त करनेमें कठिनाई कैसी? वह तो सुगम ही होता है। ५७३.

❁ आजकल तो मोटर, रेलगाड़ी, हवाई जहाज आदिकी दुर्घटनाओंमें कितने ही लोगोंके मरनेकी खबरें सुनायी देती हैं। आँख खुले और स्वप्न चला जाये उसी प्रकार शरीर और भव क्षणभरमें विलुप्त हो जाता है। हृदयाघात होनेसे क्षणमें छोटी-छोटी उम्रके लोग भी

www.vitragvani.com

चले जाते हैं। अरे! यह सं...सा...र...! नरकमें अन्नका कण भी नहीं मिलता, पानीकी बूँद नहीं मिलती और प्रतिकूलताका तो कोई पार नहीं...ऐसी स्थितिमें अनंतबार गया है किन्तु वहाँसे निकलते ही सब भूल गया! उसका जरा विचार करे तो सब दुःखोंसे छूटनेका मार्ग ढूँढे। अहा! ऐसा मनुष्यभव प्राप्त हुआ और ऐसा सत्य समझनेका सुयोग मिला, उसमें अपने आत्माका हित कर लेने जैसा है। ५७४.

❁ कर्मसे तो विकार होता नहीं है, परन्तु विकार अपनी योग्यतासे हो उस योग्यतामें भी आत्मा व्याप्त नहीं होता। जो कारणरूप भगवान, जिसमेंसे केवलज्ञानादि पर्यायें होती हैं, उसका विकारमें व्याप्त होना अशक्य ही है। ५७५.

❁ आत्माके लिये उसके पीछे पड़ना चाहिये, उसका रटन करना चाहिये। जागते, सोते, उसका प्रयत्न होना चाहिये। उसकी रुचिका प्रकार बराबर होना चाहिये। अंतरमें परमेश्वर कितना महान है! उसे देखनेका कौतूहल जागे तो देखे बिना चैन नहीं पड़ता। ५७६.

❁ यह भगवान ज्ञाताद्रव्य (आत्मा) अन्य द्रव्यके निमित्तसे होनेवाले विकाररूप व्याप्त नहीं होता ऐसा उसका स्वभाव है, आत्मद्रव्यका स्वभाव ही ज्ञाता होनेसे विभावके विकल्पसे व्याप्त नहीं होता। ५७७.

❁ त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव सार है, उसके आश्रयसे धर्म होता है, उसकी दृष्टि करनेसे धर्म होता है। उसके बिना सब थोथा–व्यर्थ है। न्यायके ग्रंथोंमें धर्मी और धर्म दो भिन्न हैं ऐसा कहा है, दोनों निरपेक्ष है, सत् हैं। यहाँ कहते हैं कि समस्त नाशवान भावोंसे धर्मी दूर है। संवर अधिकारमें कहा है कि विकारके प्रदेश भिन्न हैं। चिद्विलासमें कहा है कि पर्यायका और द्रव्यका क्षेत्र भिन्न भिन्न है। ५७८.

❁ जिनस्वरूपी भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति भीतर विराजमान है। सर्व जीव भीतर जिनस्वरूप हैं; पर्यायमें अन्तर है किन्तु वस्तुमें अन्तर नहीं है। रागकी एकता तोड़कर जो जिनस्वरूपको दृष्टिमें ले और अनुभव करे वे अंतरसे जैन हैं, वेशमें जैनपना नहीं है। बाह्यमें वस्त्र उतारकर नग्न होकर बैठ गये इसलिये वह जैनपना है अथवा पंचमहाव्रत पालते हैं इसलिये जैनपना है ऐसा नहीं है। जैनपना तो भगवान उसे कहते हैं कि वस्तु स्वयं जिनस्वरूप है, वीतरागमूर्ति अखण्डानन्दका नाथ प्रभु है, उसकी जिसे दृष्टि हुई और रागकी–विकल्पकी

www.vitragvani.com

दृष्टि छूट गई उसे जैन कहते हैं। जिनको जाने सो जैन है, जिन अर्थात् स्वयं आत्मा। ५७९.

❁ अहा! स्वको भूलकर जहाँ परमें निज-परका भेद हुआ, मेरे और तेरेका भाग पड़ा वहाँ मिथ्यात्वका राग-द्वेष होता है और तदनुसार मैं अच्छा और दूसरे सब बुरे—ऐसा माननेसे भी मिथ्यात्वकी उत्पत्ति होती है। भाई! परपदार्थ चाहे तो देव-शास्त्र-गुरु हों, पंचपरमेष्ठी हों, निगोद हो या शत्रु हो—सब आत्माके ज्ञानके ज्ञेय हैं, परन्तु यह अच्छे और यह बुरे—ऐसा वस्तुमें नहीं है; तथा यहाँ सम्यग्ज्ञानमें भी नहीं है; तथापि तूने परिणाममें अच्छे–बुरे मानकर राग–द्वेष उत्पन्न किया है। ५८०.

❁ (गुरुदेव परम वात्सल्ययुक्त प्रेरणा करते हैं कि) हे भाई! इस समय यह आत्मज्ञान करनेका अवसर है; तू यह बात लक्षमें तो ले! बड़े भाग्यसे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ है उसमें करना तो यह एक ही है। अंतरमें किंचित् धीर होकर बाह्य कार्योंका प्रेम छोड़कर विचार कर तो तुझे ज्ञात होगा कि आत्मस्वभाव और राग दोनों एक होकर रहने योग्य नहीं है किन्तु पृथक् होने योग्य हैं। भाई! क्षण-क्षण करते काल तो बीत रहा है, उसमें यदि स्वभावोन्मुखता नहीं की तो तूने क्या किया? चाहे जितने प्रयत्न द्वारा भी विकारसे भिन्न चैतन्यका अनुभव करना–वही करना है। ५८१.

❁ तीर्थंकर परमात्मा कहते हैं कि हमारी ओर देखनेसे—हमारा लक्ष करनेसे तुझे राग होगा; वह राग दुःखरूप है, उसका फल दुःखरूप है; एक मात्र अनाकुल आनन्दका पिण्ड निज चैतन्यस्वभाव है, उसकी दृष्टि एवं अनुभव करनेसे तुझे आनन्द होगा। इसलिये उसीका अनुभव करो। ५८२.

❁ परिणामदृष्टिसे देखो तो आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अनेकाकार है अवश्य; वास्तवमें मोक्षमार्गरूप परिणति वह आत्माकी ही है, तथापि वस्तुस्वभावसे देखने पर आत्मा एकस्वरूप होनेसे उसे तीनरूप परिणमित होता कहना वह व्यवहार है। ५८३.

❁ भाई! तू सच्ची गहरी जिज्ञासा कर कि जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा, तेरी मति सुलटकर आत्मामें परिणमित हो जायेगी। सत्के संस्कार गहरे डाले होंगे और इस भवमें कार्य नहीं हुआ तो अगले भवमें सत् प्रगट होगा। सातवें नरकके नारकीको वेदनाका पार नहीं है परन्तु अंतरसे पूर्व संस्कार जागृत होने पर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। इसलिये सत्के गहरे संस्कार अंतरमें डाल, भाई! गहराईसे सत्के संस्कार डाल! उथले संस्कार तो

www.vitragvani.com

अनेक बार डाले, परन्तु गहराईसे एकबार यथार्थ संस्कार डाल तो अगले भवमें भी सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। ५८४.

❀ दया, दानादि भावोंमें जो राग मन्द किया है वह पुण्य है, दुःख है। उस भावमें सम्यग्दृष्टिको उसका स्वामित्व न होनेसे पुण्यानुबंधी पुण्य बँधता है, और मिथ्यादृष्टिको रागका स्वामित्व होनेसे पापानुबंधी पुण्यका बंध होता है। जिस भावसे तीर्थंकरनामकर्म बँधता है वह शुभराग भी दुःख है; सुखरूप तथा सुखका कारण तो भगवान ज्ञायक आत्मा है। भीतर भगवान आत्माकी जो आनन्ददशा है वह रागका कार्य भी नहीं है। 'आत्मख्याति' टीकाके परिशिष्टमें एक 'अकार्यकारणत्वशक्ति' कही है। उस शक्तिकी ध्वनि ७२वीं गाथाकी टीकामें भरी है। रागकी दिशा भले ही तीर्थंकरनामकर्मका शुभराग हो परन्तु परोन्मुख है, और वीतरागभावकी दिशा स्वोन्मुख है। मोक्षपाहुड़की १६वीं गाथामें कहा है कि–'परदव्वाओ दुग्गई'–पराश्रितभावसे, भले वह शुभभाव हो, दुर्गति होती है। परमार्थदृष्टिसे तो देवादि चारों गतियाँ दुर्गति हैं, मात्र ज्ञायकभावस्वरूप परिणमन वह एक ही सुगति है। अहा! गजब बात है न! श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा भगवान भी ऐसा कहते हैं कि–हम तुम्हारी अपेक्षासे परद्रव्य हैं; हमारी ओर भी तुम्हारा लक्ष जायेगा, अभिप्रायका भार होगा तो तुम्हारे चैतन्यकी दुर्गति—विभाव परिणमन होगा। अरेरे! लोगोंको मूलतत्त्वकी तो खबर ही नहीं है। 'सदव्वाओ सुगई'—पूर्ण ज्ञानानन्द स्वरूप निज भगवान आत्माका यथार्थ लक्ष करके जो अनुभूति हुई वह चैतन्यकी सुगति है उसका फल सुगति अर्थात् सिद्धदशा है। सिद्धदशा सुगति है और चारों गतियाँ दुर्गति है। ५८५.

❀ मिथ्यादृष्टि जीव मानता है कि विकारका कर्ता पुद्गलकर्मादि हैं। उससे कहते हैं कि विकारका कर्ता पुद्गलकर्म नहीं है किन्तु अज्ञानी जीव स्वयं ही विकारका कर्ता है। दूसरी ओर कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव विकारका कर्ता नहीं है किन्तु पुद्गलकर्म उसका कर्ता है। वहाँ सम्यग्दृष्टि विकारका स्वामी न होनेसे और विकार पुद्गलके लक्षसे होनेके कारण पुद्गलकर्मको उसका कर्ता कहा है। तथा ऐसा भी कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि विकारका कर्ता भी है वहाँ विकारका परिणमन है वह अपना है इसलिये पर्यायके दोषका ज्ञान करानेके लिये कहा है। तथा किसी शास्त्रमें ऐसा भी आता है कि विकार वह जीवका अकेलेका कार्य नहीं है परन्तु जीव और कर्म दोनों मिलकर विकार हुआ है। जिस प्रकार पुत्रकी उत्पत्ति वह माता–पिता दोनोंका कार्य है। वहाँ ऐसा कहना है कि विकार जीवका है परन्तु कर्मके लक्षसे हुआ है—ऐसा उपादान–निमित्तका प्रमाणज्ञान करानेका कथन है। जहाँ जिस अपेक्षासे कहा है वहाँ वैसा समझना चाहिये। ५८६.

www.vitragvani.com

❁ धूलको देखना अब रहने दो! देखनेवालेको देखो! देखनेवालेको देखना वह वस्तुस्वरूप है, इसलिये देखनेवालेको देखना। ५८७.

❁ अरे! दृष्टिके पंथको निर्मल न करे और ऐसे आत्माको पृथक् न करे तब तक कल्याण नहीं हो सकता। ५८८.

❁ प्रथम स्वज्ञान चैतन्यमूर्तिको ज्ञेय बनाकर करो, दूसरा सब ज्ञान उसमें आ जाता है। ५८९.

❁ ....यह तो केवलीसे मिले हुए संस्कार हैं। हम तो पूर्वभवके पुराने दिगम्बर हैं। ५९०.

❁ सूर्यका प्रकाश और अन्धकार दो बिलकुल भिन्न वस्तुएँ हैं। उसी प्रकार सहजात्मस्वरूप अकेला ज्ञानस्वभाव है वह सूर्य समान है और दया–दानादि विकल्प वे अंधकार जैसे हैं, उनकी ज्ञानसूर्यसे बिलकुल भिन्नता है। सहजात्मस्वरूप अर्थात् जो स्वाभाविक है, प्राकृतिक है, अकृत्रिम है ऐसे स्वभावकी और रागकी एकता तीनकालमें नहीं है। क्या किया जाये! केवलियोंका विरह हुआ, अवधिज्ञानी भी कोई रहे नहीं, जगत्को चमत्कारिक लगे ऐसा कुछ रहा नहीं। सत्यको स्वीकारना जगत्को कठिन लगता है; ऐसा परम सत्य स्वीकारनेवाले भी महाभाग्यशाली हैं। ५९१.

❁ वर्षाऋतुमें जो यह हरीकाईका बिछौना देखते हैं तब ऐसा लगता है कि अरे! इस हरीकाईके एक सूक्ष्म टुकड़ेमें असंख्य शरीर हैं और एक शरीरमें अनंत जीव हैं; उनके अनंतवें भागके जीव बाहर निकलकर मोक्ष जाते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय मनुष्य, पशु, नारकी और देव—इन चार गतियोंके जीव तो असंख्यात ही हैं; उनकी अपेक्षा अनंत जीव निगोदके एक टुकड़ेमें हैं। अरेरे! वे जीव कब निगोदसे बाहर निकलेंगे? कब मनुष्य होंगे? और कब सत्का श्रवण करेंगे? भाई! यह मनुष्यभव और दुर्लभ सत्समागम प्राप्त हुआ है तो अपने आत्माको चार गतियोंके दुःखसे छुड़ा ले! ५९२.

❁ बालको! देखो बच्चो! मैं तुम्हें बालक नहीं मानता, भगवानस्वरूप मानता हूँ। आत्मा तो भगवानस्वरूप है; बालक आदि तो शरीरकी अवस्था है, और राग होता है वह क्षणिक विकारी दशा है, उसके पीछे शक्तिरूप भगवान ज्ञानानन्दस्वरूपमें विराजता है। अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ भगवानस्वरूपमें विराजता है। उसका ध्यान करनेसे पर्यायमें भगवान प्रगट

www.vitragvani.com

होता है। प्राप्यकी प्राप्ति होती है। ऐसे चैतन्यभगवानका स्वरूप सुनते-सुनते उसकी रुचिसे सत्के संस्कार पड़ते जाते हैं और फिर वे संस्कार बढ़ते-बढ़ते बाहर आयेंगे। जिस प्रकार मिट्टीके कोरे घड़े पर पानीकी बूँदे गिरती हैं वे पहले दिखायी नहीं देती, किन्तु अधिक बूँद गिरते रहनेसे घड़ेमें पानी बाहर दिखने लगता है। ५९३.

(बालकोंके प्रति पू. गुरुदेवश्रीके उद्गार)

❀ अहाहा! पर्यायदृष्टिवाला कहाँ जायेगा? संयोगसे छूटना उसे अच्छा नहीं लगता, इसलिये चींटी, कौआ, इल्ली, नरकादि गतियोंके संयोगमें चला जायेगा। स्वभावदृष्टिवालेको संयोगकी रुचि नहीं होती, इसलिये सर्व संगसे छूटकर मुक्त हो जायेगा। ५९४.

❀ आत्मा चाहे जैसे संयोगमें भी अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। अपनी शान्ति प्रगट करनेमें उसे जगतका कोई बाह्य पदार्थ विघ्नकर्ता नहीं हो सकता। चाहे जैसे कठिन प्रसंग आ पड़ें, पुत्र मर जाये, पुत्री विधवा हो जाये, जंगलमें अकेला भटक जाये और हैजा आदि बीमारियाँ आ जायें, क्षुधा-तृषाकी भीषण वेदना हो या सिंह–बाघ फाड़ खानेको आ रहा हो अथवा चाहे जैसी भयंकर दुर्घटना हो जाये–तब भी उस संयोगका लक्ष छोड़कर आत्मा अंतरमें अपनी शान्ति प्रगट करनेमें समर्थ है। बाह्यकी कोई प्रतिकूलता आंतरिक आत्मशान्तिको नहीं रोक सकती। शास्त्रोंमें तो कथन है कि नरककी एक क्षणकी पीड़ा इतनी भयंकर है कि कोटि जिह्वाओं द्वारा करोड़ों वर्ष तक कही जाये तब भी कही नहीं जा सकती। तथापि वहाँ भी उन संयोगोंका तथा उस पीड़ाका लक्ष छोड़ दे तो आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। भाई! तेरा तत्त्व तत्काल फल देनेवाला है। उसमें लक्ष करके अपनी शान्ति प्रगट की जा सकती है। ५९५.

❀ एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको छूता नहीं है, स्पर्श नहीं करता।

प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

परद्रव्यकी ओर देखनेसे राग ही होता है।

अपने द्रव्यमें भी द्रव्य-गुण-पर्यायके भेद करके देखनेसे अथवा गुण-गुणीके भेद करके देखनेसे राग ही होता है, वीतरागता नहीं होती।

पंचम परमपारिणामिकभावका आश्रय करनेसे ही धर्म–वीतरागता–होती है वह उपरोक्त चार बोलोंका सार है; यह जैनदर्शनका मूल सिद्धान्त है।

www.vitragvani.com

अहाहा! यह बात भगवानके घरकी और भगवान होनेकी है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका करेगा क्या? यह बातें डंकेकी चोट सिंहनादसे कही जा रही हैं। वीतराग-सर्वज्ञदेवके घरकी यह बात दिव्यध्वनिमें आयी है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको छूता या स्पर्श नहीं करता है यह महासिद्धान्त श्री समयसारकी तीसरी गाथामें कहा है। द्रव्यकी स्वतंत्रताकी यह कोई साधारण घोषणा है? कुम्भकार मिट्टीको छूता या स्पर्शता ही नहीं है तो घड़ेको क्या करेगा? मिट्टी ही स्वयं कर्ता होकर घड़ेको बनाती है। यह तो भगवानकी कही हुई, अंतरसे आयी हुई बात है। ५९६.

❁ या तो वह अपने भगवानका हो सकता है या रागका हो सकता है! तीसरी कोई वस्तु उसकी नहीं है। या हो रागका, या हो वीतरागस्वभावका, तीसरेका वह होता ही नहीं। ऐसी बात है। ५९७.

❁ अपने परमेश्वरका माहात्म्य जीवको आता नहीं है। थोड़ा मंद कषाय हो जाये उसका माहात्म्य आता है, थोड़ा शास्त्रका ज्ञान हो जाये तो उसको लगता है कि मैं बहुत जानता हूँ, थोड़ी भेदवाली श्रद्धा हो जाये तो उसको लगता है मेरी श्रद्धा पक्की हो गई है; अरे भाई! इस परलक्षी ज्ञानकी कोई महिमा नहीं है। उसकी महिमा स्वभावकी महिमाकी दृष्टिको रोकती है। ५९८.

❁ यह पैसेवाला और यह निरोग-स्वस्थ शरीरवाला ऐसा मत देख, परन्तु यह केवली हो गये, यह परिपूर्ण हो गये और मैं अभी पर्यायमें अधूरा हूँ—ऐसा देख न! ५९९.

❁ अहाहा! जातिस्मरणज्ञानमें सामनेवालेका पूर्व शरीर जाननेमें नहीं आता, आत्मा जाननेमें नहीं आता, तथापि निर्णय कर लेता है कि यही आत्मा अपना सम्बन्धी था! इतनी तो जातिस्मरणकी शक्ति है! तब फिर केवलज्ञानकी शक्ति कितनी होगी!! मतिज्ञानकी पर्याय भी इतना कार्य निरालम्बनरूपसे करती है तो केवलज्ञानके निरालम्बीपनेका क्या कहना! ६००.

❁ परमाणु शुद्ध होनेके पश्चात् पुनः अशुद्ध हो जाता है और जीव शुद्ध होनेके पश्चात् शुद्ध ही रहता है; इसलिये परमाणु बंधस्वभावी ही है और जीव मोक्षस्वभावी ही है। परमाणुमें शुद्ध होनेकी योग्यता है और जीवमें बंध होनेकी योग्यता है। ६०१.

❁ भाई! तेरी जेबमें ही सबकुछ भरा है, निकालकर खा ले इतनी ही देर है! तेरी शक्तिमें अनंत ज्ञानादि भरे पड़े हैं, कौतूहल कर! ६०२.

www.vitragvani.com

❁ अहो! ८० वर्षकी आयुवाला २० वर्षसे लेकर ६० वर्ष तक उस भवकी चिन्ता करता है, परन्तु ८० वर्षके बादका जो समय उसकी जरा भी चिन्ता नहीं करता यह कैसी धृष्टता है! ८० वर्षके बादका जो पहला समय वह पूरा भव भी इसी आत्माका है; कहीं दूसरे आत्माका वह भव नहीं है। धूप-छाँवके बीच अंतर नहीं है; उसी प्रकार दो भवोंके बीच अंतर नहीं है, इसलिये दूसरे भवकी तो चिन्ता कर! ६०३.

❁ जिस प्रकार अनादिसे आत्माके बिना चला रहा है, उसी प्रकार रागके बिना चलाना सीख। ६०४.

❁ मिट्टीमय घड़ेको घीका घड़ा कहना वह व्यवहार कथन है इसलिये वह व्यवहार झूठा है; क्योंकि घड़ा घीमय नहीं है किन्तु मिट्टीमय है। उसी प्रकार द्रव्य सो निश्चय और पर्याय सो व्यवहार और वह व्यवहार घीके घड़ेके व्यवहारकी भाँति झूठा है ऐसा नहीं है। क्योंकि घड़ा घीमय नहीं है उसी प्रकार पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं है। पर्याय अस्तिरूप है, पर्यायको व्यवहार कहा, परन्तु वह नहीं है ऐसा नहीं है। राग है वह असद्भूत व्यवहारनयका विषय है और निर्मल पर्याय है वह सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। उन पर्यायोंको अभूतार्थ कहा है इसलिये वे पर्यायें हैं ही नहीं-घीके घड़ेके भाँति झूठी हैं-ऐसा नहीं है। क्षायिक आदि चार भावोंको परद्रव्य तथा परभाव कहा है इसलिये वे पर्यायें हैं ही नहीं और झूठी हैं ऐसा नहीं है। घड़ा कुम्हारने किया वह कहना झूठ है, उसी प्रकार शुद्ध-अशुद्ध पर्यायोंको व्यवहार कहा इसलिये वे पर्यायें झूठी हैं ऐसा नहीं है। जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्वादि पर्यायें वे पर्यायनयका विषय हैं, वे व्यवहारनयसे भूतार्थ हैं, पर्याय नहीं है ऐसा नहीं है। घीका घड़ा नहीं है उसी प्रकार व्यवहारनयका विषय-पर्याय है ही नहीं-ऐसा नहीं है। द्रव्यार्थिकनयसे पर्यायको अभूतार्थ कहा इसलिये पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं है परन्तु निश्चयकी मुख्यतासे पर्यायको गौण करके व्यवहार कहकर वहाँसे दृष्टि छुड़वानेके प्रयोजनसे ऐसा कहा है; परन्तु उससे पर्याय सर्वथा है ही नहीं ऐसा नहीं है। घीका घड़ा कहना वह झूठ है उसी प्रकार समस्त व्यवहार घीके घड़ेकी भाँति सर्वथा झूठ है ऐसा नहीं है। नयोंके कथनको जहाँ जैसा हो वहाँ वैसा समझना चाहिये। यदि बराबर न समझे तो विपरीतता हो जाये। ६०५.

❁ किसी जीवको न मारे, दया पाले, परन्तु खण्ड-खण्ड ज्ञान-इन्द्रियज्ञान तो विषरूप ज्ञान है, दुःखरूप ज्ञान है। उस खण्ड-खण्डरूप इन्द्रियज्ञानसे विमुख तथा अतीन्द्रियज्ञानरूप

www.vitragvani.com

होकर आत्माका अनुभव करे वह ज्ञान है; वह जैनशासनकी अनुभूति है जिसमें रागमिश्रित ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती। ६०६.

❁ अनुभवसे ही गम्यता हो वही आत्माकी महिमा है। उसके बदले थोड़ी कषायकी मन्दता और ज्ञानका विकास हो उसकी महिमा आ जाये वहाँ आत्माका घात करता है, आत्माकी महिमा नहीं रहती। ६०७.

❁ शास्त्रसे ज्ञान नहीं होता ऐसा कहा, इसलिये कोई शास्त्राभ्यास छोड़ दे तो उल्टा अशुभमें जायेगा। यह तो श्रद्धा करानेके लिये कहा जाता है कि शास्त्रसे ज्ञान नहीं होता। परन्तु जिसे बहीखाते देखनेका विकल्प आता है और बहीखाते देखता है उसी प्रकार शास्त्राभ्यासका शुभ-विकल्प आता है। है तो शुभराग, विकल्प- युक्त ज्ञान, परन्तु आये बिना नहीं रहता। ६०८.

❁ सुननेसे ज्ञान नहीं होता, सुनना वह तो उपाधि है और उसमें राग होता है वह भी उपाधि है। भावश्रुत उपयोग सुननेसे नहीं होता। भावश्रुतज्ञान ज्ञायक आत्मामें अंतरमें निर्विकल्प होता है तब भीतरसे उत्पन्न होता है। यहाँ तो थोडा जानपना हो जाये तो हमको ज्ञान हुआ ऐसा हो जाता है। लेकिन इन्द्रियज्ञान ज्ञान ही नहीं है। नव पूर्व ग्यारह अंग भी इन्द्रियज्ञान है। योगीन्द्रदेव कहते हैं कि आत्माको जाननेवाला ज्ञान और शरीरको जाननेवाला ज्ञान भिन्न-भिन्न है। दोनों ज्ञान ही भिन्न हैं। भगवान आत्मा इन्द्रियसे जाननेमें आता ही नहीं। ६०९.

❁ श्रोता :—शुद्धात्माके विचार करे तो आत्माके समीप आया है न?

पूज्य गुरुदेव :—आत्मामें एकाग्र हुआ तब समीप आया है। शुद्धात्माके विचार वह तो विकल्प है; रागसे पृथक् हो तब आत्माके निकट आये। रागके साथ एकता वर्तती है वह तो आत्मासे दूर है। ६१०.

❁ परावलम्बी भावोंमें कहीं-कहीं महिमा रह जाती है इसलिये आत्माकी महिमाका घात हो जाता है। ६११.

❁ हजारों–लाखों वर्षों तक शास्त्राभ्यास करने पर भी, बाह्य निमित्तसे मुझे लाभ होगा, रागकी मन्दतासे मुझे कुछ लाभ होगा, अन्तर्मुख होनेमें कुछ सहायता मिलेगी—ऐसा अभिप्राय रहता है। भगवानका निमित्त सामने बैठा हो तो अपनेको कुछ लाभ होगा–ऐसा मानता है वह लाभकी बुद्धिमें रँग गया है। ६१२.

www.vitragvani.com

❁ वर्तमान अंशके माहात्म्यमें त्रैकालिक अंशका माहात्म्य चला गया है। ६१३.

❁ श्रोता :—आत्माका अनुभव न हो तब तक तो शुभव्यवहार करना चाहिये?

पूज्य गुरुदेव :—अनुभव न हो तो अनुभव करनेका अभ्यास करना। लड़का सातवीं कक्षामें पास न हो तो पास होनेके लिये अभ्यास करना चाहिये; परन्तु व्यापार करनेसे तो पास नहीं होगा? ६१४.

❁ श्रोता :—भगवानकी वाणीसे तो अनेक जीवोंको लाभ हुआ है।

पूज्य गुरुदेव :—अरे प्रभु! अपनी महानता उसे भासित नहीं हुई है इसलिये परसे लाभ मानता है। ६१५.

❁ उसे मनुष्यभव तो पहले अनंतबार मिला है; सत् पुरुषोंके समागममें भी अनंतबार गया है, परन्तु वह अपने स्वभावके योगमें एक क्षण भी नहीं गया। कभी स्वभावमें शक्ति नहीं लगायी। ६१६.

❁ श्रोता :—अनुभवसे पूर्व राग रहित निर्णय ले सकते हैं?

पूज्य गुरुदेव :—विकल्प रहित निर्णय ही यथार्थ निर्णय है, परन्तु पहले भी किंचित् यह बात ली जाती है। बाकी तो व्यवहारकी सभी बातें ऐसे ही आती हैं। स्वीकार करो ऐसा कहा जाता है। श्री समयसारकी पहली ही गाथामें सिद्धकी स्थापना करो ऐसा कहा है न! तथा सुनो! सुनो! ऐसा भी उपदेश आता है। परन्तु क्या सुननेसे ज्ञान होता है? परन्तु व्यवहारके कथन सब ऐसे ही आते हैं। अनुभवप्रकाशमें कहा है कि–श्रद्धा वह साधन और अनुभव होना वह साध्य।

श्रोता :—वह विकल्पवाली श्रद्धाकी बात है न?

पूज्य गुरुदेव :—हाँ, पहले विकल्पयुक्त श्रद्धा होती है, परन्तु उससे कार्य नहीं होता। परन्तु कार्य होनेसे पूर्व होती है इसलिये व्यवहारसे ऐसे ही सब बातें आती हैं। ६१७.

❁ सम्यग्दर्शनसे पहलेकी भूमिकामें तो व्यवहार आदरने योग्य प्रयोजनवान है न?—नहीं, सम्यग्दर्शनकी पूर्व भूमिकामें व्यवहार कैसा होता है वह जाननेमात्र प्रयोजनवान है। सम्यग्दर्शनसे पूर्व कैसे निमित्त होते हैं उतना जानने जितना व्यवहारका उपदेश कार्यकारी है। जिनसे यथार्थ उपदेश मिले अर्थात् जिनके उपदेशमें एकरूप शुद्ध ज्ञायकभावका लक्ष कराया

www.vitragvani.com

जाये, वीतरागताका पोषण हो ऐसे जिनवचनोंका सुनना, धारण करना तथा ऐसे उपदेशके प्रणेताके प्रति भक्ति–वन्दनादि व्यवहारमार्गमें प्रवर्तना प्रयोजनवान है, अर्थात् सम्यग्दर्शनसे पूर्व जिज्ञासुकी भूमिकामें यथार्थ उपदेशका ग्रहण, मनन, चिंतवन तथा देव-शास्त्र-गुरुके प्रति भक्ति-पूजा, विनय-वंदनादिका व्यवहार होता है, उसकी भूमिकामें ऐसा प्रवर्तन होता है ऐसा दर्शानेके लिये व्यवहार कहा है। वास्तवमें तो निश्चय सम्यग्दर्शनसे पूर्व व्यवहार कहा भी नहीं जाता। सम्यग्दर्शनसे पूर्व कैसे भाव होते हैं उसकी बात है, परन्तु उससे सम्यग्दर्शन होता है ऐसा नहीं है। ६१८.

❁ मेरे स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें परका अभाव है—ऐसा निर्णय करो और फिर मेरे स्वभावमें विभावका भी अभाव है—ऐसा निर्णय करो। ६१९.

❁ परलक्षी एक समयकी ज्ञानपर्याय छह द्रव्योंके अनंत पदार्थोंको स्वतंत्ररूपसे स्वीकार करती है। भिन्न-भिन्न स्वीकारती है फिर भी अगृहीत मिथ्यात्व छूटा नहीं है, क्योंकि रागमें स्वामित्वपना पड़ा है; मैं पूरा विकारी हूँ ऐसा मानते हैं इसलिये मिथ्यात्व है। ६२०.

❁ पर जीवको मारनेमें हिंसा क्यों होती है?—उसका कारण यह है कि दूसरेको मारने पर उसे दुःख होगा, ऐसे अपने ज्ञानका ही वास्तवमें तो वह अनादर कर रहा है। उसे दुःख होता है वह मुझे जानना नहीं है, अर्थात् मेरा ज्ञान ही आवृत हो जाओ। बस, यह अपने ज्ञानका अनादर हुआ, यही आत्माकी हिंसा है। ६२१.

❁ राग तो ठीक, परन्तु उसे जितना क्षयोपशमका अंश है उतना मैं हूँ, इस प्रकार उसके साथ एकता वर्तती है वह भी मिथ्यात्व है। ६२२.

❁ श्रोता :—इसमें हमारी क्या भूल है, प्रभु! बतलाइये न?

पूज्य गुरुदेव :—स्वोन्मुखताकी रुचि ही नहीं की है। परोन्मुखतासे लाभ होगा ऐसी शल्य गहरे रह गई है। समवसरणमें गया किन्तु भाई! तूने अपनी सेवा नहीं की। ''पंचपरमेश्वर सच्चे, लेकिन मेरा खीला नहीं खिसकेगा....'' इस दृष्टांतकी भाँति। ६२३.

❁ आत्मामें विकार होनेका कोई गुण नहीं है, पुद्गलमें कर्मरूप होनेका कोई गुण नहीं है। पुद्गलस्कंध होकर अद्धरसे ही कर्मरूप परिणमता है और आत्मामें विकाररूप परिणमन अद्धरसे ही उत्पन्न होता है। ६२४.

❁ ज्ञानी कहते हैं कि जिसने फिर करेंगे, फिर करेंगे—ऐसा अभ्यास (–वायदा)

www.vitragvani.com

कर रखा है उसे मरणके समय भी फिर ही रहना है; क्योंकि जिसने फिर...फिरका सिद्धांत बना रखा है उसे फिर-फिरमें 'आज–अभी करूँ' ऐसा नहीं आयेगा। और ज्ञानीको तो ऐसा लगता है कि यह शरीर छूटनेके समय बहुत जोर लगेगा; तो उसमें जितना जोर लगे उतना ही जोर सामने आत्माका भी होना चाहिये। इसलिये ज्ञानीको ऐसा लगता है कि अपने भावको इसी क्षण तैयार कर लूँ। 'इसी पल तैयार करूँ'—ऐसा अभ्यास जिसने कर रखा है उसे मरणके समय 'यह पल ही' आ जायेगी। ६२५.

❁ भाई! बाह्यमें संयोगोंका त्याग हुआ उसमें तेरी पर्यायमें क्या अंतर पड़ा? बाह्यमें अल्प–अधिक संयोग हों उनका लक्ष छूट जाये और कषायकी मन्दता हो उसका भी लक्ष छूट जाये और तेरी पर्याय चैतन्यको ग्रहण करके परिणमित हो वह मिथ्यात्वका त्याग ही सच्चा त्याग है। ६२६.

❁ अहोहो! यह सर्वज्ञ, यह केवली, यह मोक्ष–ऐसी जिसे प्रतीति हो जाये उसे बंधनकी रुचि छूट जाती है। ६२७.

❁ पढ़ना–सुनना आदि बाहरसे सब करे, किन्तु उससे क्या? उसे स्वयंको भीतरसे हाँ–स्वीकृति आना चाहिये कि राग सो मैं नहीं और ज्ञायकस्वरूप ध्रुववस्तु ही मैं—इस प्रकार उसके अस्तित्वकी हाँ–स्वीकृति भीतरसे आती है। स्वीकृति अर्थात् स्वभावकी प्रतीति करके हाँ आये तब उसके कल्याणका प्रारम्भ होता है। ६२८.

❁ समुद्रके मध्य वडवाग्नि होती है, परन्तु समुद्र उसे भिन्नरूपसे रखता है; समुद्र अपना शोषण नहीं करने देता। उसी प्रकार चैतन्यसमुद्र रागादिको भिन्न रखता है, एकरूप नहीं होने देता। ६२९.

❁ वास्तवमें तो रागसे विरक्ति (भिन्नता)को शील कहा जाता है। ऐसा शील नरकमें भी वेदनाको नहीं गिनता। यह तो अत्यन्त धैर्यपूर्वक समझने जैसा है। जैसे समुद्रका पानी सींक द्वारा उलेचना हो तो कितना धैर्य होना चाहिये! ६३०.

❁ देव–शास्त्र–गुरु भी तेरे लिये पर हैं; उनके आश्रयसे–लक्षसे भी आत्मा प्राप्त नहीं होता; इसलिये उनका लक्ष छोड़ दे। अंतरमें ज्ञानानन्दका पिण्ड प्रभु आत्मा विराजमान है उसका लक्ष कर, उस एकको ही ग्रहण कर। अपने परिणामको वहाँ भीतर ले जा, उसीसे तुझे ज्ञानानन्दकी प्राप्ति होगी। ६३१.

www.vitragvani.com

❁ शुभाशुभभाव तथा अन्य पर्यायसे परिणामोंको हटाकर उन्हें भीतर स्वभावके महलमें जहाँ भगवान आत्मा विराजमान है वहाँ ले जा। राग तो अंधा है, उसमें भगवान नहीं है, परन्तु पर्याय जो निज वस्तुका ही अंश है उसमें भी पूर्ण भगवान नहीं है। त्रैकालिक ज्ञायकमें–जागृत स्वभावमें–भगवान आत्मा है, उसमें निवास कर; वहाँ जा। ६३२.

❁ अहो! आत्मा तो अनंत विभूतिसे भरपूर, अनंत गुणोंकी राशि, अनंत गुणोंका विशाल पर्वत है! चारों ओर गुण ही भरे हैं। अवगुण एक भी नहीं हैं। अहो! यह मैं! ऐसे आत्माके दर्शन हेतु जीवने कभी कौतूहल ही नहीं किया है। ६३३.

❁ कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवानके पास गये थे, परन्तु उनके टीकाकार घोषणा करते हैं। कहते हैं कि–अरे! हमने जिनसे कहा वे श्रोता यह कहते हैं कि हमने मोहको मूलसे उखाड़ दिया है इसलिये मोहका अंकुर भी अब फिरसे उगनेवाला नहीं है। अहाहा! श्रोता कहाँ भगवानके पास गया है?–तो कहते हैं कि यह निज- भगवानके पास गया है न! इसलिये गिरनेकी बात मेरे लिये नहीं है। शास्त्रमें गिरनेकी बात आती है परन्तु वह तो जाननेके लिये है, मेरे लिये यह बात नहीं है। अहाहा! जिसने शुद्ध द्रव्यका आश्रय लिया और सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए उसके गिरनेकी अब बात नहीं है! ६३४.

❁ ज्ञानीको जो राग-द्वेष होते दिखायी देते हैं उन्हें ज्ञानी नहीं करता, परन्तु पुद्गलद्रव्य स्वतंत्ररूपसे व्यापक होकर पुण्य–पापके परिणामोंको करता है। जिस प्रकार मिट्टी घड़ेमें अन्तर्व्यापक होकर घड़ेको करती है, उसी प्रकार ज्ञानी–धर्मात्माको दिखनेवाले—होनेवाले भक्ति, पूजा, व्रत, तपादि रागके परिणामोंमें पुद्गलद्रव्य अन्तर्व्यापक होकर रागादि परिणामोंको करता है। रागादि परिणामोंमें और आत्मामें–घड़ा और कुम्हारकी भाँति–व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे धर्मी जीव रागादिमें व्यापक होकर कर्ता नहीं होता। अहाहा! ज्ञानीकी अंतर्दशा अद्भुत है! ६३५.

❁ रागादिसे भिन्न सहज ज्ञान, सहज आनन्दादि अनंत गुणमय निज आत्माके त्रैकालिक अखण्ड ध्रुवस्वरूपका गुरुगमसे अंतरमें बराबर निर्णय करके, सूक्ष्म उपयोगवान होकर, ज्ञायकस्वभावमें गहरे अवगाहन करके, द्रव्यस्वभावके पातालमें पहुँच जा। वहाँ तुझे कोई अद्भुत अतीन्द्रिय आत्मानुभूति होगी। जब तक आत्मा यथार्थरूपसे प्रतीतिमें न आये तब तक उपयोग स्थूल है; आत्मा प्रतीतिमें आये वह उपयोग सूक्ष्म है। ग्यारह अंगका पाठी हो परन्तु अंतरमें आत्माका यथार्थ स्वरूप स्वानुभवपूर्वक प्रतीतिमें न आये तो उसका भी स्थूल उपयोग है।

www.vitragvani.com

स्थूल ऐसे व्रतादिके मन्द कषायमें वह अटक गया है, सूक्ष्म ऐसे ज्ञानस्वभावकी उसे प्रतीति नहीं हुई है। ६३६.

❁ जीवकी उपस्थितिमें हाथ-पाँव, मुँह, आँखें हिलती हैं, खान-पान बोलचाल होता है, वहाँ उसे ऐसा हो जाता है कि यह सब मुझसे होता है और मैं उसे करता हूँ—ऐसा भ्रम होता है, परन्तु आत्मा तो उससे भिन्न मात्र चैतन्य ज्ञायक ही है वह उसे नहीं बैठता। ६३७.

❁ श्रोता :—आत्माकी प्रतीति नहीं हुई हो तब तक भवभ्रमण नहीं मिटेगा?

पूज्य गुरुदेव :—प्रतीति अभी भले ही न हुई हो, परन्तु अकुलाना नहीं। जिसे स्वकी रुचि–स्वोन्मुखताकी लगन हुई उसे परोन्मुखता छूटती जाती है। ६३८.

❁ गुण–पर्यायकी स्वतंत्रता एवं द्रव्यकी महानता लक्षमें लेना है, यही मुख्य बात है। प्रत्येक पर्यायकी स्वकाललब्धि देखनेसे निमित्ताधीन दृष्टि छूट जाती है और द्रव्यस्वभावकी महानता देखनेसे पर्यायदृष्टि–पर्यायका लक्ष छूट जाता है और वस्तुकी दृष्टि हो जाती है। ६३९.

❁ एककी एक बात दो-दो चार-चार घन्टे तक सुनता है और अंतरसे स्वीकार करता है, रागका निषेध आता है, यहका यही मंथन चलता है, क्या यह कोई क्रिया नहीं है? जड़की तथा रागकी क्रिया ही क्रिया होगी? उसका (ज्ञानका) माहात्म्य नहीं आता। यह जो सत्यकी स्वीकृति आती है और रागका निषेध–नकार आता है यही तत्त्वज्ञानका अभ्यास है। ६४०.

❁ भाई! यह शरीरके अवयव पृथक् हो जायेंगे, कोई शरण नहीं देगा–शरणभूत वस्तु पकड़में नहीं आयेगी। प्रथम पदार्थकी स्वतंत्रता जैसी है वैसी स्वीकार करे और फिर कुलाँट लगाकर अंतरमें जाये तब चैतन्यस्वभाव पकड़में आता है। ६४१.

❁ अहाहा! त्रिलोकीनाथ मानो सामने खड़े हों और कहते हों कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ भी नहीं करता—इस प्रकार दो द्रव्योंकी भिन्नता बतलाते हैं। अरे! ऐसी वीतरागकी बातें सुननेवाले लोग भाग्यशाली हैं। साक्षात् भगवान कहते हों इस प्रकार संत शास्त्रों द्वारा कहते हैं। ६४२.

❁ अहो! स्वयं चैतन्य होकर जड़के पास भीख माँगता है कि मुझे सुख दो। जैसे कोई बादशाह किसी लकड़हारेसे भीख माँगे कि मुझे खानेको रोटी दो तदनुसार। आत्मा रागरूप तो कभी हुआ नहीं है। भेदरूप नहीं हुआ है, अनेकरूप नहीं हुआ है, एकरूपता

www.vitragvani.com

कभी छोड़ी नहीं है; उसमें गुणके और पर्यायके भेद (विकल्प) जिसे खटकते हैं उसे रागसे होता है यह बात ही कहाँ है? वीतरागी भगवान कहते हैं कि मेरा सुननेको बैठा है परन्तु है तो वह विकल्प। ध्यान रखना, उसमें फँस नहीं जाना। ६४३.

❀ अरे प्रभु! तू स्वभावसे परमेश्वर है। तेरे विरोधकी बातें करते शर्म आती है, अनादर नहीं आता। कहाँ तेरी शुद्धता और कहाँ यह विकारी भाव–मिथ्यात्व–संसार! अरे! कहाँ नीम वृक्षके अवतार! निगोदके अवतार! अरे! तू भगवानस्वरूप! भगवान तू कहाँ गया! तेरा विरोध नहीं है प्रभु! तुझसे विरुद्धभावका विरोध है। जिसकी माता उच्चकुलकी पुत्री हो, जिसकी आँखें भी ऊपर न उठें...उसका पुत्र वेश्यागामी हो!—तदनुसार इस प्रभुकी परिणति है जो अपने स्वरूपको छोड़कर विकारमें जाता है। प्रभु! शर्म आती है। ६४४.

❀ आत्मामें अनंत गुण हैं वे वीतरागभावस्वरूप हैं। अनंत गुणोंमें वीतरागता भरी है, राग नहीं भरा है, इसलिये आत्मा रागका कारण नहीं है और न रागका कार्य भी है। अनंत-अनंत-अनंत गुण हैं वे सब वीतराग स्वभावरूप हैं। उन वीतराग गुणोंका धारण करनेवाला वीतरागी भगवान आत्मा वीतरागी पर्यायका कारण है किन्तु रागकी पर्यायका कारण नहीं है, तथा वह रागकी पर्याय वीतरागी पर्यायका कारण नहीं है। जो राग उत्पन्न होता है वह अद्धरसे उत्पन्न होता है। अज्ञानी अज्ञानके कारण पर्यायबुद्धिसे राग करता है, परन्तु रागका कारण हो ऐसा एक भी गुण उसमें नहीं है। जैसे भगवान आत्मा रागका कारण नहीं है उसी प्रकार वह रागका कार्य भी नहीं है। पर्यायबुद्धिमें निमित्तके आधीन होकर अद्धरसे जो रागादि उत्पन्न करता है उसका कारण द्रव्यस्वभाव नहीं है। ६४५.

❀ भगवानकी वाणीको ३१वीं गाथामें इन्द्रिय कहा है, इन्द्रियके द्वारा अतीन्द्रिय ज्ञात नहीं हो सकता, क्योंकि पाँच इन्द्रियोंके विषयके व्यापारसे प्रभु रहित है। यह बात सुनने और विचार करनेका अवकाश नहीं मिलता। अरेरे! भगवान तू परिपूर्ण है ऐसी प्रतीति ला भाई! देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धा वह तो राग है, उससे पार शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्दका पिण्ड भगवान है। वह मन-वचन-कायासे तो प्राप्त हो ऐसा नहीं है, द्रव्यकर्म-नोकर्मसे मिले ऐसा नहीं है, परन्तु पुण्यके भावसे भी मिले ऐसा नहीं है; क्योंकि आत्मा भावकर्मसे रहित है। भावकर्म अर्थात् विकल्पकी वृत्ति। भले ही भगवानके स्मरणकी या स्वाध्याय आदिकी वृत्ति हो परन्तु वह भावकर्म है, विकार है, उससे प्रभु भिन्न है। वस्तु है जिसकी अस्ति है, अस्तित्व रखनेवाला जो आत्मतत्त्व है वह द्रव्यकर्मसे भिन्न है और बाह्य निमित्त जो नोकर्म उन सबसे भिन्न है। ६४६.

www.vitragvani.com

❁ निमित्त और राग तो कहीं रहे, परन्तु एक समयकी शुद्ध पर्याय भी अविद्यमान–असत्यार्थ–अभूतार्थ होनेसे मिथ्या है। एकरूप ध्रुवस्वभाव ही विद्यमान है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है। एकरूप स्वभावमें गुणभेद, पर्यायभेद है ही नहीं, इसलिये वे झूठे हैं। ६४७.

❁ भगवान अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ है, उसका अस्तित्व स्वीकार न करके जो पुण्य-पापका विकृतभाव है उसे स्वीकारता है उसे रागादि उपादेय और आत्मा हेय हुआ है, अन्य प्रकारसे कहें तो यह मरणतुल्य हो रहा है। बाहरके प्रेममें अंतरकी वस्तु ढँक गई है। प्रभु! तू अंतरमें तो सकल निरावरण परमात्मा है। द्रव्यसे तो तुझे अंशतः भी आवरण नहीं है तथापि रागादिके प्रेमसे भगवान आत्मा ढँक जानेसे मरणतुल्य हो रहा है। ६४८.

❁ एक द्रव्य अन्य द्रव्यसे भिन्न होनेके कारण बाहर ही लौटता है। शरीरको आत्मा स्पर्श नहीं करता, बिच्छूका डंक शरीरको छूता नहीं है और बिच्छू काटे तब रोता–चिल्लाता है! अहाहा! शरीर आत्माके बाहर ही लौटता है वह आत्माको क्या कर सकेगा! पैर जमीनको नहीं छूता और धूप हो वहाँ पैर गर्म हो जाते हैं। पानीको अग्नि स्पर्श नहीं करती और अग्नि हो वहाँ पानी गर्म हो जाता है! कर्म जीवको छूते नहीं हैं और कर्म हों वहाँ जीवको विकार होता है! अहाहा! वह द्रव्यका अपना चमत्कारिक स्वभाव है; परन्तु उपादानको नहीं देखता और निमित्त पर दृष्टि पड़ी है; इसलिये निमित्तसे उपादानमें कार्य होनेका भ्रम हो गया है। एक द्रव्य अन्य द्रव्यमें प्रविष्ट नहीं हो सकता, बाहर ही लौटता है, वह अन्य द्रव्यको क्या करेगा?—यह सिद्धांत अंतरमें बैठ जाये तो भ्रम टूट जाये और दृष्टि स्वोन्मुख हो जाये। ६४९.

❁ प्रभु! तू कहाँ है उसकी तुझे खबर नहीं है। बाहर खो गया है। जहाँ है वहाँ आया नहीं और जहाँ तू नहीं है वहाँ आकर्षित हो गया। रुपया–पैसा आदि बाह्य वस्तुमें विस्मय हुआ, परन्तु जिसका वर्णन केवली परमात्मा भी पूरा नहीं कर सके ऐसे भगवत्स्वरूप निज परमात्माका विस्मय नहीं हुआ, महिमा नहीं आयी और स्त्री–पुत्र–प्रतिष्ठा आदिमें आकर्षित हो गया। भाई! तुझे कल्याण करना हो तो सर्वप्रथम आत्माको जान। एक समयकी शुभाशुभभावकी पर्याय वह तो विकृतभाव है और भगवान आत्मा अविकृतस्वरूप है। दृष्टिको अंतरमें ले जाना, जहाँ भगवान आत्मा है वहाँ पहुँचना। जैसे–रात्रिको सोते समय देखे कि एक पुत्रीका बिस्तर खाली है तो चिन्तामें पड़ जाता है कि लडकी क्यों अभी तक नहीं आयी? और घन्टा–आधा घन्टा देर हो जाये तो ढूँढ़ने लग जाता है; तो भाई! अपने इस आत्माको ढूँढ़नेका प्रयत्न क्यों नहीं करता? ६५०.

www.vitragvani.com

❀ इसे सुननेकी पात्रता होना चाहिये। श्री पुरुषार्थसिद्धि-उपायकी गाथा ७४में कहा है कि जिनवाणीको श्रवण करनेकी पात्रतावालेको त्रस जीवोंका आहार नहीं होता। मधु, मदिरा, दो घड़ीके बादका मक्खन, मांस और पाँच उदम्बर फलोंका आहार नहीं होता। ऐसा आहार हो वह यह बात सुननेका भी पात्र नहीं है। वास्तवमें तो रात्रिभोजनमें भी त्रसहिंसा होती है। त्रस जीवोंका आहार यह बात सुननेवालोंको नहीं होता भाई! रात्रिभोजन भी नहीं होता। जिसमें त्रस जीव मरें ऐसा मांस जैसा आहार यह सुननेवालेको नहीं होता भाई! इस तत्त्वको श्रवण करने योग्य हो तो भाई! जिसमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति हो वह आहार नहीं लेना। त्रस जीव उत्पन्न हो ऐसे अचार–मुरब्बे आदि भी नहीं खाना चाहिये। इन्द्र जिसका श्रवण करते हैं ऐसी परमात्माकी उत्कृष्ट वाणी सुननेवालेको त्रसकी उत्पत्तिवाला आहार नहीं होता। बातें बड़ी–बड़ी करे और त्रसका आहार हो अरेरे! भले ही वह धर्म नहीं है, वह हेय है, परन्तु यह सुननेवालेको त्रसका आहार नहीं होता। यह पहलेमें पहली पात्रता है ऐसा श्री पुरुषार्थसिद्धि-उपायकी गाथा ६१ तथा ७४में कहा है। ६५१.

❀ राजकुमार–चक्रवर्तीके पुत्र–पूर्ण सुख-सुविधाओंमें जिनका पालन-पोषण हुआ हो, वे भी जब सम्यग्दर्शन सहित आत्माका विशेष अनुभव करनेके लिये वनमें जाते हैं तब कहते हैं–माता! मुझे कहीं अच्छा नहीं लगता, मुझे जहाँ अच्छा लगता है वहाँ–अपने स्वरूपमें–मैं जाना चाहता हूँ। मेरा नाथ–भगवान आत्मा–अतीन्द्रिय आनन्दसे परिपूर्ण है, उसमें आवरण, अशुद्धि या अपूर्णता नहीं है। मेरा ज्ञायक प्रभु पूर्णानन्दका नाथ है, उसके आनन्दको लूटनेके लिये–अनुभवनेके लिये मैं तो जाता हूँ।' अहाहा! मुनिपना तो ऐसा है भाई! ६५२.

❀ यहाँ आचार्यदेव करुणापूर्वक संबोधते हैं कि—रे अंध जीव! तू स्वयं शुद्ध परमानन्द चैतन्यमूर्ति है, उसे तो तू देखता नहीं है और दया-दान-व्रत-तपादि पुण्यभाव अथवा हिंसा-झूठ आदि पापभाव और उनके फलरूप अनुकूल-प्रतिकूल सामग्रीमें मूर्च्छित होकर क्यों पड़ा है? अमृतस्वरूप भगवान ऐसा तू इस मृत कलेवरमें मूर्च्छित हो गया है। रे अंध! जो जानने योग्य है ऐसे ज्ञाताको तू नहीं देखता, जो कि तेरा स्वपद है, और जो अपद है–जो सर्वथा तेरा नहीं है–ऐसे चार गतिरूप मनुष्यादि पर्यायें, रागादि अशुद्धभाव तथा इन्द्रियविषयजनित सुख-दुःखकी कल्पनाको अपना मानकर तू अपने चैतन्यस्वरूपको घायल कर रहा है, परन्तु वह तेरा रक्षण नहीं है, तेरा लक्षण नहीं है, तेरा स्थान नहीं है, वह तेरा

www.vitragvani.com

मार्ग नहीं है, इसलिये उस मार्ग पर न जा, न जा, भाई! वह तुझे घायल कर देगा, इसलिये वहाँसे लौट आ, और इस मार्ग पर आजा! अनित्यमेंसे हट जा, हट जा, और जहाँ नित्यानंद प्रभु है वहाँ आजा, आजा, तुझे शान्ति होगी भाई! ६५३.

❀ संत, शास्त्र और सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि सर्व प्रथम आत्माको जानो, अनुभव करो, यह बात ही जिसे नहीं रुचती, और दूसरा कुछ करना चाहिये ऐसा मानता है वह देव-शास्त्र-गुरुका अनादर करता है। ६५४.

❀ श्रोता :—आत्माकी कैसी लगन लगना चाहिये कि छह मासमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाये?

पूज्य गुरुदेव :—ज्ञायक...ज्ञायक....ज्ञायककी लगन लगना चाहिये। ज्ञायककी धून चढ़े तो छह मासमें कार्य हो जाये और उत्कृष्ट लगन लगे तो अन्तर्मुहूर्तमें हो सकता है। ६५५.

❀ जिस प्रकार मिट्टीके कोरे बर्तनमें पानीकी बुँदें गिरने पर वह पानी चुस जाता है, दिखायी नहीं देता, परन्तु अधिक पानी गिरने पर वह बाहर झलकने लगता है; उसी प्रकार यह परमात्मतत्त्वकी बात सुन-सुनकर मैं ज्ञायक हूँ...ज्ञायक हूँ...ऐसे दृढ़ संस्कार अंतरमें डाले तो मिथ्यात्वका अभाव होनेके संस्कार बढ़ते जाते हैं। शुभभावसे मिथ्यात्वका रस भव्य-अभव्यको अनंतबार मन्द पड़ा है; परन्तु इन ज्ञायकके संस्कारोंसे मिथ्यात्वका अभाव होनेके संस्कार पडें, पश्चात् एकदम स्वभावका आश्रय लेने पर, स्वानुभव होनेसे मिथ्यात्वका अभाव होता है। ६५६.

❀ श्रोता :—बहुत समयसे तत्त्वका अभ्यास करने पर भी आत्मा क्यों प्राप्त नहीं होता?

पूज्य गुरुदेव :—आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ है, उसके अतीन्द्रिय आनन्दकी लालसा जागृत हो, आत्माके सिवा कहीं मिठास न लगे, जगतके पदार्थोंका रस नीरस हो जाये, सांसारिक रागका रस उड़ जाये, अहो! जिसकी इतनी-इतनी प्रशंसा होती है वह आत्मा अनंतानंत गुणोंका सागर है कौन? ऐसा आश्चर्य हो, उसकी तीव्र लगन लगे, उसकी धून चढ़े उसे आत्मा प्राप्त होगा ही, नहीं हो ऐसा हो ही नहीं सकता। जितना कारण दे उतना कार्य आता है। कारण दिये बिना कार्य नहीं आता। कारणकी कमीके कारण कार्य नहीं आता। अंतरसे आत्माके आनन्दस्वरूपकी लगन लगे, लालसा जागृत हो, स्वप्नमें भी वही दिखायी दे, उसे आत्मा अवश्य प्राप्त होगा। ६५७.

www.vitragvani.com

❁ एक समयकी ज्ञानपर्याय अनंत द्रव्योंको, अंत रहित अनंत क्षेत्रको, अंत रहित अनंतकालको तथा अंत रहित अनंतानंत गुणोंको जाने उस पर्यायकी शक्ति कितनी? उस पर्यायका सामर्थ्य कितना?....उसका आश्चर्य–विस्मय लगे तो विकल्प टूटकर निर्विकल्पता हो ही जाये। अहाहा! द्रव्यका स्वभाव अलौकिक, क्षेत्रका स्वभाव अलौकिक, कालस्वभाव अलौकिक, भावस्वभाव अलौकिक, वस्तु ऐसे अलौकिक स्वभाववाली है। वस्तुका स्वभाव आश्चर्यकारी है। वह एक समयकी सर्वज्ञपर्यायमें आ जाती है वह आश्चर्य विस्मयता है। जो जाना वह वाणीमें आया यह विस्मयता है। ऐसी अपनी प्रभुताका स्वीकार हो उसके अज्ञान एवं राग–द्वेष रहें वह हो ही नहीं सकता। ६५८.

❁ आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट अपना कार्य करना है। स्वभावमें हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है; हठसे, जल्दबाजीसे, अधैर्यसे मार्ग हाथ नहीं आता। सहज मार्गको प्राप्त करनेके लिये धैर्य तथा विवेक चाहिये। ऋषभदेव भगवान जैसेको तेरासी लाख पूर्व तक चारित्रदशा नहीं थी और भरत चक्रवर्ती जैसेको भी सतत्तर लाख पूर्व राज्यपद तथा छह लाख पूर्व चक्रवर्तीपद था। वे जानते थे कि भीतर स्वरूपमें अवगाहनरूप एकाग्रताके चारित्रका पुरुषार्थ नहीं है इसलिये हठ नहीं करते थे। कितनोंको ऐसा लगता है कि सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु चारित्र धारण न करे तो किस कामका? किन्तु भाई, भीतर स्वभावमें हठ नहीं चलती, सहज पुरुषार्थसे अंतरमें पहुँचा जाता है। यह बात समझने योग्य है। ६५९.

❁ जैसे–कुत्तेके कानमें कीड़े पडें और उसका लक्ष बारम्बार वहीं जाता रहता है, वैसे ही जिसे आत्मा प्राप्त करना है उसका लक्ष बारम्बार आत्मसन्मुख जाता रहता है। आत्माकी धुन लगी रहती है। दूसरी धुन तो अनंतकालसे चढी हुई है, तो एक बार आत्माकी धुन लगा! और छह मास तक प्रयत्न कर! निरन्तर अंतर्मुखताका प्रयत्न करेगा तो अवश्य तुझे आत्माकी प्राप्ति होगी। ६६०.

❁ भाई! चैतन्यतत्त्व ज्ञान-आनन्दादि अनन्त गुणरत्नोंका अद्भुत भण्डार है। उसकी तो क्या बात करें! वाणी कितना काम करेगी भाई! वाणी तो जड़ है, उसे खबर नहीं है कि यह महिमावंत पदार्थ क्या है। क्या भगवानकी वाणीको पता है कि यह आत्मा कैसा है? वाणीसे पार ऐसे निज चैतन्यप्रभुकी अंतरसे अपूर्व महिमा लाकर पहिचान करना चाहिये। जन्म–मरण रहित होनेके लिये करना तो यही है। अंतरंग प्रतीतिपूर्वक चैतन्यकी

www.vitragvani.com

महिमा करे तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा तथा जन्म-मरणका अंत आयेगा—ऐसा भगवान कहते हैं, वही यह वाणी है। ६६१.

❀ रागादि पर परिणति परघर है, दुःखका स्थान है। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द ऐसा एक-एक गुण पूर्ण, ऐसे अनंत गुणोंका पूर्णरूप–निज चैतन्यगृह वही विश्रान्तिका स्थान है। विश्रान्तिगृह भगवान आनन्दकन्दमें है; वह तो अतीन्द्रिय आनन्दका समूह है। प्रभु! इन्द्रियविषयोंमें जो आनन्द लगता है, अच्छा लगता है, वह कल्पना तो भ्रम और दुःख है। अहाहा! स्वयं आनन्दका धाम है न! दुःखकी थकान उतारनेके लिये विश्रान्तिगृह तो निज आत्मा ही है। अहाहा! ऐसा उपदेश है। ६६२.

❀ जानना और देखना जिसका सहज स्वभाव है ऐसा आत्मा स्वयं ज्ञाता, ज्ञायक....ज्ञायक....ज्ञायक, तैरता हुआ भिन्न पदार्थ है। समयसारकी ३१वीं गाथाकी टीकामें ध्रुव आत्माको राग और पर्यायसे भिन्न, अधिक, पृथक्, तैरता हुआ कहा है। उसे रागके साथ कहीं मेल नहीं है। वह तो शुभाशुभके राग रहित, अनंत गुणोंके पहलोंसे भरा हुआ चैतन्यहीरा है। अहा! यह तो जिसे कल्याणकी भावना हो उसकी बात है। भाई! जीव ज्योंका त्यों चौरासी लाख योनिके अवतारोंमें भटक रहा है। करोड़पति मानते हैं कि हम सुखी हैं; वे सुखी नहीं किन्तु आत्माको जान बिना महादुःखी हैं। वे धंधेकी ममताके परिणाममें मरकर नरकमें या पशुमें उत्पन्न होंगे, क्योंकि शुभ या अशुभभावोंका फल चार गति हैं। शुद्धभावका फल मोक्ष है। शुभाशुभ रागसे भिन्न, तैरतेका तैरता, अंतरंग ज्ञायकभाव है, उसका उपयोग करना वह शुद्धोपयोग है। ६६३.

❀ द्रव्यदृष्टि–द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यवस्तु, भगवान ज्ञायकपदार्थ; दृष्टि अर्थात् ध्रुव ज्ञायकप्रभुका आश्रय करनेवाली अपने श्रद्धागुणकी वर्तमान निर्मल पर्याय;—सर्व प्रकारकी पर्यायको, विभाव पर्याय तथा स्वभाव पर्यायको, दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्य ध्रुव ज्ञायकस्वभावको ग्रहण करता है। अहा! यह तो मंत्र है प्रभु! यह कोई कथा–कहानी नहीं है। जीव अनादिकालसे दुःखी-दुःखी हो रहा है। किसीको फाँसी पर चढ़ाते हैं, वहाँ जब तक जीव न निकले तब तक कैसी–कितनी पीड़ा होगी? भाई! अनादिकालसे जीव रागके साथकी एकत्वबुद्धिरूप फाँसीसे दुःखी हो रहा है, उसकी उसे खबर नहीं है। दया–दानादिका राग भी मलिनता है। रागरूप मलिनताको अज्ञानी जीव अपना स्वभाव मानता है; परन्तु भाई! मलिनता अच्छी नहीं लगती, टिकती नहीं है,

www.vitragvani.com

इसलिये वह भगवान आत्माका स्वभाव नहीं है। जिसे मलिनताका प्रेम है उसने निज अखण्डानन्द प्रभुको फाँसी दी है—मिथ्याश्रद्धारूप भावमरण किया है। उससे छूटना हो, विभावसे छूटकर शाश्वत परमानन्दस्वरूप मुक्तदशा प्राप्त करना हो तो चैतन्यके अभेद ध्रुवस्वभावका आश्रय कर। ६६४.

❁ आत्मा उपशमरसका समुद्र है, अकषाय स्वभावकी मूर्ति है, वीतराग स्वभावकी मूर्ति है। वह किसी काल दया–दानादि रागरूप नहीं हो सकता। इसलिये तू सर्व प्रकारसे प्रसन्न हो कि मैं स्वयं महा आनन्दका नाथ हूँ; अनादिसे ज्योंकी त्यों ज्ञानप्रकाशकी मूर्ति हूँ; तू कभी रागरूप हुआ ही नहीं। तू सदा ज्ञानोपयोगरूप ही रहा है। चैतन्यप्रकाशरूप ही सदा रहा है। चैतन्यप्रकाशकी जगमग ज्योतिरूप ही रहता हुआ तू कभी रागके अंधकाररूप हुआ ही नहीं। इसलिये सर्व प्रकारसे एकबार प्रसन्न हो। रागके अनुभवमें पड़ा है उसे छोड़कर चैतन्य-आनन्दके अनुभवमें आजा। अपने आत्मस्वभावके अवलोकन हेतु एकबार सर्व प्रकारसे प्रसन्नतापूर्वक अपने वीर्यको उछाल, तुझे आनन्दका लाभ होगा। ६६५.

❁ भगवान आत्माको शुद्धद्रव्यकी दृष्टिसे देखो तो तेरा द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध है, जिसमें राग और एक समयकी पर्याय भी नहीं है, जो बिना तराशा हीरा है अर्थात् राग और विकल्पसे रहित टंकोत्कीर्ण भगवान आत्मा है। अनंत गुणोंका अमूर्तिक पदार्थ है, ज्ञायकस्वभावी है, ज्ञाता...ज्ञाता....ज्ञाता जिसका स्वभाव है वहाँ मति स्थिर करना। वीतरागी ज्ञायकस्वभाव कि जिसमें देव-शास्त्र-गुरुका राग भी नहीं है, शरीर-मन-वाणी भी जिसमें नहीं है, ऐसा सदा आनन्दकन्द प्रभु है। मतिको वहाँ स्थिर कर तो तेरा कल्याण होगा। इसके बिना कल्याण नहीं हो सकता। ६६६.

❁ जिस प्रकार हाथी लड्डू आदि स्वादिष्ट आहार और घासको साथ मिलाकर खाता हुआ उनकी भिन्नताको न जानकर घासके स्वादका अनुभव करता है, उसी प्रकार तू सुन्दर चैतन्यस्वभावको राग सहित मानता हुआ उन दोनोंकी भिन्नताके अभावके कारण रागादि कुरूप भावोंका ही अनुभव कर रहा है! इसलिये तू पशु समान है और उसके फलमें तू पशु होगा। इसलिये हे दुरात्मन! तू रागका आस्वाद छोड़...छोड़। ६६७.

❁ अहो! क्षणमें मरना है और ममताका पार नहीं! ६६८.

❁ परसे एकत्व एक ही अनादिकालीन रोग है और उसीका उसे दुःख है। परसे

www.vitragvani.com

विभक्त–भेदविज्ञान वह एक ही उपाय है। बस, पूरे समयसार शास्त्रमें प्रारम्भसे अंत तक यह एक ही बात है। ६६९.

❀ विद्यमान नहीं है तथापि भूत-भविष्यकी पर्यायें ज्ञानमें सीधी ज्ञात होती हैं। 'हैं' इस प्रकार सीधी ज्ञानमें ज्ञात होती हैं। प्रभु! अपने चैतन्यस्वभावकी पर्यायका स्वभाव तो देख! वर्तमानमें जो पर्याय होती है उसे जानता है ऐसा नहीं परन्तु भविष्यकी पर्यायोंको वर्तमानमें प्रत्यक्ष जानता है। अहाहा! ऐसे केवलज्ञानकी पर्यायका निर्णय करने जाये उसका लक्ष द्रव्यस्वभावकी ओर ही जाता है, तभी उसका निर्णय होता है। ६७०.

❀ श्री समयसारकी छठवीं गाथामें ज्ञायक कहा, ग्यारहवीं गाथामें भूतार्थ कहा, उसीको नियमसारमें शुद्धभाव कहा है। पर्यायमात्रको बहिर्तत्त्व कहकर परद्रव्य कहकर हेय कहा है। मुनिराज परद्रव्यसे पराङ्मुख हैं तथा स्वद्रव्यके सन्मुख हैं। उन्होंने पर्यायमात्रको परद्रव्य कहकर उससे पराङ्मुख हैं ऐसा कहा। परम स्वभावी ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, भूतार्थभाव, परमपारिणामिकभाव, जोकि पर्यायका स्पर्श नहीं करता, क्षायिक भाव हो परन्तु वह व्यक्त है उसे अव्यक्त द्रव्य स्पर्शता नहीं है, इस कारण पर्यायमात्र द्रव्यमें है ही नहीं। सम्यग्दृष्टिका ध्येय जो ध्रुव-द्रव्यस्वभाव, उसमें उदयादि चारों भाव नहीं हैं। एक अपेक्षासे जयधवलमें रागादिको पारिणामिकभाव कहा है, परन्तु परमपारिणामिकभाव तो उससे रहित है। ६७१.

❀ आत्माको पुण्य–पापादि अनुभवमें आनेसे वह आत्मा अनेकरूप पर्यायके साथ मिश्रितरूपसे अनुभवमें आ रहा है। रागकी विकल्पवृत्ति और भगवान आत्मा यह दो अनादिसे मिश्रितरूपसे अनुभवमें आ रहे हैं। इसलिये अब क्या करना?–कि राग बंधलक्षण है और आत्मा अबंधस्वरूप है–ऐसे भिन्न-भिन्न लक्षण द्वारा सर्व प्रकारसे भेदज्ञान द्वारा 'यह आत्मा ही मैं हूँ'—ऐसा अनुभव करनेसे मोक्षमार्गका प्रारंभ होता है। ६७२.

❀ भेदको असत्यार्थ ही कहना चाहिये; किस प्रकार?–कि अभेदकी दृष्टिमें भेद दिखायी नहीं देता इसलिये असत्यार्थ कहना चाहिये। परन्तु उससे पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं है। मोक्ष और मोक्षमार्ग तो पर्याय है। नित्य एकरूप द्रव्यकी दृष्टि करनेसे दृष्टिमें भेद दिखायी नहीं देता, इसलिये दृष्टिमें भेद अविद्यमान होनेसे झूठा है; परन्तु भेद नहीं है ऐसा नहीं समझना। त्रैकालिकको अभेददृष्टिसे देखने पर उसकी दृष्टिमें भेद दिखायी नहीं देता, इसलिये भेद और पर्याय झूठे हैं; परन्तु पर्याय और भेद हैं ही नहीं ऐसा

www.vitragvani.com

नहीं समझना। क्योंकि त्रैकालिक तो कूटस्थ है, कार्य पर्यायमें है, निर्णय करनेवाली तो वर्तमान पर्याय है। ६७३.

❀ यह आत्मा कैसा है?–कि परमात्मस्वरूप भगवान है जोकि समस्त जगतका–स्व और परका प्रकाशक है, ज्ञाता है, ज्ञातृत्वका पुँज है। आत्मा तीनकाल, तीनलोक, अनंत आत्मा तथा अनंत परमाणु, अनंत सिद्ध तथा अनंत निगोदके जीवोंको जाननेवाला है, प्रकाशक है। भीतर जो राग आता है–होता है उसका प्रकाशक है। समस्त विश्वका प्रकाशक है; इसलिये आत्मा विश्वसमय है। सर्व पदार्थोंको–विश्वको प्रकाशनेवाला विश्वसमय भगवान आत्मा है। ६७४.

❀ ज्ञेय सो मैं हूँ, इस प्रकार ज्ञेय-ज्ञायककी संकर–खीचड़ी बनायी है। ज्ञेय और ज्ञायककी एकत्वपनेकी बुद्धि, संयोगबुद्धि, संकरबुद्धि वह मिथ्यात्व है। भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप है और उसके सिवा द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय तथा भगवान और भगवानकी वाणी आदि इन्द्रियविषय परज्ञेय हैं। अपने ज्ञायक अतीन्द्रिय स्वभावके सिवा परको इन्द्रिय कहा गया है। अन्य प्रकारसे कहें तो भगवान आत्माके सिवा सर्व पर अजीव हैं। इस ज्ञायक जीवकी अपेक्षासे वे अजीव हैं। यह जीव नहीं हैं इस अपेक्षासे अजीव हैं। उन दोकी एकताके दोषका निराकरण करके भगवान आत्माके सन्मुख होकर उसमें एकाग्रता करना वह तीर्थंकर केवलीकी निश्चयस्तुति है। तीर्थंकर केवलीकी अर्थात् आत्माकी निश्चयस्तुति है। ६७५.

❀ श्रोता :—सम्यग्दर्शन हेतु विशेष प्रकारकी पात्रताका लक्षण क्या?

पूज्य गुरुदेव :—उसे अपने आत्माका हित करनेके लिये अंतरसे सच्ची अभिलाषा होती है, आत्माको प्राप्त करनेकी लालसा होती है, आवश्यकता होती है, सच्ची आवश्यकता हो वह कहीं रुके बिना अपना कार्य करता ही है। ६७६.

❀ ग्राह्य-ग्राहक सम्बन्धकी निकटताके कारण अज्ञानीको परज्ञेयके साथ एकता भासित होती है कि–शास्त्र पढ़े इसलिये ज्ञान हुआ, शास्त्र सुननेसे मुझे ज्ञान हुआ। इसलिये कहता है कि ज्ञेयसे मुझे ज्ञान हुआ, वह भ्रमणा छोड़ दे। वाणीसे ज्ञान होता है वह भ्रमणा छोड़ दे। ज्ञानके क्षयोपशम द्वारा–भावेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होनेवाले इन्द्रियविषयोंको, भावेन्द्रिय या निमित्तकी अपेक्षा बिना अपने चैतन्यस्वभावका स्वयमेव अनुभवमें आता, ज्ञेयोंके सम्बन्ध रहित जो असंगपना, उसके द्वारा सर्वथा भिन्न करके इन्द्रियविषयोंका जीतना होता है। ६७७.

❀ श्रोता :—जीवकी पर्याय स्वकालमें ही हो तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेव :—जीवकी पर्याय स्वकालमें स्वतंत्र परिणमती है और वह क्रमबद्ध ही है ऐसा निर्णय करे वह अकर्ता होता है और अकर्ता हुआ वही पुरुषार्थ है। अकर्तापना ज्ञाता-द्रष्टा स्वभावके आश्रयसे होता है उसमें स्वतंत्र पुरुषार्थ आता है। क्रमबद्धका निर्णय स्वभावसन्मुखताके अनंत पुरुषार्थपूर्वक ही होता है। ६७८.

❁ भाई, तू परसे तो निवृत्त ही है, तो परसे निवृत्त हूँ ऐसी दृष्टि करके अपनेमें बैठ। चौदह ब्रह्मांडमें जहाँ बैठा हो वहाँ निवृत्त ही है, तेरा और परका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी व्यवहारसे है, वास्तवमें तो वह भी नहीं है। चैतन्य तो सारे जगतको न गिने ऐसा प्रभु है उसे दृष्टिमें ले। यह करना है। ६७९.

❁ समयसार–सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारका मंगलाचरण करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि आत्माका द्रव्यस्वभाव शुद्ध-शुद्ध है अर्थात् अत्यन्त शुद्ध है; क्योंकि परद्रव्यसे भिन्न होनेके कारण शुद्ध है और रागसे भी भिन्न होनेके कारण शुद्ध है। बंध और मोक्षके विकल्पोंसे दूरीभूत है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तककी समस्त पर्यायोंसे आत्मस्वभाव अत्यन्त दूर है, बहुत दूर है, इसलिये आत्मस्वभाव शुद्ध-शुद्ध है। ६८०.

❁ यह तत्त्वकी बात ऊपरी मनसे सुन लेनेसे नहीं बैठ सकती, उसके लिये अभ्यास चाहिये।

श्रोता :—अभ्यास यानी क्या करना?

पूज्य गुरुदेव :—शास्त्र-स्वाध्याय, श्रवण, सत्समागम करना चाहिये।

श्रोता :—वह सब अभ्यास सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये तो अकिंचित्कर है न?

पूज्य गुरुदेव :—भले ही सम्यग्दर्शन आत्माके लक्षसे ही होता है, तथापि स्वाध्याय, श्रवण, सत्समागम आदिका विकल्प आता ही है; भले ही उसमें परलक्षी ज्ञान निर्मल होता है। शास्त्रमें अनेक स्थानों पर आता है कि आगमका अभ्यास करना, स्वके लक्षसे आगमका अभ्यास करना चाहिये। जिसे आत्माकी आवश्यकता हो उसे आत्मा बतलानेवाले ऐसे देव-शास्त्र-गुरुके समागमका विकल्प आता ही है। ६८१.

❁ अरेरे! बाहरके उत्साहमें आत्मशक्तिका घात करता है। आत्माको घायल करता है। प्रभु! एकबार सुन तो सही! अनंत तीर्थंकर और अनंत केवली जो कहते आये हैं वही यह बात है। भाई! तू कौन है? कितना है?–अनंत शक्तिका स्वामी ज्ञायक प्रभु

www.vitragvani.com

है, उसे अनुभवमें लेकर अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव करना वह निर्जरा है। पूर्णानन्दके नाथको ध्येय बनाकर आनन्दका अनुभव कर, यही करना है, उसे करनेके लिये निवृत्ति लेना पड़ेगी। श्रीमद् राजचंद्र तो कहते हैं कि मुमुक्षुको आजीविका मिलती हो तो विशेष प्रवृत्ति नहीं करना चाहिये। करने जैसा तो यह है। अरे! चौरासी लाख योनियोंके अवतारोंमें कहीं पता नहीं चलेगा। उस दुःखसे छूटनेका यही मार्ग है, यही करने योग्य है। अरे यह भव चला जा रहा है! यह अमूल्य समय यों ही व्यर्थ चला जाता है। भाई! आयु पूर्ण होने पर क्या होगा?—इसलिये यह कर लेने जैसा है, इसे आज ही कर ले। ६८२.

❁ प्रभु! तू रागमें विमोहित होकर पर्यायमें जो अकेलेपनेरूप भाव प्रगट हैं तद्रूप अपनेको मान रहा है–अनुभवता है, और जिसमें अनंतानंत शक्तियाँ अनंत सामर्थ्यवान हैं ऐसे प्रभुके समक्ष नहीं देखता। ज्ञायकस्वरूप ध्रुव तो एकरूप है परन्तु उसे भूलकर, प्रगट पर्यायमें जो शुभाशुभभाव हैं उन्हें तू अनुभवता है इसलिये परिभ्रमण नहीं मिटता। ६८३.

❁ द्रव्य-गुण-पर्यायमें व्याप्त होने पर भी शुद्धनयसे मात्र त्रैकालिक शुद्धको ही बतलाया है। गुण-पर्यायकी अनेकता होने पर भी शुद्धनयसे एकत्वका निर्णय कराया है। एकत्वका निर्णय कर तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। शुद्धनयसे जो एकत्वका निश्चय कराया वह वस्तु क्या है?—कि पूर्णज्ञानघन वस्तु है। अनंत गुणका पुंज-घन एकरूप है वह शुद्धनयका विषय है और उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है। ६८४.

❁ तू परमात्मास्वरूप है इसलिये जानना–देखना ही तेरा स्वरूप है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी स्वभाववान है, परन्तु उसे न देखकर रागको जाननेमें रुक गया है इसलिये सर्वको जाननेवाले ऐसे अपनेको नहीं जानता। रागमें रुका है–बंधमें अटका है, इसलिये सर्वको सर्व प्रकारसे जाननेवाले ऐसे अपनेको नहीं जानता। सर्वको नहीं जानता ऐसा नहीं कहा, परन्तु सर्वको जाननेवाले ऐसे अपनेको नहीं जानता ऐसा कहा है। ६८५.

❁ आत्माधीन सुख कैसे प्रगट होगा?–कि आत्माको जाननेसे प्रगट होगा। अपनेको जानना छोड़कर बाहरके जानपनेमें जाता है वहाँ जलन होती है। प्रभु अपनेको जाननेसे सुख होगा, परको जाननेसे दुःख। जिसका ज्ञान है उसे जाननेसे सुख होगा। अपने ज्ञानकी पर्यायका स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, इसलिये तेरी पर्यायमें त्रैकालिक भगवान आत्मा ज्ञात होता है परन्तु उसे नहीं देखता और परज्ञेय ज्ञात होते हैं ऐसा देखता है इसलिये पर्यायके धर्मसे विपरीत जाननेके कारण तुझे आत्मा ज्ञात नहीं होता। ६८६.

www.vitragvani.com

❁ स्वभावका सामर्थ्य तुझे दिखायी नहीं दिया और दरिद्रता दिखायी दी है। शास्त्रोंके चाहे जितने ज्ञातृत्वसे भी आत्माका सुख नहीं मिलेगा। आत्मा कौन है वह जाननेसे तुझे सुखकी प्राप्ति होगी, क्योंकि उसमें सुख है। परमें सुख नहीं है इसलिये परको जाननेसे दुःख होगा। रागसे तो दुःख होगा किन्तु परको जाननेसे भी दुःख होगा; क्योंकि परप्रकाशक ज्ञान कब सच्चा हुआ कहा जाता है?–कि जब स्वप्रकाशक ज्ञान प्रगट हो तब। स्वप्रकाशक रहित अकेले परप्रकाशक ज्ञानसे दुःख होगा। राग तो बंधका कारण है, किन्तु धर्मी परप्रकाशक ज्ञानको भी मोक्षमार्ग नहीं मानते। ६८७.

❁ जिस प्रकार सिद्धलोकमें सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं उसी प्रकार इस देहदेवालयमें निज परमात्मा विराजता है और वही उपादेय है। 'परका मैं करूं'–इस ओटमें देहदेवालयमें विराजमान परमात्मा स्वयं अपनेको भासित नहीं होता–दिखता नहीं है। यथार्थ रीतिसे देखे तो अशुचिमय देहदेवालयमें विराजमान देहसे भिन्न महापवित्र प्रभु स्वयं है। देह तो वेदनाकी मूर्ति है, भगवान आत्मा देहकी भाँति अशुचि नहीं है। देह तो हड्डी, मांस, रक्त, वीर्यकी थैली है। ६८८.

❁ शुभराग वह मेरी वस्तु है ऐसा अभ्यास अनादिसे हो गया है। आत्मा करनेवाला और शुभराग उसका कर्म ऐसी कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति अज्ञानके कारण है। अपने स्वरूपको नहीं जानते ऐसे अज्ञानी जीव रागके साथ एकत्वबुद्धि करके 'राग मेरा कर्तव्य है'–ऐसी कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति अज्ञानके कारण कर रहे हैं। रागके साथ एकत्व मान रखा है परन्तु ज्ञायकप्रभु एकरूप नहीं हुआ। रागकी एकत्वबुद्धि वह अज्ञानका अभ्यास है और रागसे भिन्न होकर ज्ञायकका अभ्यास वह धर्मका अभ्यास है–ज्ञानका अभ्यास है। ६८९.

❁ वस्तु अतीन्द्रिय है इसलिये अतीन्द्रिय सुखके स्वादसे ज्ञात हो ऐसी है। परमानन्द परिणति द्वारा अमूर्त ज्ञानमय वस्तुको जान। राग तो विषका स्वाद है, उससे अतीन्द्रिय स्वरूप कैसे जाननेमें आयेगा? भगवान इन्द्रियोंसे ज्ञात हो ऐसा नहीं है; अतीन्द्रिय है अर्थात् अतीन्द्रिय परिणतिसे ज्ञात हो ऐसा है। पर्यायका लक्ष छोड़ दे। सर्व आत्मा आत्मारूपसे साधर्मी ही हैं, कोई विरोधी नहीं है ऐसा जाने उसे बैर-विरोध क्यों होगा? द्रव्यका स्वभाव ही वीतरागभाव है। ६९०.

❁ मैं अभेद हूँ, निर्विकल्प हूँ—इस प्रकार सम्यग्दृष्टि अपने आत्माको जानता है और इस प्रकार सब जीवोंको जानता है। निगोदके जीव भी भगवान आत्मा हैं ऐसा

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि देखता है। मन-वचन-कायासे करना, कराना और ऐसा अनुमोदन करना कि जैसा मैं हूँ वैसा ही सर्व जीव पूर्णानन्दस्वरूप भगवान हैं। सम्यग्दृष्टि जीव सर्व जीवोंको इस प्रकार देखता है। सूक्ष्म निगोदके जीवका जो द्रव्य है वह शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द है ऐसा सम्यग्दृष्टि देखता है। ६९१.

❁ श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि धवलादि सिद्धांतमें कहीं कहा है कि–त्रैकालिक ध्रुववस्तु उत्पाद्–व्यय रहित निष्क्रिय है, उसमें मोक्षके मार्गकी या बंधमार्गकी क्रियाएँ नहीं हैं। द्रव्य है सो अक्रिय है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तम् सत्, वस्तुमें उत्पाद–व्यय रहित जो ध्रुववस्तु है वह अक्रिय है, इसलिये कोई परिणमन, परिवर्तन या मोक्षमार्गकी क्रिया उसमें नहीं है। जो वस्तु है वह निष्क्रिय है, अक्रिय है और जो मोक्षमार्ग है वह क्रिया है। जो ध्रुववस्तु है उस पर दृष्टि डालनेसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप वीतरागी परिणमन है वह निश्चय मोक्षमार्ग है, और वह निश्चय मोक्षमार्ग साधना सो व्यवहार है। ६९२.

❁ पूर्ण स्वभाव, आत्मस्वभाव कैसा है?—कि जैसा सर्वज्ञको व्यक्त हुआ वैसा ही है। ऐसे सत्स्वभावको दृष्टिमें ले तब धर्मका प्रारंभ होता है। संसार-दशामें भी परमात्मा शक्तिरूपसे विराजमान है। तुझे जिस परम सत्ती दृष्टि करना है वह तेरे अंतरमें विद्यमान है। भाई! तुझे सम्यक् अवलोकन करना हो तो भगवानस्वरूप तू स्वयं है उसका स्वीकार कर। मिथ्यात्व–रागद्वेषके कालमें भी जैसा उसका वास्तविक स्वरूप है तदनुसार देखें तो शक्तिरूपसे परमात्मस्वरूपसे विराजमान है। जिस प्रकार लैंडी पीपलकी वर्तमानदशामें चरपराहट कम है और रंगमें काली है, तथापि शक्ति-अपेक्षासे तो पूर्ण चरपराहट तथा हरापन भरा पड़ा है, उसी प्रकार भगवान आत्मा परमात्मस्वरूपमें विराजमान है परन्तु उसे अप्रगट रखकर एक समयकी रागादि पर्यायको प्रगट मान रहा है। बाह्यमें अज्ञानादि हैं परन्तु अंतरमें तो शक्तिरूपसे परमात्मा विराज रहा है। यह तो दशा पलटनेकी बात है। जो दशा दया-दानादिमें पड़ी है उसे अन्तरमें ले जानेकी बात है। मैं पण्डित हूँ, मैं मनुष्य हूँ इत्यादि मान्यताओंने उसे रोक रखा है, वे उसे अंतरमें नहीं जाने देती। अरेरे! उस अज्ञानीको पुण्यफलका मूल्य है परन्तु अपने परिपूर्ण परमात्मस्वरूपका मूल्यांकन नहीं करता। ६९३.

❁ भाई! तू भगवान है न! तेरे भगवानकी यह बात चलती है। तेरे हितकी

www.vitragvani.com

बात है। आत्मामें रागको लाना वह तुझे हानि है, तू भगवानस्वरूप आत्मा है, तू अपनेको रागसे लाभ होना माने–कहे वह हानि है, प्रभु! ज्ञानी तो रागको उपयोगभूमिमें नहीं लाता। निश्चय और व्यवहार साथ होने पर भी ज्ञानी व्यवहारको उपयोगभूमिमें नहीं लाता। धर्मात्मा ध्यानमें जाये और उस काल जो राग शेष है उसे उपयोगभूमिमें नहीं लाता; करता तो नहीं है परन्तु लाता भी नहीं है। धर्मात्माको और व्यवहारको सम्बन्ध नहीं है। यह तो वीतरागी वाणीके अमृत झरने हैं। ६९४.

❁ भगवान आत्मा अपने स्वभावसे प्रत्यक्ष ज्ञात हो ऐसी वस्तु है, परन्तु जो वस्तु ज्ञात होती है वह ज्ञातापर्यायसे कथंचित् भिन्न है; क्योंकि यदि अभिन्न हो तो उस पर्यायका नाश होनेसे द्रव्यका भी नाश हो जाये। मोक्षके कारणरूप मोक्षमार्गकी पर्याय ऐसा यहाँ कहा है, परन्तु वास्तवमें तो मोक्षमार्गकी पर्याय है वह मोक्षके कारणभूत मोक्षमार्गसे प्रगट नहीं होती, क्योंकि उस समयकी मोक्षकी पर्याय षट्कारकोंके परिणमनसे स्वतंत्र उत्पन्न होती है, पूर्वकी मोक्षमार्गपर्यायकी बलजबरीसे उत्पन्न होती है ऐसा नहीं है। परन्तु यहाँ तो (श्री जयसेनाचार्य, समयसार गाथा ३२०की टीका) पर्याय द्रव्यसे कथंचित् भिन्न है वह बात समझाना है, इसलिये मोक्षका कारण त्रैकालिक द्रव्य नहीं है परन्तु मोक्षमार्गकी पर्याय है ऐसा कहा है। मोक्षमार्गकी पर्याय और वस्तु अभिन्न हों तो वस्तु ही नहीं रहेगी, शुद्ध पारिणामिकभावका भी नाश हो जायेगा, परन्तु ऐसा होता नहीं है; क्योंकि सत्पना है वह कहाँ जायेगा? अर्थात् शुद्धपारिणामिक भाव तो अविनश्वर होनेसे उसका नाश नहीं होता और पर्याय नष्ट हो जाती है, इसलिये शुद्ध पर्यायसे द्रव्य कथंचित् भिन्न है। ६९५.

❁ भाई! शरीरके संसर्ग और परसे उत्पन्न होनेवाला विकल्प उसे तू भूल जा। अनंत ज्ञान आदि अनंत शक्तियाँ रागका स्पर्श नहीं करतीं परन्तु एक समयकी पर्यायको भी नहीं छूती—ऐसा अनंत ज्ञानमय एवं परम आनन्दस्वभावी तू है, उसका दृष्टिमें स्वीकार कर। पाँच इन्द्रियोंके प्रति प्रेम है वह आनन्दको गला देता है और शान्तिको जलाता है। ६९६.

❁ आत्मा ज्ञातास्वरूपका पिण्ड है, ज्ञानका समुद्र है, वह ज्ञान शरीरको तो नहीं करता, वाणीको भी नहीं करता, किन्तु भीतर हिंसा–अहिंसादिके जो विकारी भाव होते हैं उन्हें भी ज्ञान करता या वेदता नहीं है। ज्ञानस्वरूप भगवान दया–दानादिके परिणामोंको नहीं करता, क्योंकि विकार वह दुःखरूप है और भगवान आनन्दस्वरूप है; आनन्दस्वरूपी भगवान

www.vitragvani.com

दुःखकी रचना क्यों करेगा? भाई! तेरा स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है; इसलिये जो राग हो उसे जानता-देखता है किन्तु करता नहीं है; करे वह आत्मा नहीं हो सकता। ६९७.

❁ भगवानकी वाणीमें-जिनवचनमें आत्मा ही उपादेय कहा है, अर्थात् क्या?-कि जिनवचनोमें वीतरागताका प्रयोजन है और वीतरागता आत्माके लक्षसे ही प्रगट होती है, इसलिये आत्मा ही उपादेय है ऐसा कहा है। जिनवचनमें आत्मा उपादेय क्यों कहा?—कि निश्चय है वह स्वका आश्रय लेता है और व्यवहार परका आश्रय लेता है और परका आश्रय है वह हेय है; तब उपादेय कौन है?—कि स्वका आश्रय वह उपादेय है; इसलिये जिनवचनमें आत्मा उपादेय कहा है। परकी ओरसे लक्षवाला व्यवहारभाव है वह हेय है और दो नयोंमें विरोध है इसलिये निश्चय-शुद्ध आत्मा उपादेय है-ऐसा जिनवचनमें कहा है। ६९८.

❁ ज्ञान ज्ञेयोंको जानता है कि यह शरीर है इत्यादि; तथापि वे ज्ञेय आत्माको ज्ञान कराते हों ऐसा नहीं है। ज्ञानमें घड़ा ज्ञात हुआ वहाँ वास्तवमें घड़ा ज्ञात नहीं हुआ किन्तु घड़ा सम्बन्धी अपने ज्ञानको जानता है, तथापि उस ज्ञानको घड़ेने नहीं किया है। ज्ञानकी पर्यायका कर्ता ज्ञान अर्थात् आत्मा है, परद्रव्योंका-ज्ञेयोंका वह कार्य नहीं है। भगवानकी दिव्यध्वनि कानोंमें पड़ी इसलिये उन शब्दोंसे वैसा ज्ञान हुआ ऐसा नहीं है। वास्तवमें भगवानकी वाणी-दिव्यध्वनि छूटती है तथापि पूछनेवालेने जो पूछा उसीका उसे ज्ञान हुआ किन्तु वह ज्ञान वाणीके कारण नहीं हुआ है। दिव्यध्वनि उपस्थिति थी, निमित्त था, निमित्त नहीं ऐसा नहीं, किन्तु निमित्त परमें कुछ नहीं करता। वाणी निमित्त होने पर भी वाणीसे ज्ञान हुआ है ऐसा नहीं है। भगवानके दर्शन होने पर यह भगवान हैं ऐसा ज्ञान हुआ, तथापि भगवानके कारण यह भगवान हैं ऐसा ज्ञान नहीं हुआ। ६९९.

❁ भगवान! तुझे एक क्षण भी अपना विचार नहीं है! तू एक क्षणमात्र भी अपना स्मरण नहीं करता और व्यापार-धंधे आदिमें अपना समय गँवा रहा है। महा दुर्लभ ऐसा यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है तथापि यदि इस समय आर्त्त एवं रौद्रध्यानमें लीन रहा हुआ अपने आत्माकी परवाह नहीं करता तो किस भवमें अपने आत्माको संसार समुद्रसे उबारेगा? अनंत भव टालनेके लिये यह भव है, भवका अभाव करनेके लिये यह भव है—ऐसा जानकर हे जीव! तू अपने आत्माका चिन्तवन कर। ७००.

❁ आत्मा वस्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्यायसे है; नई-नई पर्यायें होना वह उसका स्वरूप है, परन्तु वे निमित्तसे हुई हैं ऐसा नहीं है। मैं त्रैकालिक आनन्दस्वरूप हूँ-ऐसा ज्ञान नहीं

www.vitragvani.com

था और ऐसा शब्द सुनकर वह ज्ञान हुआ है, तो कहते हैं कि उस पर्यायका वह काल होनेसे उस प्रकार वह ज्ञान हुआ है। वस्तुस्थिति वास्तवमें इसी प्रकार है। एक परमाणु दूसरे परमाणुको पलट नहीं सकता। एक परमाणु जीवकी पर्यायको नहीं पलट सकता। कुम्हार घड़ा बनाता है ऐसा नहीं है, क्योंकि कुम्हार तो घड़ेके बाहर ही लोटता है, उसने घड़ेका स्पर्श ही नहीं किया तो बनाये किस प्रकार? सचमुच तो जीवमें राग करनेकी शक्ति भी नहीं है, क्योंकि रागको करे ऐसी कोई शक्ति उसमें नहीं है। यदि एक वस्तु दूसरी वस्तुको परिणमित कर सके ऐसा होता तो वस्तुका वस्तुपना ही नहीं रहता। ७०१.

❁ समुद्रमें गहरे तक उतरे उसे मोती मिलते हैं, वैसे ही आत्माकी पर्याय गहराईमें अपने द्रव्यपर जाये उसे अपने भगवानकी प्राप्ति होती है। भाई! तेरी वस्तु मुक्तस्वरूप ही है, अबद्धस्पृष्टस्वरूप है। जो जीव ऐसे अबद्धस्पृष्टस्वरूप अपने आत्माको देखता है उसने समस्त जिनशासनको देख लिया है, जान लिया है। राग वह जिनशासन नहीं है, वीतरागभाव ही जिनशासन है। वीतरागभाव द्वारा जिसने आत्माको देखा उसने समस्त जिनशासनको जान लिया। इसप्रकार सर्वत्र रागसे भिन्नताकी बात ही सिद्ध होती है। ७०२.

❁ भगवान आत्मा स्वयं रागसे भिन्न होकर अपनेको अनुभवनेमें समर्थ हुआ इसलिये अपनेको जाननेसे समस्त परद्रव्यका ज्ञाता होकर शोभित हो रहा है। परद्रव्यकी सत्ताका ज्ञातास्वरूप है, परद्रव्यकी सत्ता तूने नहीं की, उसमें परिवर्तन हो उसका कर्ता तू नहीं है, किन्तु ज्ञाता है। अवधिज्ञान या मनःपर्ययज्ञान भी जैसा है वैसा जानता है, किसीको करता नहीं है। दूसरेके सुख-दुःखको जाननेके स्वभाववाला है, निगोदके अनंत जीवोंको भी जाननेके स्वभाववाला है, परन्तु उनकी दया पालनेके स्वभाववाला नहीं है–ऐसा ही उसका स्वरूप है। ७०३.

❁ मैं चेतन सर्वस्व हूँ उसमें परका ज्ञेयपना नहीं आता। शास्त्र ज्ञेय हैं और उससे ज्ञान हुआ ऐसा तो नहीं है, परन्तु शास्त्र ज्ञेय हैं और मैं उनका ज्ञाता हूँ ऐसा भी नहीं है। परके ज्ञानमात्र वह ज्ञेय मैं नहीं हूँ। छह द्रव्यका ज्ञान हुआ वह छह द्रव्योंके कारण नहीं हुआ है, अपने ही ज्ञानसे पर्याय हुई है, स्व-परप्रकाशक पर्याय उत्पन्न हुई है वह पर्याय ही ज्ञेय है। ७०४.

❁ एकरूप ज्ञायकभाव है उसे आत्मा कहते हैं। ज्ञानी एक ज्ञायकस्वभाव होनेसे अनेक द्रव्य जिसका स्वभाव है ऐसे कर्ता–भोक्तापनेके रागका ज्ञानीको निषेध है। संसारसम्बन्धी

www.vitragvani.com

या शरीरसम्बन्धी अर्थात् कर्ता–भोक्तापनेके रागादिका ज्ञानीको प्रेम नहीं है। जिसे आत्माकी रुचि हुई है उसे वह भाव रुचिकर नहीं लगता। अन्य प्रकारसे कहें तो ज्ञायकभावमें रागादिका अभाव है, नहीं तो ज्ञायकभाव जड़ हो जाये, क्योंकि रागादि अचेतन हैं। रागादिके अभावस्वरूप ज्ञायकभावको ज्ञानीने दृष्टिमें लिया है इसलिये ज्ञायकभावमें जिनका अभाव है ऐसे रागादिका ज्ञानीको राग नहीं होता। ज्ञायकभावको जिसने दृष्टिमें लिया ऐसे ज्ञानीको रागादिका निषेध है। ७०५.

❀ मैं दूसरेको सुखी–दुःखी कर सकता हूँ, मार सकता हूँ, जिला सकता हूँ इत्यादि परवस्तुके प्रति एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वको भगवानने छुड़वाया है। अपने आत्माके सिवा जगतमें जितनी अन्य वस्तुएँ हैं उनसे मुझे लाभ होगा, अथवा मैं उनका कुछ कर सकता हूँ या वे मेरा कुछ कर, सकती हैं–ऐसा एकत्वबुद्धिका जो मिथ्याभाव है वह संसारका महाबीज है, इसलिये जिनेश्वरदेवने उसे त्यागने योग्य कहा है। ७०६.

❀ स्वयं आत्मा, उसके सिवा जितनी वस्तुएँ हैं उनमें एकत्वबुद्धिका अध्यवसाय है उसे छोड़। जगतके सर्व रजकण, आत्मा तथा रागमें एकत्वबुद्धि है वह अध्यवसान है, उसे जिनवरदेवने छुड़वाया है। त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेव कहते है कि तेरे आत्माके सिवा जो भी भिन्न वस्तुएँ हैं उन सर्वकी एकत्वबुद्धिका अध्यवसाय छोड़। ७०७.

❀ मैं रागमय हूँ ऐसा मानता है, इसलिये मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योग-स्वरूप हूँ ऐसा वह मानता है। दूसरेको अपना माननेसे जीवकी परिणति बिगड़ती है। दया–दान–भक्ति–पूजाका शुभराग भले हो, परन्तु उसमें एकत्वबुद्धि होना वह आस्रवका कारण है और उससे भेद करना–पृथक्ता मानना वह संवरका कारण है। ७०८.

❀ मोक्षमार्गकी पर्याय किसलिये भिन्न है? कथंचित् भिन्न कहते हो उसका क्या कारण है?–तो कहते हैं कि–भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य ध्रुव वह भावरूप है और मोक्षमार्गकी पर्याय है वह भावनारूप है। मोक्षमार्गकी पर्याय त्रैकालिक भावरूप नहीं है। मोक्षमार्गकी पर्याय द्रव्यसे कथंचित् भिन्न क्यों है?–कि वह भावनारूप है, वह वर्तमान भावनारूप है किन्तु त्रैकालिक भावनारूप नहीं है। त्रैकालिक पारिणामिकको भाव कहो, पारिणामिक कहो, ध्रुव कहो, सदृश कहो, और यह पर्याय है वह विसदृश है, क्योंकि उत्पन्न-व्ययुक्त द्वन्द्व है। मोक्षका मार्ग भी उत्पन्न-व्ययुक्त है, एक समयमें उत्पन्न होता है और दूसरे समयमें व्यय हो जाता है। भावरूप जो त्रैकालिक भगवान, उसके सन्मुख होकर प्रगट हुई दशा है वह

www.vitragvani.com

भावनारूप है, त्रैकालिक भावरूप नहीं है और शुद्ध पारिणामिकभाव है वह भावनारूप नहीं है इसलिये कथंचित् भिन्न है। ७०९.

❀ शुद्धोपयोग–आनन्दकी दशाका वेदन भी किसी अपेक्षासे अर्थात् वह त्रिकालस्थायी नहीं है उस अपेक्षासे शुद्ध पारिणामिकभावसे भिन्न है। संवर अधिकारमें कहा है कि पुण्य–पापके भाव अर्थात् व्यवहाररत्नत्रयका जितना भाव है वह आत्मामें क्षेत्रसे भिन्न है, भाव तो भिन्न हैं परन्तु उसके प्रदेश भी भिन्न हैं, क्योंकि प्रभु आनन्दका पिण्ड है, उसमेंसे विकार उत्पन्न नहीं होता, इसलिये उसका क्षेत्र त्रैकालिकके क्षेत्रसे भिन्न है। असंख्य प्रदेशी प्रभुमें जो दया–दानके विकल्प उठते हैं वे स्वभावसे तो भिन्न हैं, किन्तु क्षेत्रसे भी भिन्न हैं। चिद्विलासमें तो ऐसा कहा है कि पर्याय पर्यायके कारण है, द्रव्यके कारण नहीं है। मोक्षका मार्ग है वह पर्याय है। उस पर्यायका कर्ता पर्याय, पर्यायका साधन पर्याय, पर्यायका कार्य पर्याय, पर्यायका दान दिया वह पर्याय, पर्यायमेंसे पर्याय होकर पर्यायके आधारसे पर्याय हुई, द्रव्यके कारण पर्याय नहीं हुई है। ७१०.

❀ आनन्दका नाथ प्रभु निज परमात्मद्रव्यसे निश्चय–मोक्षमार्गकी पर्याय कथंचित् भिन्न है, क्योंकि त्रैकालिक तत्त्व नित्यस्थायी है और यह एक समयकी पर्याय क्षणिक है। मोक्षमार्गकी पर्याय है वह क्षणिक संपदा है, परन्तु जहाँ पूर्ण संपदा पड़ी है ऐसे नित्यानन्द प्रभु शुद्धात्मद्रव्यसे मोक्षकी पर्याय–आनन्दके लाभकी पर्याय कथंचित् भिन्न है। मोक्षमार्गकी पर्यायसे मोक्षपर्याय प्राप्त होती है ऐसा कहना वह व्यवहार है। मोक्षकी पर्याय स्वतंत्ररूपसे स्वयं अपनेसे अपनेको प्राप्त करती है। मोक्षमार्गके कारण मोक्षकी पर्याय हो ऐसा कहना वह व्यवहार है। मोक्षमार्गकी वह पर्याय भी द्रव्यसे कथंचित् भिन्न है। ७११.

❀ यदि तुझे आत्मा ही प्राप्त करना हो तो हे जीव! अब विरक्त हो, हठ न कर, व्यर्थके अन्य विकल्पोंसे तुझे क्या लाभ? भगवंत, तू दुःखसे मुक्ति हेतु मिथ्यात्व–रागादि अकार्यसे–व्यर्थके कार्यसे विरक्त हो, वह कोलाहल छोड़ दे। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसे प्राप्त करने हेतु रागादिसे विरक्त हो, क्योंकि वे व्यर्थके कार्य हैं, वह तेरा कार्य नहीं है; इसलिये मिथ्या विकल्प कि जो भगवान आत्माकी प्राप्तिमें विरोध करनेवाले हैं ऐसे मिथ्या विकल्पोंके जालसे बस हो! क्योंकि ऐसे मिथ्या विकल्पोंसे तुझे क्या? व्यर्थके विकल्प अर्थात्?–कि वह तेरा कार्य नहीं है, वह तो पुद्गलका कार्य है, पुद्गलसे हुए वे भाव पुद्गल हैं; वे भगवानके भाव नहीं है, क्योंकि भगवान आत्मा आनन्द

www.vitragvani.com

एवं ज्ञानस्वरूप विराजमान है, वे रागादि भाव उसका स्वरूप नहीं है। पर्यायमें वे भाव हैं, परन्तु वहाँ तुझे नहीं रखना है इसलिये तेरे नहीं हैं ऐसा कहकर तुझे स्वरूपमें ले जानेका प्रयोजन है, इसलिये उन्हें पुद्गलके कहे हैं। ७१२.

❁ अनादिकालसे तू अपनी दुःखकी दशामें रम रहा है। इस आत्माकी वर्तमान दशामें भले ही विकार हो, परन्तु जिसप्रकार लैंडीपीपल रंगमें काली और आकारमें छोटी होनेपर भी स्वभावसे पूरी चरपरी और पूरी हरी है; उसी प्रकार शरीरके प्रमाणमें आकार तथा पर्यायमें मलिनता होनेपर भी तू स्वभावसे परिपूर्ण है, भगवान है। प्रभु! तुझमें पूर्ण परमात्मशक्ति पड़ी है, भीतर अतीन्द्रिय आनन्दका पर्वत खड़ा है। स्वयं समयसारभूत भगवान परमात्मा है, अनंत ज्ञान, अनंत आनन्दस्वरूप पूर्ण परमात्मा है। ७१३.

❁ राजाने प्रसन्न होकर किसी आदमीसे कहा–मेरे भण्ड़ारमें करोड़ों–अरबों स्वर्ण मुद्राएँ हैं, उनमेंसे शाम होनेके पूर्व जितनी बाँध सके बाँधकर ले जा। वह आदमी स्वर्ण मुद्राएँ लेने चल दिया, लेकिन रास्तेमें वेश्याओंका नाच–गान सुननेमें लग गया और ऐसे ही शाम हो गई। राजाके भण्ड़ार तक पहुँचनेसे पूर्व ही भण्डार बन्ध हो गया। उसी प्रकार यहाँ अज्ञानी जीव 'मेरी ज्ञानपर्याय खिली है', 'राग मन्द हुआ है'—ऐसा पर्यायका लक्ष करके अटक गया है, द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि नहीं करता। ७१४.

❁ आत्मा है वह ज्ञानस्वरूप है, वहाँ ज्ञानका अस्तित्व अपने कारण है, अस्तित्वके कारण नहीं है। एक गुणमें अनंत गुणोंका रूप है। एक गुणमें दूसरा गुण नहीं है, एक गुण दूसरे गुणके कारण नहीं है, परन्तु एक गुणमें अनंत गुणोंका रूप है। एक–एक गुणमें अनंत गुणोंका रूप है और ऐसे अनंत गुणोंवाला आत्मा है। ७१५.

❁ वीतरागस्वरूप भगवान है, उसकी प्रतीति वह निश्चय-सम्यक्त्व है। उस प्रतीतिको भी परमात्माकी अपेक्षा नहीं है। पर्यायमात्र स्वतंत्र है। प्रत्येक पर्याय सत् है उसे परका हेतु नहीं होता, सत् अहेतुक होता है, इसलिये निर्मल पर्यायको द्रव्य–गुणकी अपेक्षा नहीं है। ऐसा निर्णय करनेवालेकी दृष्टि कहाँ जायेगी?–कि भूतार्थ द्रव्यपर ही दृष्टि जायेगी, इसलिये भूतार्थके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है ऐसा कहा है। ७१६.

❁ सर्वको जानना–देखना ऐसा जिसका स्वभाव है ऐसे अपने आत्माको ही वह नहीं देखता; क्योंकि बंधदशामें अपने अपराधसे रागमें रुक गया है। सर्वके ज्ञाता ऐसे स्वयंको

www.vitragvani.com

तू नहीं जानता और अन्य जानकारीमें रुक गया है वह तेरा अपना अपराध है। ७१७.

❁ आत्मा और रागकी भिन्नतामें अपना पुरुषार्थ है। रागका या पुण्यका पुरुषार्थ नहीं है परन्तु अपने वीर्यका पुरुषार्थ है। कर्म मार्ग दें तो धर्म हो ऐसा नहीं है। अपने पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकभाव आविर्भूत किया जाता है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है परन्तु उसकी प्रतीतिमें नहीं था वह अब प्रतीतिमें आया, इसलिये आविर्भूत किया गया ऐसा कहा है। ज्ञायकरूपसे ज्ञात नहीं होता था और रागरूप लगता था, वह अब पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकरूप लगा, इसलिये ज्ञायकभाव आविर्भूत हुआ कि जो सहज एक है। ज्ञायकभाव पर्यायमें नहीं आता, परन्तु पर्यायमें ज्ञात होता है। ७१८.

❁ यह बात तो महा भाग्यशाली पुण्यवंत कि जिसे अल्पकालमें अनंतानंत सुखका स्वामी होना है उसके लिये है। ७१९.

❁ गाय, भेंस आदि पशु घास खाकर फिर आरामसे जुगाली करते हैं, उसी प्रकार तत्त्वकी बात सुननेमें आये उसका मंथन करके, अंतरमें जमा–जमाकर जब तक भावभासन न हो तब तक जुगाली करना चाहिये...पर्यायका विश्वास और फिर त्रिकाल सत्ता विश्वास आना चाहिये। ७२०.

❁ बारह अंग और चौदह पूर्वका सार यह है कि ''विभाव और निमित्तकी उपेक्षा तथा पूर्ण स्वभावकी अपेक्षा'' होना चाहिये। इस एक वाक्यमें संपूर्ण सार है। ७२१.

❁ पर्याय जो दृश्य है उसे अदृश्य करके और गुणभेद जो दृश्य है उसे अदृश्य करके तथा द्रव्यको दृश्य करके अनंत तीर्थंकरोंने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, यह एक ही मार्ग है। ७२२.

❁ तेरी पर्यायमें इतनी प्रभुता है कि जिसे 'जानने'के लिये परावलम्बनकी, अरे! इन्द्रियों तथा मनके अवलम्बनकी भी आवश्यकता नहीं है। इन्द्रियाँ और मन हैं इसलिये ज्ञानकी वर्तमान पर्याय जानती है–ऐसा नहीं है। शास्त्रसे जाना कि इन्द्रियाँ और मन हैं। वे 'हैं' ऐसा ज्ञानमें ज्ञात होता है परन्तु ज्ञानको उसके आलम्बन और अपेक्षाकी आवश्यकता नहीं है। वह निरालम्बी ज्ञान जिसका अंश है उस त्रैकालिक ज्ञायकवस्तुमें किसीकी अपेक्षा है ही नहीं। उस त्रैकालिक तत्त्वके अस्तित्व पर जीवने कभी दृष्टि नहीं डाली और मात्र उसकी 'वर्तमान अस्ति' मानता है। ७२३.

www.vitragvani.com

❁ क्या सिंह किसी हिरन या सियारका परिचय करता होगा? जिस प्रकार जंगलमें सिंह निर्भयरूपसे विचरता है, उसी प्रकार तू भी अपने स्वरूपमें, लोकसे सर्वथा एकाकी रहकर विचरण करना। भीतर त्रैकालिक ज्ञायक ध्रुवस्वभाव समस्त लौकिक भावोंसे भिन्न ही है। शरीरका, कर्मका, उदयका या रागका भी जिसे परिचय नहीं है ऐसी वीतराग वस्तु भीतर विद्यमान है। अहा! सर्वज्ञ वीतराग परमात्माकी वाणी वीतरागता उत्पन्न करनेकी शिक्षा देती है। भगवान क्या कहते हैं?–कि तेरी वस्तु वीतरागस्वरूप है, उसका परिचय करेगा तो अंतरमें वीतराग पर्याय प्रगट होगी। ७२४.

❁ स्वयं आत्मा जैसा है वैसी दृष्टि करके उसमें रहना वह प्रयोजनभूत है, बाकी सब मिथ्या है। प्रयोजन तो एक आत्माका ही रखना; परका—पुण्य–पापके भावोंका भी—नहीं। अहा! ऐसी बात है! भगवान आत्मा अनंत ज्ञान एवं आनन्दादि शक्तियोंसे भरपूर परिपूर्ण वस्तु है। समीप ही प्रभु होनेपर भी, वर्तमान पर्याय पर लक्ष होनेसे, उसकी ओर दृष्टि नहीं करता। चैतन्य भगवान यहीं और इतना ही है, उसके स्वभावमें राग–द्वेषादि विभावका प्रवेश नहीं है–इस प्रकार आत्माकी 'अस्ति' सुनकर रखना–यह एक ही प्रयोजन रखना। अशुभसे बचनेके लिये शुभराग आता है परन्तु उसका कोई प्रयोजन नहीं है। ७२५.

❁ विभाव या पर्यायमें रुकना वह मार्ग ही नहीं है। भाई! पर्यायमें क्यों रुक गया है? पर्याय रहित निष्क्रिय तत्त्व–ध्रुवतत्त्व–पर दृष्टि दे न! पर्याय तो ऊपर ही ऊपर तैरती है, भीतर द्रव्यस्वभावमें प्रवेश नहीं करती। भले ही केवलज्ञानकी पर्याय हो तथापि वह ध्रुवस्वभावमें प्रवेश नहीं करती। पर्यायके ऊपर नहीं किन्तु द्रव्यस्वभावपर जोर देना चाहिये। पाँच भावोंमें एक मात्र परमपारिणामिक भाव द्रव्यरूप है और औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तथा औदयिक–यह चार भाव पर्यायरूप हैं। पर्यायकी अवधि तो एक समयकी है; उसमें तू किसलिये रुकता है? भीतर पूर्णानन्दका नाथ भगवान आत्मा विद्यमान है उसे देख न! अपनी रुचि उसमें लगा न! भाई! मार्ग तो ऐसा है। ७२६.

❁ सर्व प्रथम तू अपनेको पहिचान। पहले देव–शास्त्र–गुरुको और फिर आत्माको पहिचान—ऐसा नहीं कहा। तू कौन है? कितना है? कैसा है? कहाँ है? तेरे अस्तित्वमें यह सब ज्ञात होता है, उसका ज्ञाता तू कैसा और कितना है? वह पहले जानकर भेदविज्ञान प्रगट कर। परकी अपेक्षा विना रागसे भिन्न भेदज्ञान करनेकी तेरी शक्ति है।

www.vitragvani.com

उस शक्तिको लक्षमें लेकर रागसे भेदज्ञान कर ऐसा कहा है; परन्तु ऐसा नहीं कहा कि पहले तू देव–गुरुकी भक्ति या बहुमान–सन्मान कर। पहले तू अपना बहुमान–सन्मान करेगा तो तुझे देव–गुरु निमित्त हैं उनका बहुमान–सन्मान सच्चा होगा। ७२७.

❀ कुम्हारका हाथ चलता जाता है और मिट्टीका आकार घड़ेका रूप लेता जाता है; फिर भी कहें कि कुम्हार घड़ेका कर्ता नहीं है तो अज्ञानीको यह बात कैसे बैठेगी? किन्तु भाई! कुम्हार और मिट्टी दोनों तत्त्व भिन्न–भिन्न हैं, एक तत्त्व दूसरे तत्त्वको क्या करेगा? जिस प्रकार द्रव्यका कोई कर्ता नहीं है उसी प्रकार द्रव्यकी पर्यायका भी अन्य कोई कर्ता नहीं है। ७२८.

❀ आत्मा परद्रव्यको कर या भोग नहीं सकता ऐसा जानकर परद्रव्यका कर्ता–भोक्तापना छोड़कर स्वसन्मुख होना है। कर्म विकारका कर्ता नहीं है–ऐसा कहकर कर्मके ओरकी पराधीन दृष्टि छुड़ाना है।

विकारका कर्ता जीव नहीं है परन्तु कर्म है, कर्म व्यापक होकर विकार करता है–ऐसा कहकर एक समयके उपाधिभावसे भेदज्ञान कराके द्रव्यपर दृष्टि कराना है।

विकार उस समयकी योग्यतासे होना था वही हुआ है–ऐसा कहकर एक समयके विकारका लक्ष छुड़ाकर दृष्टिको द्रव्यकी ओर ले गये हैं।

विकार भी क्रमबद्धमें था वह हुआ है उसमें उस क्रमबद्धपर्यायके स्वकालका सत् परिणमन बतलाकर विकारका अकर्तृत्व बतलाकर ज्ञाताकी ओर दृष्टि कराना है।

निर्मल परिणाम भी क्रमबद्ध है–ऐसा बतलाकर शुद्धपर्यायके एक अंशपरसे भी लक्ष छुड़ाकर त्रैकालिक ध्रुवपर लक्ष कराना है।

पर्यायका कर्ता परद्रव्य नहीं है–ऐसा कहकर परद्रव्यसे दृष्टि छुड़ाकर स्वद्रव्योन्मुख किया है।

पर्यायका कर्ता स्वद्रव्य भी नहीं है। पर्याय पर्यायके षट्कारकोंसे स्वतंत्र होती है,–ऐसी पर्यायकी स्वतंत्रता बतलाकर पर्यायके ऊपरका लक्ष छुड़ाकर दृष्टिको द्रव्योन्मुख कराना है।

विकार या निर्मल पर्यायका कर्ता ध्रुवद्रव्य नहीं है परन्तु वह पर्याय ही पर्यायका

www.vitragvani.com

कर्ता है। बंध–मोक्ष परिणामको ध्रुवद्रव्य नहीं करता–ऐसा बतलाकर पर्यायकी सन्मुखता छुड़ाकर ध्रुवकी सन्मुखता कराना है। ७२९.

❀ पुण्य–पाप, दया–दान–पूजा–भक्ति आदिका वेदन करे वह आत्मा नहीं है, जड़ है।–यह पाइंट (आत्मधर्ममें) लिखने जैसे हैं। वाह रे चैतन्य वाह! ७३०.

❀ मुमुक्षु जीव हर्षोल्लासके कार्योमें भी लगते हैं। अरे! सम्यक्त्वी सौधर्म इन्द्र भी भगवानके सामने घुँघरू बाँधकर नृत्य करते हैं! मुमुक्षु जीव भी कि जिसे अंतरकी लगन लगी है वह बाह्यमें आनन्दोल्लासके कार्योमें भाग लेता है, परन्तु साथ ही साथ अंतरकी गहराईमें खटका बना रहता है कि अरे! मैं यह नहीं हूँ....उसे संतोष नहीं होता। ७३१.

❀ स्वयं भगवान होनेपर भी बाह्य संयोगोंसे—स्त्री-पुत्र, धन, मकान, सिनेमा, आदि जड़ वस्तुओंसे—सुखकी भीख माँगता है। तृष्णारूपी तपेदिक हो गया है, उससे पीड़ित होकर इन्द्रियविषयोंसे सुखकी भीख मांगता है। परन्तु प्रतिकूलता, रोग, निर्धनता आदि दुःखके साधन मिलनेसे जैसी आकुलता होती है वैसी ही आकुलता तृष्णारूपी रोगसे होती है। इस जीवने अनंतबार देव, मनुष्य, राजा, आदिके वैभव प्राप्त किये हैं, परन्तु यह तृष्णारोग नहीं मिटा, क्योंकि आत्मरुचिरूपी जलके बिना तृष्णाग्निका शमन नहीं हो सकता। ७३२.

❀ शरीरमें छेदन–भेदन आदि प्रतिकूलता हो वह वास्तवमें दुःख नहीं है, परन्तु संयोगके ओरकी वृत्ति–झुकावसे मानसिक चिन्ता करता है उसका दुःख है। उसीप्रकार स्वर्गमें बाह्य अनुकूलता होती है उससे कहीं सुख नहीं है; वहाँ भी संयोगके ओरकी वृत्ति–झुकाववाला जीव मानसिक चिन्तासे दुःखी ही है। जिसे स्वभावकी दृष्टि नहीं है, राग रहित ज्ञान प्रगट नहीं हुआ है और बाह्य पुण्य तथा पुण्यफलकी मिठास है वह जीव बाह्यमें दूसरोंके पास अपनेसे अधिक ऋद्धिका संयोग देखकर मनमें आकुलतासे दुःखी होता है। उसे समस्त जगतकी ऋद्धिका संयोग प्राप्त करनेकी भावना है। भीतर सारी चैतन्यऋद्धि पड़ी है, उसकी उसे खबर नहीं है इसलिये बाहर अधिक संयोग लेना चाहता है। ७३३.

❀ सर्वज्ञदेवने तेरा परमेश्वरस्वरूप बतलाया है। तेरे स्वरूपमें ज्ञान, आनन्दादि जो अनंत गुण हैं वे आश्चर्यकारी हैं। तू दूसरोंको आश्चर्य, विस्मय, एवं कौतूहलसे देखता है, परन्तु अंतरमें परमात्मा विराजमान है उसके जो आश्चर्यकारी अनंत गुण, एक–एक गुणकी

www.vitragvani.com

अनंत पर्यायें, एक-एक पर्यायकी अनंत शक्ति आदि विस्मयकारी निज वैभवको कुतूहलसे नहीं देखता। अरे भाई! तू प्रभु है। तेरी सर्व शक्तियाँ तो निज प्रभुतासे भरपूर हैं, उसकी तुझे खबर नहीं है। अनन्तानन्त शक्तिसे परिपूर्ण ऐसे अपने अभेद द्रव्यस्वभावपर दृष्टि कर; बाकी सब व्यर्थ है। कितनी उपाधियाँ प्राप्त की? कितने रुपये इकट्ठे किये?— वह कोई बड़ी वस्तु नहीं है। जो वस्तु तुझमें नहीं है उसका तुझे विश्वास है; तुझे रागका विश्वास है, शरीरका विश्वास है, दवाका विश्वास है, किन्तु तुझे अपना विश्वास नहीं है। ७३४.

❁ ध्रुव ज्ञायक सत्त्व जिसका तल है ऐसे प्रभु भगवान आत्मामें वर्तमान पर्यायको गहराईमें ले जाकर त्रैकालिक ध्रुवस्वरूपकी गहराईमेंसे लगन लगाये, उस ओरका पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे। ७३५.

❁ अनादिकालसे आत्माकी लगन लगी ही नहीं है। लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द प्रगट होंगे ही; भीतर ध्रुव पातालमेंसे ज्ञान और आनन्दके झरने अवश्य फूट पड़ेंगे। शास्त्रोंकी पढ़ाई वह कोई ज्ञान नहीं है। अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञानस्वरूपमें एकाग्र होनेपर जो निर्मल ज्ञानधारा फूटे, उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द भी आये, उसे ज्ञान कहा जाता है। अंतरसे लगन लगे तो वह निर्मल ज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुए बिना नहीं रहेगा। ७३६.

❁ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव-यह पाँच परावर्तन जीवको परिभ्रमणके कारण हैं। प्रभु! तेरी—ज्ञायकदेवकी—शरणमें आनेसे उस पंचपरावर्तनके दुःखका अंत आता है। पंचपरावर्तनमें भव और भाव दोनों आ गये। भवमें शुभ और अशुभ दोनों आ गये। वे दोनों कर्मचक्र हैं। प्रभु! भीतर तेरी वस्तु ऐसी है कि उसकी शरणमें आनेसे रागका प्रेम और महिमा छूट जायेगी। प्रभु! अपने स्वभावमें जा तो तेरे परिभ्रमणका अंत आ जायेगा। अपने स्वभावकी शरणमें जानेसे शुभाशुभ भावपरावर्तनका अंत आ जायेगा। ७३७.

❁ अशुद्धताकी पर्याय अपने विपरीत पुरुषार्थके बलसे स्वयं करता है तब सामने निमित्तरूपसे एक परमाणु नहीं होता, किन्तु अनंत कर्म-परमाणु होते हैं। एक डाकूके लिये दो सौ सिपाही लगाना पड़ते हैं वह डाकूकी शक्ति सूचित करता है या सिपाहीकी? उसीप्रकार जीवके एक विभावपरिणामके सामने निमित्तरूपसे अनंत कर्म-परमाणु हैं, वे जीवकी शक्ति सूचित करते हैं या कर्म-परमाणुकी? निमित्तके बलकी बात नहीं है। कर्मका जोर आत्मा पर किंचित् नहीं चलता। निमित्तसे विकार होता है ऐसा है ही नहीं; निमित्तसे हो तो वह स्वयं उपादान

www.vitragvani.com

हो जाये, परन्तु ऐसा तो होता नहीं है। स्वयं भले ही एक है, परन्तु अपनी शक्ति अनंत है। अनन्त शक्तिवान निज ज्ञायकप्रभुकी दृष्टि तथा उसमें स्थिरता करनेसे पर्यायमें रही हुई अशुद्धताका तथा उसमें निमित्तरूप जो अनन्त कर्मपरमाणु थे उनका भी नाश हो जाता है; कर्मकी पर्याय अकर्मरूप हो जाती है। ७३८.

❁ श्री समयसारके चौथे कलशमें कहा है कि—'जिनवचसि रमन्ते'—जो जिनवचनमें रमते हैं वे शीघ्र परमज्योतिरूप निज समयसारको अनुभवते हैं। जिनवचनमें क्या कहा है?–त्रिकाल जिनस्वरूपी ज्ञायकप्रभु कि जिसमें उदयभावका संग नहीं है और व्यवहार या विकल्पकी गंध नहीं है उस जिनवचनमें उपादेयरूप कहा है। सर्व शास्त्रोंमें त्रिकाल सत्लक्षणवाले निज आत्माका—वीतरागस्वरूप निज ज्ञायकभावका—लक्ष करना कहा है। इस वीतरागस्वरूप ज्ञायक आत्माका ही परिचय रखना; क्योंकि प्रभुकी आज्ञा वीतरागता प्रगट करने की है। वीतरागस्वभावका अंशतः आश्रय होनेसे पर्यायमें अंशतः वीतरागता प्रगट होगी और वही वीतरागपर्याय, स्वभावका पूर्ण आश्रय होनेपर, पूर्ण वीतरागताका कारण होगी। ७३९.

❁ स्वभावदृष्टिमें राग नहीं आता इसलिये रागके कार्यको स्वभावसे पृथक् करके उसका कर्ता दृष्टिप्रधान कथनसे पुद्गलकर्मको कहा और ज्ञानप्रधान कथनमें श्री प्रवचनसारके ४७ नयोंके अधिकारमें रागके परिणाम जीवमें होते हैं इसलिये ज्ञानी जीवको रागका कर्ता कहा है। श्री पंचास्तिकाय गाथा ६२में कहा है कि–दया, दान, भक्ति, काम-क्रोधादिके शुभाशुभपरिणाम होते हैं उन्हें कर्मकी तो अपेक्षा नहीं है किन्तु जीवद्रव्यकी अपेक्षा बिना रागादि विकार परिणाम पर्यायके षट्कारकोंकी क्रियासे स्वतंत्र होते हैं। जहाँ जिस विवक्षासे कथन हो वह समझना चाहिये। ७४०.

❁ निश्चयसे परम उपेक्षा संयमवाले मुनिको शुद्धात्माकी आराधनाके अतिरिक्त सब अनाचार है। शास्त्रस्वाध्याय–भक्ति–व्रत–तप–व्यवहाररत्नत्रयका राग आदि सब शुभराग वह अनाचार है। उस समस्त शुभरागकी उपेक्षा है–अपेक्षा नहीं है ऐसे परम उपेक्षा संयमवान मुनिको अतीन्द्रिय आनन्दके सिवा सब अनाचार है। शुद्धात्माकी आराधना, शुद्धात्माकी उपासना, सन्मुखता, एकाग्रताके सिवा सभी अर्थात् व्यवहाररत्नत्रयका समस्त शुभराग वह अनाचार है। भगवन्त परमात्मस्वरूप ही तू है, परन्तु यह बात कैसे बैठे? श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि शुद्धात्माके सिवा समस्त राग अर्थात् हमारी ओरका भी राग

www.vitragvani.com

सब अनाचार है। प्रभु! अनाचार भाव तेरा स्वरूप नहीं है, उसके पक्षसे हट जा। अपनी सेवाके सिवा सब अनाचार है। निजशुद्धात्माकी सन्मुखता ही एक आचार है, एक ही प्रतिक्रमण है। ७४१.

❁ जैसे आकाशमें अग्निकी ज्वालाएँ उठ रही हों तथापि आकाशको उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, उसीप्रकार शरीरमें चाहे जैसे फोड़े हों–चाहे जैसी अवस्था हो तथापि आकाशसमान आत्माको उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ७४२.

❁ अहाहा! कठिन काम है भाई! अंतरमें वैराग्य!....वैराग्य!....यह सब तो बिखर जायेगा। जो बाहरका है वह तुझमें नहीं है और तेरे कारण नहीं आया है। तुझमें भ्रमणा उत्पन्न हुई है, उसका नाश करनेका यह काल है। ७४३.

❁ श्रोता :—शुभरागके परिणामोंसे किंचित् लाभ तो होता होगा?

पूज्य गुरुदेव :—अरे! किंचित् भी लाभ माने तो मेरु जितना महान मिथ्यात्व है। ७४४.

❁ केवलीको जानकर अपना केवलीपना निश्चित् कर–ऐसा भगवानका उपदेश है। स्वभावोन्मुख हो, द्रव्योन्मुखता कर–यह एक ही भगवानका उपदेश है। चारों अनुयोगोंमें यह एक ही बात है। ७४५.

❁ यह तो बहिर्मुख लक्षको अन्तर्मुख करनेकी बात है। ''लाख बातकी बात यहै निश्चय उर लाओ''—यह अन्तर्मुख होकर आत्माको ध्यानेकी एक ही बात है। ७४६.

❁ शुभाशुभभावोंमें दुःख और स्वभावमें आनन्दका अनुभव हो तब रुचि कहलाती है। संसारमें बालबच्चोंकी रुचि है उससे अनन्तगुनी रुचि होनी चाहिये। ७४७.

❁ अहा! देखो न, प्रतिक्षण मृत्युकी ओर जा रहा है.....यदि वह आत्माकी ओर नहीं जायेगा–आत्मोन्मुख नहीं होगा तो मृत्युकालमें आकुलित हो जायेगा। ७४८.

❁ भगवान! तू आनन्दस्वरूप है; राग और वाणी आदि जड़को छूने जैसा नहीं है; उससे छुआछूत लगती है। तू भगवानस्वरूप ही है और तुझे भगवान होना पड़ेगा भाई! घोर संसारका कारण ऐसी प्रशस्त एवं अप्रशस्त वचनरचना तथा कनक–कामिनीके मोहसे छुआछूत लगती है, उसे छोड़कर तथा पशुसमान अज्ञानी जीवकृत लौकिक भयको छोड़कर तू जैसा है वैसा हो! और जैसा नहीं है उसे छोड़ दे! तू ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मा है, उसकी

www.vitragvani.com

श्रद्धा करके वैसा हो! और घोर संसारके कारणभूत रागादिरूप तू नहीं है उसे छोड़ दे! अहाहा! दिगम्बर सन्तोंने मोक्षको हथेलीमें बताया है। प्रभु! तू मुक्तस्वरूप है; उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके स्थिर होनेसे मोक्ष होता है। ७४९.

❁ मैं अनन्त द्रव्यका कर्ता नहीं हूँ, मैं उसका ज्ञाता अनन्त हूँ—इस प्रकार अपने ज्ञानकी अनन्तता बैठ जाये तो रागका अन्त आ जाये। अनन्त ज्ञेयोंको जान लेनेसे ज्ञेयोंका अन्त नहीं आ जाता, परन्तु जिसे अपने ज्ञानकी अनन्तता बैठ गई है उसे रागकी एकता टूटकर रागका अन्त आ जाता है। ७५०.

❁ स्वर्गके देवोंकी बात सुनकर अनेक लोगोंको आश्चर्य होता है, परन्तु भाई! वह स्वर्ग कोई आश्चर्यकारी वस्तु नहीं है। तू भी अनन्तबार वहाँ हो आया है। स्वर्गके अनन्त अवतार हों तब मनुष्य अवतार एकबार मिलता है; अन्य प्रकारसे कहें तो जीवोंमेंसे असंख्य जीव जब स्वर्गमें जाते हैं तब मात्र एक जीव मनुष्यगतिमें आता है। ऐसा महँगा मनुष्यभव है जब कि-देवपना तो उसकी अपेक्षा अनन्तगुना सस्ता है। ७५१.

❁ आत्माके अज्ञानसे चार गतियोंमें भ्रमण करते हुए जीवने सबसे अधिक भव एकेन्द्रियादि तिर्यंचगतिके धारण किये हैं। तदुपरांत मनुष्य, नरक और स्वर्गके भव भी अनन्तबार किये हैं। उनमें भी मनुष्यकी अपेक्षा नरकके और नरककी अपेक्षा स्वर्गके भव अनन्तगुने किये हैं। प्रमाणमें असंख्य भव स्वर्गके और नरकके करे तब एक भव मनुष्यका मिलता है;-ऐसी मनुष्यभवकी दुर्लभता है, और ऐसे दुर्लभ मनुष्यभवमें जैनधर्मका वीतरागी उपदेश सुननेको मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव और वीतरागी जैनधर्मका उपदेश तुझे वर्तमानमें महाभाग्यसे प्राप्त हुआ है, तो अब तू शीघ्र जाग, सावधान हो और आत्माकी प्रतीति द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट करके भवदुःखका अन्त कर। ७५२.

❁ अनादिसे जो मोहकी सेना है उसे कैसे जीतें? उसे जीतनेका उपाय क्या?—यह उपाय आचार्य महाराज यहाँ बतलाते हैं। जिन्होंने एक समयमात्रमें तीनकाल और तीनलोकको जान लिया है ऐसे अरिहंतदेवके द्रव्यको, गुणको तथा पर्यायको सर्व प्रथम यथार्थ जानना। यथार्थ अर्थात्?—उन्हें जानकर स्वयं भी उन जैसा है ऐसी तुलना करनेके लिये स्वके लक्षसे अरिहंतके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानना। मैं अरिहंतदेवकी जातिका ही हूँ-इसप्रकार आत्माको जाननेके लक्षसे अरिहंतदेवके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानना। रागमिश्रित दशामें अपना आत्मा भी द्रव्य-गुण-पर्यायमय है, ऐसे विकल्पमें आत्माको पहिचान लेना। जैसा अरिहंतदेवका

www.vitragvani.com

आत्मा है वैसा ही—उन्हींकी जाति-पाँतिका मेरा आत्मा है ऐसा मनसे समझ लेना। त्रैकालिक नित्य स्थायी ध्रुव चेतनतत्त्व वह द्रव्य है, चैतन्य आदि अनंत गुण हैं और एक समयमात्रकी मर्यादावाली उसकी पर्यायें हैं—ऐसे अरिहंतदेवको यथार्थ जानकर अपनेको पहिचान लेना।—इसप्रकार रागमिश्रित दशामें आत्माको जानकर वर्तमानपर्यायका लक्ष छोड़कर, गुणगुणीके विकल्पका भी लक्ष छोड़कर वर्तमानपर्यायको द्रव्यसन्मुख करके मात्र आत्माका लक्ष करनेसे निष्क्रिय चिन्मात्रभावको प्राप्त किया जाता है कि जिसके निष्कम्प निर्मल प्रकाश द्वारा मोहांधकार नष्ट हो जाता है। मोहकी सेना पर विजय पानेका यह उपाय है। ७५३.

❁ राम–लक्ष्मण बलदेव–वासुदेव हैं, रावण प्रतिवासुदेव है, उसे लक्ष्मण मारते हैं और उसका अग्निसंस्कार करने जाते हैं। रावणकी पत्नीसे कहते हैं कि हे माता! हम बलदेव–वासुदेव हैं, क्या किया जाये, अन्य कोई उपाय नहीं था होनहार हुए बिना नहीं रहती। माता! हमें क्षमा करना। राग–द्वेषकी प्रवृत्ति हुई परन्तु उसका अन्तरमें खेद है। अरे! यह हमारा काम नहीं....हम तो अंतरमें रमनेवाले राम हैं। ७५४.

❁ यह समझनेके लिये कितना धैर्य तथा कितनी शान्ति चाहिये! बाहरकी कितनी प्रवृत्ति छूट जाये तब वह अन्तर्मुख हो! ७५५.

❁ मैं कारण होकर मेरा कार्य होता है, ऐसा विकल्पपूर्वक निर्णय किया, तथापि अभी वह स्वोन्मुख नहीं है, तब परके कारण कार्य होता है ऐसा माने वह तो अभी कहीं पड़ा है। ७५६.

❁ चैतन्यज्योतिका अन्तर्अनुभव करने पर सूर्यकी तपनसे सुलगती हुई दीपककी भाँति राग जल जाता है, कुम्हला जाता है। ७५७.

❁ अहो! अंतरंग-अभिप्राय और मिथ्या-अभिप्रायका क्या मूल्य है उसकी जगतको खबर नहीं है। रागके कणसे लाभ होना माना उसने चैतन्यको लूट लिया है। ७५८.

❁ किसी दिन देखा नहीं है ऐसे रॉकेटका विश्वास करता है, परन्तु एक समयमें अनंत पदार्थोंको जान ले ऐसी शक्तिका विश्वास तो ला! ७५९.

❁ आजकल तो शास्त्रोंकी ही आवश्यकता है। सस्ते....सस्ते....सस्ते....ज्ञान करो....ज्ञान करो....ज्ञान करो....आत्मवस्तुके पक्षको समझो। यही मुख्य वस्तु है। ७६०.

www.vitragvani.com

❁ हे जिनेन्द्र! तुम्हारी भक्तिसे मैं पवित्रता तो पूर्ण प्राप्त करूँगा ही, परन्तु पुण्यकी भी पूर्ण प्राप्ति होगी। मैं तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि पद प्राप्त करके अपनी पूर्णताको साधूँगा। ७६१.

❁ एक-एक दो-दो वर्ष तक बीमारी चलती रहे, बिस्तरमें पड़े-पड़े शरीरमें चाँदे पड़ जायें, इल्लियाँ पड़ जायें, वेदना सहन न हो, शरीर छूटता नहीं है और यह उसे छोड़ता नहीं है (यह उससे छूटकर अन्तर्मुख नहीं होता-भेदज्ञान नहीं करता) हैरान-परेशान हो जाता है। अरे, उसका जो होना हो भले हो, तू उससे पृथक् होकर देखता रह न! ७६२.

❁ परज्ञेयोंको परस्वरूपसे जानना वह उसका स्वरूप है, परन्तु उन्हें अपना मानना वह भ्रान्ति है। उसने भूलका स्वरूप ही नहीं जाना है। परज्ञेयोंको अपना मानना वह मिथ्यात्व है, भ्रान्ति है। जगतको अपना मानना अर्थात् रागको अपना मानना वह भ्रान्ति है। ७६३.

❁ गुणस्थानोंको देखकर मुनिको वंदन करता है, परन्तु गुणस्थान तो अचेतन हैं; इसलिये गुणस्थानोंकी वंदना वह शरीरकी ही वंदना हो जाती है; वह तो शरीरकी है, चैतन्यकी स्तुति नहीं है। चैतन्य आत्माकी स्तुति तो अपने अंतरमें उतरनेसे होती है। ७६४.

❁ श्रोता :—पर्यायका विवेक तथा पर्यायदृष्टि—इन दोमें क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेव :—पर्यायका ज्ञान करना वह पर्यायका विवेक है और पर्यायकी रुचि-दृष्टि रखकर उसीके जितना अपना अस्तित्व मानना वह पर्यायदृष्टि है। दोनोंमें महान अंतर है। ७६५.

❁ कोई कहे कि अमुक मुनि-महात्मा प्रथम मोक्ष गये और अमुक पश्चात्; तो ऐसा प्रथम-पश्चात्का भंग वीतरागस्वभावमें है ही नहीं। आत्माकी प्रतीति होनेके पश्चात् एक भव करे या कुछ अधिक भव हों, उससे वीतरागस्वभावमें पहले और बादका भंग करना वह तो विषमता है, कषाय है। चैतन्यको पहले और बादमें मोक्ष कहना वह तो भला-बुरा कहने जैसा है। ७६६.

❁ आत्माका साक्षात्कार होनेवालेकी दृष्टि दूसरी जातिकी होती है। उसको तो हर प्रकारका विवेक हो जाता है। सारे आगमोंका रहस्य उसको खुल गया है। ७६७.

❁ सर्वार्थसिद्धिके देव असंख्य-असंख्य अरब वर्षों तक स्वाध्याय करते हैं, परन्तु जानते हैं कि आत्मानुभवमें पहुँचने पर ही इस स्वाध्यायका पार आयेगा। जिनका थोड़े समय स्वाध्याय

www.vitragvani.com

करनेमें भी मन नहीं लगता—अरुचि हो जाती है वे तो असंख्य अरब वर्षोंतक स्वाध्याय कर ही नहीं सकते; उनके तो व्यवहारसे जो शास्त्र-स्वाध्यायका विकल्प होता है वह (व्यवहार) भी नहीं है। ७६८.

❁ जीवकी उपस्थितिमें हाथ–पैर–मुँह–आँखें चलें, खाना–पीना–बोलना हो, वहाँ ऐसा लगता है कि यह सब मुझसे होता है और मैं उसे करता हूँ—ऐसा भ्रम होता है; परन्तु आत्मा तो उससे भिन्न मात्र चैतन्य ज्ञायक ही है यह उसे नहीं बैठता। ७६९.

❁ करोड़ों और अरबों रुपये वह सब धूल है।

श्रोता :—भले ही आप धूल कहो, परन्तु उसकी कुर्सी सबसे आगे रहती है।

पूज्य गुरुदेव :—उसकी कुर्सी नरकमें रहती है। अरे! यहाँ तो शुभभावमें बैठकर जो अपना मानता है वह नरकमें बैठा है, मिथ्यात्वमें बैठा है। ७७०.

❁ पहले अकेला था, उसमें अब पत्नी आयी इसलिये पशुकी भाँति चौपाया हुआ। फिर पुत्र होनेपर षट्पद अर्थात् भँवरा हुआ और पुत्रवधूके आनेपर आठ पगवाला मकड़ा हुआ। फिर अपनी ही लार निकाल-निकालकर उसमें फँसता गया–बँधता गया! ७७१.

❁ श्रोता :—अनुभूति करनेके लिये क्या करना?

पूज्य गुरुदेव :—आत्मामें एकाग्रता करना चाहिये।

श्रोता :—एकाग्रताके लिये क्या प्रयास करें? विकल्पात्मक चिन्तवन किस प्रकार किया जाये?

पूज्य गुरुदेव :—विकल्पात्मक चिन्तवन वह कारण है ही नहीं, वह वस्तु ही नहीं है। परोक्षज्ञान वह प्रत्यक्षज्ञानका कारण कदापि नहीं होता। सीधे अंतरमें एकाग्रता होनेपर प्रत्यक्षज्ञान होता है, वही वस्तु है। ७७२.

❁ भगवानकी स्तुतिमें ऐसा आता है—"मैं तो दोष अनंतका भाजन हूँ प्रतिपाल...." हे भगवान! मैं तो अनेक दोषोंका भंडार हूँ, मुझमें एक भी सद्गुण नहीं है। यह तो शिष्यका विनयभाव है। सत्के जिज्ञासुको ऐसा नम्रताका भाव होता है। पर्यायमें दोष है ऐसा वहाँ बतलाना है। मेरी पर्यायमें दोष है ऐसा जाने–माने नहीं तो दोषरहित निज ज्ञायक भगवानको किस प्रकार जाने-मानेगा? यहाँ तो पर्यायमें अपने कारण दोष है ऐसा जिसे

www.vitragvani.com

स्वीकार है उसे बतलाते हैं कि—भगवान आत्मा स्वभावसे तो दोषका भाजन है ही नहीं; वह तो चारों ओरसे अनंत गुणोंका ही आयतन है। श्रीमद् राजचन्द्रने एक स्थान पर इस आशयका लिखा है कि–प्रभु सर्वगुणसंपन्न है, किन्तु उसके अपलक्षणोंका पार नहीं है...यहाँ तो ऐसा कहना है कि तू अपनी वस्तुको–त्रैकालिक परिपूर्ण प्रभुताको–मानता नहीं है और पर्याय तथा रागादि जितना ही अपनेको मानता है वह तेरा अपलक्षण है। अहा! ऐसा मार्ग है; परन्तु अरेरे! जीव अनादिकालसे लुट रहा है। उस रागके रसिकको प्रथम तो अपने वस्तुस्वभावकी खबर नहीं है, सांसारिक झंझटोंमें श्रवणका भी अवकाश नहीं मिलता! कभी निवृत्त होकर सुनने जाये तो वहाँ कुगुरु उसका समय बर्बाद कर देते हैं। उसे आत्मदृष्टि करानेकी बात तो मिली नहीं और व्यवहारसे—दान–पूजा या व्रतादि करनेसे—कल्याण होगा, इसप्रकार बाह्य क्रियाकाण्डकी दृष्टिका पोषण मिला। कुगुरुने उसका समय लूट लिया। ७७३.

❁ धर्मी जीवको जो वीतरागी दशा प्रगट हुई वह पूज्य और आदरणीय है; परन्तु सच्चा पूज्य तो त्रैकालिक द्रव्य ही है। धर्मीको जो शुद्धपर्याय प्रगट हुई वह व्यवहारसे पूज्य है, परन्तु उसे जो रागकी पर्याय होती है वह तो हेयभावरूप है, उसे वह पूज्य नहीं है तथा दूसरोंको भी वह पूज्य नहीं है। ७७४.

❁ जो मोक्षका कथनमात्र–कहनेमात्र कारण है ऐसा व्यवहाररत्नत्रय तो भवसागरमें डूबे हुए जीवोंने पहले भव-भवमें सुना है और उसका पालन भी किया है। दया–दान–भक्ति–व्रत–तपादि शुभरागका व्यवहार तो भवसागरमें डूबे हुए जीवोंने अनंतबार सुना है और आचरण किया है; किन्तु वह व्यवहाररत्नत्रय किंचित्–कथनमात्र–मोक्षका कारण है, परन्तु वास्तवमें तो वह बंधका ही कारण है। जो राग दुःखरूप है विषरूप है वह अमृतस्वरूप मोक्षका कारण कैसे होगा? देव–शास्त्र–गुरुकी भक्ति, पूजा, जिनमन्दिरका निर्माण कराना, विशाल गजरथ चलाना आदि तो भव-भवमें अनंतबार किया, शास्त्रोंका ग्यारह अंगका ज्ञान, नवतत्त्वोंकी भेदरूप श्रद्धा एवं व्रत–तपादिका आचरण पूर्वकालमें अनन्तबार सुना है, आचरण भी किया है। अरेरे! खेद है कि जो सर्वथा एक ज्ञानरूप है ऐसे परमात्मतत्त्वको जीवने सुना नहीं है, आचरण नहीं किया। ७७५.

❁ श्रोता :—विकल्पयुक्त निर्णय होनेसे पुरुषार्थ सहज होता है या भिन्न करना पड़ता है?

पूज्य गुरुदेव :—स्वोन्मुखताका पुरुषार्थ अलग करना पड़ता है। ७७६.

www.vitragvani.com

❁ मेरी वस्तु ज्ञायकभावसे कभी पृथक् ही नहीं हुई है और रागका कभी स्पर्श ही नहीं किया–ऐसी दृष्टि होनेपर सम्यग्दर्शन होता है। ७७७.

❁ साधक जीव कहता है कि—हे ज्ञायक प्रभु! मुझे अपने दर्शन दे न! तेरे भीतरका वैभव मुझे देखने दे न! अरे रे! प्रभु! एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियपनेमें तो मैंने तुझे कभी–कहीं नहीं देखा। अरे! बाह्य मुनिपना अनन्तबार धारण किया, वहाँ भी तेरे दर्शन नहीं हुए नाथ! अब तो एक बार चेतन प्रभुके दर्शन करने दो! संसारके दूसरे झंझट छोड़कर धर्मी जीवको चेतनका अनुभव करनेकी लगन लगी है; दुनिया सन्मान दे या न दे—उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। 'यह धर्मात्मा है'—ऐसी लोग गिनती करें उसका भी कोई मूल्य नहीं है। चैतन्य भगवान पर दृष्टि देनेसे वह प्राप्त होता है; इसलिये हे शुद्ध परिणतिरूपी सखी! मुझे स्वभावपर दृष्टि करने दे। शरीरके प्राण भी भले ही जायें परन्तु मेरा चैतन्यभावप्राण मेरी दृष्टिमें आ जाये। धर्मीको सदा ऐसी भावना होती है। ७७८.

❁ चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा भीतर तो शक्तिरूपसे सदा अबद्धस्वरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप है। यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरतापूर्वक वह ध्रुव मुक्तस्वरूपका अंतरमें ध्यान करनेसे पर्यायमें मुक्तदशा प्रगट होगी। जीवको संसारके पापध्यान करना तो आता है; जिसप्रकार सांसारिक आर्त्त एवं रौद्र ध्यानमें लग जाता है, उसीप्रकार ऐसा ध्यान–ऐसी एकाग्रता–त्रैकालिक ध्रुवस्वभावमें लगाओ। अहा! मार्ग तो ऐसा है। वह दया–दान–व्रत या भक्तिसे प्राप्त नहीं होगा, वह तो राग है; क्या रागभावसे वीतरागता प्राप्त होगी? ७७९.

❁ जिसमें राग तो नहीं है परन्तु अल्पज्ञान भी जिसका स्वभाव नहीं है ऐसा यह भगवान आत्मा परम आश्चर्यकारी अद्भुताद्भुत चैतन्यमूर्ति है। वह सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दादि अनंतानंत गुणोंसे परिपूर्ण है। सर्व क्षेत्रमें एवं सर्व कालमें वह आश्चर्यकारी चैतन्य प्रतिमा अंतरमें सदा विराजमान है; उसकी हर एक पक्षसे पहिचान कर। पूर्णानन्दमय प्रभुकी चारों ओरसे—उपादान–निमित्तसे, निश्चय–व्यवहारसे, प्रमाण–नय–निक्षेपसे—बराबर पहिचान करना चाहिये। निश्चयसे—द्रव्य अपेक्षासे— आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है और व्यवहारसे—पर्याय अपेक्षासे—वही आत्मा अशुद्ध एवं दुःखी है; द्रव्यरूपसे ध्रुववस्तु है और पर्याय अपेक्षासे पलटती वस्तु है; इसप्रकार जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा प्रत्येक पक्षसे बराबर पहिचाने। वस्तुस्वरूपको बराबर जाननेके बाद नय–प्रमाणादिके पक्ष छोड़कर भीतर आत्मानुभवमें लीन

www.vitragvani.com

हो जाना। आत्मा निश्चयसे अबद्ध है और व्यवहारसे बद्ध है, उसका प्रथम सच्चा निर्णय करना चाहिये; परन्तु वे दोनों नयपक्ष विकल्प हैं, राग है, उससे आत्मानुभवकी प्राप्ति नहीं होती। वह प्रमाण-नय-निक्षेप आदिका पक्ष छोड़कर अंतरमें स्थिर हो जाना, अभेद आत्माको ध्येय बनाकर लीन हो जाना, तभी मुक्तस्वरूप प्रगट होगा। ७८०.

❀ ध्रुव ज्ञायकस्वभावका आश्रय लेनेका कार्य जो पर्याय करती है उस परसे भी लक्ष उठा ले। सर्वत्रसे लक्ष उठा ले, उसमें व्यवहाररत्नत्रयके विकल्प भी आ गये, तथा जो भीतर जानेका कार्य करती है वह एक समयकी पर्याय भी आ गई। उन सबसे लक्ष उठाकर ध्रुव ज्ञायकको पकड़। अध्रुवसे—पलटती पर्यायसे—ध्रुवको पकड़; अनित्यसे नित्यको पकड़; नित्यसे नित्य पकड़में नहीं आता। उसकी जो अनित्य पर्याय है उसे ऐसी धीर–गंभीर बना कि जिससे द्रव्यस्वभावको पकड़ सके। वस्तुस्वरूप पर दृष्टि ले जा; उसके बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होगा। भाई! मार्ग तो ऐसा है। इसके सिवा लाखों व्रत-तप करें, भक्ति, पूजा या यात्रा करे; करोड़ों–अरबों लगाकर बड़े-बड़े मन्दिर बनवाये, तथापि उनके द्वारा कहीं आत्मा पकड़में नहीं आता। यदि धनसे धर्म होता हो तो बेचारे निर्धनोंको रोना पड़ेगा, उन्हें कभी धर्म नहीं होगा! बाह्य क्रियाकाण्ड या धनके आधीन धर्म नहीं है; भीतर पातालमें— द्रव्यस्वभावमें—भगवान विराज रहा है उसे पकड़ तो सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रथम सोपान—प्राप्त होगा। ७८१.

❀ रागादि चिद्विकारोंको देखकर ऐसा भ्रम नहीं करना कि रागादि भी चैतन्य ही हैं। अन्य प्रकारसे कहा जाये तो निश्चयवालेको जहाँ व्यवहार साधन कहा है वहाँ व्यवहार साधन नहीं समझना। ज्ञानस्वभावी आत्मासे विरुद्ध लक्षणवाले रागको चैतन्यके साथ देखकर उसे साधन नहीं समझना। जिसे निश्चय-मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है उसे व्यवहार साथ होता है इसलिये सहचर देखकर उसमें उपचारसे साधनका आरोपण किया है; परन्तु व्यवहार-मोक्षमार्ग प्रशस्तराग है और वह आत्माके स्वभावसे विरुद्ध लक्षणवाला है इसलिये व्यवहार-मोक्षमार्ग साधन कैसे होगा?—नहीं हो सकता। ७८२.

❀ जैसे मिट्टी कार्य नहीं है परन्तु घड़ा कार्य है; घड़ा कार्य है इसलिये कर्ताके बिना नहीं हो सकता। घड़ा कार्य है और मिट्टी कर्ता है, कुम्हार कर्ता नहीं है। श्री समयसार गाथा ३७२में श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने कहा है कि—कुम्हारसे घड़ा होता हो ऐसा तो हम देखते नहीं हैं; कुम्हार घड़ेका कर्ता है ही नहीं। मिट्टी अपने स्वभावका उल्लंघन

www.vitragvani.com

नहीं करती होनेसे मिट्टी कर्ता और घड़ा कार्य है। वैसे ही विकार कार्य है इसलिये वह कर्ताके बिना नहीं होता; इसलिये विकार है वह जीव और पुद्गल ऐसे दो द्रव्योंकी करतूत–कार्य नहीं है परन्तु जीवद्रव्यका कार्य है। कोई ऐसा कहेगा कि रागादि कार्य और उसका कर्ता वह जीव तथा पुद्गल हैं। उसका समाधान ऐसा है कि रागादिका अंतरंग कारण तो जीव स्वयं ही है, बाह्य कारण—पुद्गलकर्म तो निमित्तमात्र है, निमित्तमात्र वस्तु है उसे परिणमित नहीं करता। ७८३.

❀ धर्म ऐसी सूक्ष्म वस्तु है कि वह बात साधारण जीवोंको नहीं बैठती। जगतके साधारण जीव जोकि व्यापारादि पापकार्योंमें पड़े हों उन्हें यह सूक्ष्म तत्त्व बैठता नहीं है और धर्मके नामपर भी क्रियाकाण्डके आग्रहमें पड़े हों ऐसे जीवोंको भी यह भगवानका कहा हुआ सूक्ष्म तत्त्व नहीं बैठता। भाई! तू किसीके साथ वाद-विवाद नहीं करना क्योंकि तत्त्व सूक्ष्म वस्तु है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं करता, प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय क्रमबद्ध ही होती है, एक पर्याय दूसरी पर्यायको छूती नहीं है; एक परमाणु दूसरे परमाणुका स्पर्श नहीं करता–यह बात बाप-दादा किसीने सुनी नहीं है। ऐसी सूक्ष्म बात कैसे बैठे? भगवान तीर्थंकरदेवने छह द्रव्य देखे हैं। उन प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय जिस कालमें, जिस क्षेत्रमें, जिस रूपसे होना है सो होना है—ऐसी सूक्ष्म बातें जगतके जीवोंको बैठें ऐसी नहीं हैं, इसलिये किसीसे वाद-विवाद नहीं करना। तू स्वयं समझकर समा जा! ७८४.

❀ तीनकाल तीनलोककी जो पर्यायें हैं वे सब ज्ञेयरूपसे केवलज्ञानकी पर्यायमें अर्पित हो जाती है। जितने ज्ञेय हैं उनकी भूत–वर्तमान–भविष्यकी समस्त पर्यायें एक समयमें ज्ञानमें अकम्परूपसे अर्पित हो जाती हैं–ज्ञात हो जाती हैं। भूतकालकी और भविष्यकी तथा वर्तमानकी समस्त पर्यायें मानों स्थिर हों इसप्रकार अकम्परूपसे ज्ञानको ज्ञेयरूपसे अर्पता है–ज्ञेयरूपसे वर्तता है। ऐसा क्रमबद्ध स्वरूप है उसे जो नहीं मानता वह वस्तुस्थितिको नहीं मानता और वस्तुस्थितिको नहीं मानता वह केवलज्ञानको ही नहीं मानता। ७८५.

❀ वस्तुमें अधिकरण नामका गुण है, उसके आधारसे वस्तु टिकी हुई है अन्यके आधारसे नहीं। आत्मा शरीरके आधारसे नहीं रहा, शरीर तख्तके (कुर्सीके) आधारसे नहीं रहा, तख्त जमीनके आधारसे नहीं रहा है। एक रजकण दूसरे रजकणके आधारसे नहीं रहा है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता-कर्म-करण या आधार नहीं है। सुनना भाई! यह

www.vitragvani.com

भगवानकी वाणीकी हुंकार है। आत्मवस्तु चमत्कारिक है। ऐसे आत्माका विश्वास....विश्वास....विश्वास आना चाहिये। 'विश्वाससे जहाज तैरता है', पानीके आधारसे नहीं; जहाज जहाजके आधारसे तैरता है। ऐसी वस्तुकी स्थिति है। आत्मा विश्वका प्रकाशक है। विश्व अर्थात् अनंत पदार्थ। उन अनंत पदार्थोंका अस्तित्व स्वयं उनके अपनेसे ही भिन्न-भिन्न अस्तित्वरूप रह सकता है। यदि एक पदार्थ दूसरे पदार्थके आधारसे रहे तो अनंत पदार्थोंकी अस्ति सिद्ध नहीं हो सकेगी। अन्य संयोगी द्रव्यसे देखना वह संयोगदृष्टि है। वस्तुके चमत्कारिक स्वभावसे देखना वह स्वभावदृष्टि है। चैतन्यवस्तुका स्वभाव तो चमत्कारिक है ही, परन्तु प्रत्येक पदार्थका स्वभाव भी चमत्कारिक है। ७८६.

❁ वस्तुमें गुण-गुणीके अथवा अन्य कोई भेद नहीं हैं। राग मेरा–ऐसा तो नहीं है परन्तु षट्कारकोंके, उत्पाद-व्यय-ध्रुव या गुण-गुणीके भेदका विकल्प भी वस्तुमें नहीं है। अहाहा! अमृतचन्द्राचार्यका कोई भी श्लोक हो...अद्भुत बात होती है! वस्तुमें कोई भी भेद नहीं है तो है क्या?—कि वह तो निर्विकल्पमात्र वस्तुका सत्त्व है। ज्ञायक सत्त्व है। कैसा है चैतन्यस्वभाव?—कि विभु है अर्थात् अपने स्वरूपमें व्याप्त रहनेवाला है। अपने विशेषणोंमें व्याप्त रहनेवाला, गुणोंका एकरूप विभु है। अपने स्वरूपमें व्याप्त रहनेवाला चैतन्यविभु है; पर्यायमें नहीं आता ऐसा निर्णय, ऐसा अनुभव पर्यायमें है, परन्तु उस पर्यायमें वस्तु नहीं आयी है। अनुभवसे वस्तु भिन्न है परन्तु अनुभवकी दृष्टिमें एकरूप वस्तु है जोकि सर्व कर्मोपाधिसे रहित है। अनुभवके ऐसे संस्कार वह एक मात्र कर्तव्य है। ७८७.

❁ ज्ञानलक्षण आत्मा स्वभावतः रागसे भिन्न ही है। खानमें जैसे पत्थरोंके बीच साँध जैसी पतली दरार होती है, उस दरारमें दारू भरकर फोड़ा जाता है तब सैकड़ों मनके बड़े–बड़े पत्थर अलग हो जाते हैं; उसीप्रकार ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा और विभावस्वरूप रागके बीच साँध है, साँध रहित कभी नहीं हुए। आत्माका चैतन्यदल और शुभाशुभ राग–भले ही वह तीर्थंकरनामकर्म बँधे ऐसा शुभराग हो–उन दोनोंके बीच साँध है; त्रैकालिक वीतरागस्वभाव और राग कभी भी एक हुए ही नहीं। अनादि रागमें अपनत्वके अध्याससे अज्ञानीको एक लगते हैं, परन्तु आत्मा और राग कभी एक हुए ही नहीं हैं, माने फिर भी एक नहीं हुए हैं। अपने- अपने नियत लक्षणसे दोनों पृथक् ही हैं। ७८८.

❁ जिसे ऐसा लगे कि मेरा जीवन निष्फल गया, वह सफलताका मार्ग लेता है। ७८९.

www.vitragvani.com

❁ धूलकी (पैसेकी) कीमत तो मरनेके लिये है। धूलकी कीमत करते हैं वो अपनेको मार डालते हैं। धूलकी कीमत तो नहीं लेकिन रागकी कीमत भी नहीं, शुभरागकी कीमत करते हैं वो अपनेको मार डालते हैं! ७९०.

❁ श्रोता :—गुरुदेव! आत्मा और राग भिन्न हैं उसका स्पष्ट ख्याल अनुभवसे पहले आ सकता है?

पूज्य गुरुदेव :—धारणाके रूपमें साधारण ख्याल आ सकता है, अनुमानसे पहले निर्णय करता है। १४३वीं गाथामें कहा है न, कि प्रथम निर्णय करता है; सच्चा ख्याल तो अनुभव करे तभी होता है। ७९१.

❁ वक्ताकी पर्यायकी निर्मलतामें वृद्धि हुई और वह निमित्त होकर जो वाणी आती है उसे सुनकर श्रोताको भी ज्ञानमें नवीन-नवीन विशेषता न लगे तो उसका ज्ञान वहाँका वहीं स्थिर है, अर्थात् अनादिकी जो जाति है वही है। जिस जातिका विकल्पमें बहुमानका नया-नया विकल्प उठे और उसीको उस समय ज्ञान जाने ऐसा विशेषतायुक्त ज्ञान नहीं है तो उसका ज्ञान यथार्थ नहीं है। ७९२.

❁ महामुनियोंको राजा आदिका संग हो वह भी मरणतुल्य लगता है। पुण्यवंतके संगमें सब बराबर रखना पड़ता है....इसलिये पुण्यवानोंसे वैरागियोंको दूर रहना अच्छा है। ७९३.

❁ सम्यग्दृष्टि जीव विकारके परिणामका कर्ता नहीं है, ज्ञाता ही है, क्योंकि धर्मीकी दृष्टिमें रागके परिणाम और उसका कर्तृत्व इन दोनोंका जिसमें अभाव है ऐसे एक अखण्ड ज्ञायकभावकी स्वीकृति आयी है, इसलिये धर्मी जीव तो विकारका- भावकर्मका ज्ञाता ही है। ७९४.

❁ भगवान! तुझमें जो शक्ति है उसे तू सम्हालता नहीं है और अपनेमें जो शक्ति नहीं है ऐसे भावको उत्पन्न करके उसमें घुस जाता है। ७९५.

❁ स्वयं अपनेको ठगता है और मानता है कि हम लाभमें हैं। इसीप्रकार जगत अनादिसे लुट रहा है। ७९६.

❁ स्वभावका माहात्म्य करनेके लिये यह बात कही जाती है। मेरे अंतरमें आनन्द भरा है। भगवान कहते हैं और मुझे भासित होता है। यह राग तो कृत्रिम एवं दुःखरूप है; इसलिये आनन्दस्वभाव पर दृष्टि कर तो शान्ति होगी। ७९७.

www.vitragvani.com

❁ एकक्षेत्रमें रहे हुए शरीर, वाणी और मनकी विविध एवं विचित्र पर्यायें उनके कालमें उनके जन्मक्षणमें होती हैं, उनका आधार मैं नहीं हूँ, कर्ता भी नहीं हूँ, कारण भी नहीं हूँ, प्रयोजक भी नहीं हूँ और उसके कालमें पुद्गलसे होनेवाली पर्यायका अनुमोदक भी मैं नहीं हूँ। मैं तो उसके कालमें होनेवाली पुद्गल पर्यायका ज्ञाता ही हूँ—ऐसी प्रथम दर्शनविशुद्धि होना वह भवभ्रमणके नाशका कारण है। ७९८.

❁ तेरा स्वभाव परमान्दस्वरूप ही है, ध्रुव सत् है परन्तु रागके प्रेममें परमानन्दस्वरूपको ठोकर लगती है। दया–दानके रागका मूल्यांकन करनेसे चैतन्यको ठोकर लगती है, इसलिये रागका मूल्यांकन छोड़कर चैतन्यकी कीमत कर। अब एकबार अपनी इस वस्तुका आदर कर! ग्यारह अंगका ज्ञान हो वह भी तेरी वस्तु नहीं है तो बाहरकी कौन वस्तु तेरी होगी? अपनी पर्यायमें तूने परका मूल्य आँका, परन्तु पर्याय जिसकी है उसका मूल्यांकन नहीं किया। ७९९.

❁ प्रचुर आनन्दके वेदनमें झूलते हुए संत कहते हैं कि–जब जिनेश्वरदेवने सर्व अध्यवसान छुड़वाये हैं तब हम ऐसा मानते हैं कि पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सारा छुड़वाया है। देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाके रागके परिणाममें परका सम्बन्ध है, स्वका सम्बन्ध नहीं है। जो तुझमें नहीं है और तूने अपना माना है वह नितान्त मिथ्याभाव है, इसलिये भगवानने परवस्तुकी एकत्वबुद्धि छुड़ायी है तो हम संत ऐसा मानते हैं कि दया–दान–व्रतादि परके आश्रयरूप दूसरा जितना व्यवहार है वह सभी भगवानने छुड़वाया है। ८००.

❁ भगवान आत्मा ज्ञानमय है। केवल ज्ञानमय अर्थात् अकेला ज्ञानमय है, त्रैकालिक ज्ञानमय है। वह केवलज्ञानसे पूर्ण है। लोकालोकको जाने ऐसा ही उसका स्वभाव है। वर्तमानमें पर्यायमें केवलज्ञान नहीं है उसकी यहाँ बात नहीं है। लोकालोकको जाने और आगे–पीछेकी पर्यायको न जाने ऐसा नहीं हो सकता; तीनोंकालका सब कुछ जाने ऐसा ही उसका स्वभाव है। जो भविष्यकी पर्याय वर्तमानमें नहीं है उसका केवलज्ञानमें ज्ञान आता है। जैसे–आटेके पिण्डमेंसे रोटी होगी वह पहलेसे जाना जा सकता है, रोटी नहीं है फिर भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भविष्यकी पर्याय वर्तमानमें नहीं है तथापि केवलज्ञानमें जानी जा सके ऐसी केवलज्ञानपर्यायकी शक्ति है और ऐसा ज्ञानमय तेरा आत्मा है उसे जान! लोकालोकको जाननेके स्वभावरूप ज्ञानमय आत्माको जान! ८०१.

❁ भगवान आनन्दका नाथ है, उस पर दृष्टि न करके शरीरकी ओर आकर्षित होकर

www.vitragvani.com

दुःखी हो रहा है। शरीर मेरा है ऐसी ममता करता है वह दुःखी है–ऐसा जानकर ज्ञानी शरीरका प्रेम छोड़ते हैं। भगवान, तुझे सुखी होना हो तो शरीरकी ममता छोड़ दे। भगवान कहते हैं कि तू निज सत्तासे पूर्ण है। भगवान तुझे कैसा देखते हैं?–कि तेरी सत्ता द्वारा परिपूर्ण देखते हैं। भगवान कहते हैं कि तू वीतराग परमानन्द सुखस्वरूप है और शरीर दुःखरूप है, इसलिये शरीरका ममत्व छोड़कर निज शुद्धात्माका सेवन कर। ८०२.

❀ पर्यायमें जो रागादि होते हैं वे तेरे त्रैकालिक स्वरूपमें नहीं हैं और तेरा त्रैकालिक स्वरूप उनमें नहीं है तथा उनसे त्रैकालिक स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती; वे वस्तुस्वभावकी प्राप्तिमें सहायक नहीं हैं, वे तो पुद्गलके हैं। पुण्य-पापके भाव तो तेरे अज्ञानभावसे तेरी पर्यायमें उत्पन्न हुए हैं परन्तु वे दुःखके कारण हैं, इसलिये अब वस्तुस्वरूपकी प्राप्ति हेतु उनसे विरम! हठ न कर और उनसे विरक्त हो! ८०३.

❀ नरककी असह्य वेदनामें भी अरेरे! यह दुःख!—ऐसे विचार करके उस वेदनाका लक्ष छोड़कर कोई जीव किसी समय धर्मसन्मुख हो जाता है। नरककी उस असह्य पीड़ाकी तो क्या बात कहें! जिस प्रकार पारा गिरकर उसके छोटे-छोटे कण बिखर जाते हैं और फिर इकट्ठे हो जाते हैं; उसी प्रकार नरकके दुःखोंसे शरीरके छोटे-छोटे टुकड़े होकर फिर मिल जाते हैं ऐसी महान पीड़ा यह जीव अनन्त बार सहन कर चुका है। तथापि यहाँ मनुष्यभवमें आकर सब भूल जाता है और मुझे अमुक अनुकूलता चाहिये, अमुक वस्तुके बिना मेरा नहीं चल सकता....ऐसे ही ऐसे मनुष्यभव हार जाता है, परन्तु उसे कहाँ आत्माकी परवाह है? ८०४.

❀ मुनिराज कहते हैं कि जो जीव नरकगतिमें जाकर सुलट जाता है, सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है उसके लिये वह कुगति भी अति श्रेष्ठ है; क्योंकि कोई जीव पाप करके नरककी कुगतिमें जाये और फिर एकदम मोक्षमार्गमें लग जाये तो वह पापका फल भी श्रेष्ठ हुआ; और कोई अज्ञानी दया–दान–व्रत–तपादि करके स्वर्गमें जाये और वहाँसे एकेन्द्रियादिमें उत्पन्न हो तो वह देवपर्यायका मिलना भी किस कामका? इसलिये अज्ञानीका देवपद प्राप्त करना वृथा है। कोई ज्ञानी पुरुष सम्यग्दर्शन सहित पुण्यके फलरूप स्वर्ग प्राप्त करे और वहाँसे निकलकर मनुष्यभवमें मुनि होकर मोक्ष चला जाये तो उसके समान श्रेष्ठ और क्या होगा? तथा कोई जीव नरकसे निकलकर मनुष्य होकर चारित्र धारण करके मोक्ष प्राप्त करे तो वह भी उत्तम है। ८०५.

www.vitragvani.com

❁ जैसे–मातासे बिछुड़े हुए बच्चेको 'मेरी माँ, मेरी माँ'–इसप्रकार अपनी माताकी ही रट लगी रहती है; कोई उससे पूछे कि तेरा नाम क्या है? तो कहेगा कि 'मेरी माँ।' कोई उससे कुछ खानेको पूछेगा तब भी वह 'मेरी माँ'की रट लगाये रहेगा। उसीप्रकार जिन भव्य जीवोंको अंतरमें आत्माकी उत्कंठा जागृत हो, लगन लगे वे आत्माका ही रटन करते हैं उसीकी चिन्ता बनी रहती है, आत्माके अतिरिक्त अन्यकी रुचि अंतरमें नहीं होने देते; उनका जीवन धन्य है! अहो! पूर्ण चिदानन्दस्वरूप मेरा आत्मा है, उसकी प्रतीति और प्राप्ति जबतक नहीं होगी तबतक यथार्थ शान्ति या सुख नहीं मिलेगा। अबतकका अनंतकाल आत्माको जाने बिना भ्रान्तिमें गँवा दिया, अब एक क्षण भी खोना नहीं है–इसप्रकार आत्माकी रुचिवान जीव अन्य किसीकी रुचि या चिन्ता नहीं करता। जो चैतन्यस्वभावकी प्रतीति करके उसे ध्यानमें ध्याते हैं उनके महिमाकी क्या बात करें? उन्होंने तो कार्य प्रगट कर लिया है, इसलिये कृतकृत्य हैं; किन्तु जिन्होंने उसके कारणरूप रुचि प्रगट की है कि अहो! मेरा कार्य कैसे प्रगट हो? आनन्दकन्द आत्माका अनुभव कैसे करूँगा?–ऐसी जिन्हें चिन्ता है, रुचि प्रगट हुई है उन आत्माओंका जीवन भी आचार्य कहते हैं कि धन्य है, संसारमें उनका जीवन प्रशंसनीय है। ८०६.

❁ ध्रुवधामके ध्येयकी धधकती धूनी,
धगश और धैर्यसे धधकानेवाला
धर्मका धारक धर्मी
धन्य है! ८०७.

❁ अहो! अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ मुझे मिला है, अतीन्द्रिय आनन्दका ज्वार आया है....तो अतीन्द्रिय आनन्दमें रहनेवाले ऐसे मुझे अन्य परिग्रहका क्या लाभ है? अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनके समक्ष शुभरागके दुःखका मुझे क्या काम है? दया–दान–व्रतादिके बाह्य-विकल्पोंसे मुझे क्या लेना है? यह जीव है, यह जड़ है, यह व्रतादिके विकल्प हैं, यह गुणभेद है–ऐसे विकल्पोंसे मुझे क्या लाभ? अपने दुःखका नाश और अतीन्द्रिय आनन्दकी प्राप्ति ही मेरी कार्यसिद्धि है। शुद्ध जीव- वस्तुका अनुभव वह चैतन्य चिन्तामणिरत्न है, उसकी प्राप्ति होनेके पश्चात् अन्य विकल्पादि परिग्रहसे मुझे क्या काम है? ऐसा सम्यग्दृष्टि अंतरमें विचारता है। ८०८.

❁ सम्यक्त्वी धर्मी जीव अपनी दृष्टिकी डोर चैतन्यसे बाँध देता है, दृष्टिको

www.vitragvani.com

ध्रुवस्वभावपर स्थिर कर देता है, ध्रुव आत्मापर जोर लगाता है। सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि जिसने ध्रुव ज्ञायकभावपर दृष्टि डोर बाँध दी है; फिर भले ही विकल्प आता हो, किन्तु दृष्टि तो ध्रुवस्वभावपर ही है; वहाँसे जरा भी नहीं हटती, हिलती तक नहीं है। प्रभु! तुझे कल्याण करना हो तो संयोगके ऊपरसे लक्ष हटा ले, दया-दानके विकल्पोंसे दृष्टि उठाकर, एक समयकी पर्यायका भी लक्ष छोड़ दे और त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य भगवानपर दृष्टिकी डोर बाँध दे। किस प्रकार बाँध दे?-अपनी वर्तमान उत्पन्न होती पर्यायको वहाँ ध्रुव ज्ञायकमें जोड़ दे। किस प्रकार जुड़ेगी? अंतर्मुख होकर जोड़ दे। अंतर्मुख कैसे हुआ जाये? वह तो अंतर्मुख होनेवाला स्वयं करेगा या दूसरा कोई कर देगा? अपनी जो वर्तमान पर्याय परकी ओरके लक्षवाली है उसे छोड़ दे और ज्ञायकभावपर दृष्टि जोड़ दे। अब, 'जोड़ दे' ऐसा कहा तो किस प्रकार जुड़ती है? क्या कहें भाई? अनुभव किस प्रकार होता है यह बात अभी नहीं चलती है, किन्तु श्री समयसार कलशटीकामें ऐसा कहते हैं कि 'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ'-ऐसा ज्ञानका जो परिणमन होता है वह अनुभव है। भगवान आत्मा जोकि पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु है उसमें अंतर्मुख दृष्टि होना, उसका अनुभव होना उसने स्वभावकी ओर डोर लगा दी ऐसा कहा जाता है। भाषामें विशेष क्या आयेगा? ८०९.

❁ अहाहा! आठ वर्षका बालक हो, निगोदसे निकलकर बीचमें एकाद भव किया हो और मनुष्य होकर आठ वर्षकी आयुमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, अंतर्मुहूर्तमें मुनि हो और अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त करके अंतर्मुहूर्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। अहाहा! स्वभाव है न! उस चैतन्य-स्वभावके सामर्थ्यकी क्या बात! संसारके विकल्पोंका स्वभावमें प्रवेश ही नहीं है। ८१०.

❁ भोगके विकल्पोंकी अपेक्षा अनर्थके विकल्प आत्माको अति हानिकारक हैं। भोगके विकल्प तो अमुक काल ही होते हैं। ८११.

❁ शिष्य बारम्बार गुरुसे श्रवण करता रहता है तब खड़ा होता है। बारम्बार श्रवण करनेसे ज्ञानमें माहात्म्य आता रहता है और वीर्य उल्लसित होता है। इसलिये योगसारमें इन श्रवण आदिके अनेक बोल कहे हैं। ८१२.

❁ अब तो पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग सुनते हैं। भिण्ड (म. प्र.) के एक पण्डितजी सं. १९९९में कहते थे कि-ओहो! समयसारकी वचनिकामें डेढ़सौ आदमी! हम जब पढ़ते थे तब तो दो-तीन लोग होते थे! इसलिये वे भाग्यशाली हैं जिनके कानोंमें यह बात पड़ती

www.vitragvani.com

है। सोगानीजी लिख गये हैं (द्रव्यदृष्टि-प्रकाशमें) कि यहाँके सुननेवालोंमेंसे बहुतसे लोग तो मोक्ष जानेवाले हैं...अंतरंग रसपूर्वक सुनते हैं और अंतरमें रस है तो आगे रसमें वृद्धि होते-होते सर्वज्ञ होकर मोक्ष जायेंगे। ८१३.

❁ आत्मा और रागकी सन्धि अति सूक्ष्म है, अत्यंत दुर्लभ है; दुर्लभ है तथापि अशक्य नहीं है। ज्ञानके उपयोगको अति सूक्ष्म करनेसे लक्षमें आ सकती है। पंच- महाव्रतके परिणाम अथवा शुक्ललेश्याके कषायकी मन्दताके परिणाम वे अति सूक्ष्म या दुर्लभ नहीं हैं किन्तु आत्मा अति सूक्ष्म है; इसलिये उपयोगको अति सूक्ष्म करनेसे आत्मा जाननेमें आता है। ८१४.

❁ श्रोता :—सम्यग्दृष्टिको मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये या मोक्षकी पर्यायको आना हो तो आये?

पूज्य गुरुदेव :—सम्यग्दृष्टि मोक्षका प्रयत्न करता है, पुरुषार्थ करता है और मोक्षकी पर्यायको आना हो तो आये अर्थात् उसकी दृष्टि द्रव्यपर है इसलिये मोक्षकी पर्याय आयेगी ही। ८१५.

❁ अग्निका उष्णस्वभाव नित्य है, गुड़का मिष्टस्वभाव नित्य है, अफीमका कड़वास्वभाव नित्य है, सूर्यका प्रकाशस्वभाव नित्य है, बर्फका शीतलस्वभाव नित्य है, उसीप्रकार भगवान आत्माका ज्ञायकस्वभाव-चेतनास्वभाव नित्य है। ज्ञायकस्वभावी आत्मा स्व-परको जानने-देखनेके सिवा और क्या करे? ८१६.

❁ प्रभु कहते हैं कि भीतर तेरी प्रभुता कितनी पड़ी है उसे एकबार सम्हाल तो सही! तेरे द्रव्यमें अनंतानन्त शक्तियाँ हैं और प्रत्येक शक्तिमें अनन्तानन्त प्रभुता है। ऐसी अनंत प्रभुताके पिण्डस्वरूप जो अंतरमें तेरी वस्तु है उसे आचार्यदेव 'भगवान' रूपसे सम्बोधन करते हैं। श्री समयसारकी ७२वीं गाथाकी टीकामें तीन बार इस ज्ञायक आत्माको 'भगवान' कहकर वर्णन किया है। ८१७.

❁ भगवान द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण शुद्धतासे भरपूर है। वह द्रव्यस्वभाव सम्यग्दर्शनका-श्रद्धा-पर्यायका विषय है। ज्ञानकी पर्यायमें भी निर्लेप द्रव्यस्वभाव ज्ञेय होता है, ज्ञानकी पर्यायमें वह ज्ञात होता है, तथापि वह ज्ञानकी पर्यायमें आ नहीं जाता। अहा! बात बड़ी सूक्ष्म है भगवान! ८१८.

❁ अहा! 'यह सब कषाय-विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं, मैं तो शुद्ध ज्ञायक

www.vitragvani.com

हूँ'–इसप्रकार निज द्रव्यस्वभावकी पहिचान करे–तद्रूप परिणमन करे तो पर्यायमें प्रगट निर्लेपता, शुद्धता होती है। श्री समयसारकी १२वीं गाथामें कहा है कि–त्रैकालिक परमभावको जो देखता है, उसका जिसने आश्रय लिया है उसे शुद्धनय जानना। उस सम्यग्दृष्टि जीवको पर्यायमें किंचित् अशुद्धता या अपूर्णता है या नहीं?–है, तो उसे क्या कहना? साधक जीवको परमभावके आश्रयरूप निश्चयके साथ–साथ जितनी शुद्धि बढ़ती जाती है, अशुद्धि घटती जाती है और जितनी कचास रह गई है वह सब व्यवहारनयका विषय है और उस-उस भूमिकामें वह-वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहारनयके विषयोंका भी ज्ञान तो ग्रहण करने योग्य है ऐसी विवक्षासे व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है, उसका आश्रय ग्रहण करने योग्य है ऐसी विवक्षासे नहीं। अहाहा! गजब है जैन संतोंकी बातें! अमृतके समुद्र उछले हैं! ८१९.

❁ प्रभु! जो भाव तेरे स्वरूपमें नहीं हैं उन्हें तू अपना बनानेकी आकांक्षा करता है, तो तुझे ऐसी आकांक्षा करके कहाँ जाना है? उसका फल क्या है उसकी तुझे खबर है? शरीर तो छूटेगा ही, आत्माका नाश तो कभी होता नहीं है, तो यह शरीर छोड़कर कहाँ जायेगा? जिसने राग और पुण्यकी क्रियाका सेवन किया है, उससे लाभ माननेरूप मिथ्यात्वका सेवन किया है, वे भविष्यमें भी मिथ्यात्वमें रहेंगे। मिथ्यात्वके गर्भमें नरक और निगोदके अनंत भव करनेकी शक्ति है; वहीं अनंतकाल रहेंगे। भिन्न आत्माका सम्यग्दर्शन होनेपर अनादि भवसंततिका छेद हो जाता है, क्योंकि अनंत ज्ञान एवं अनंत आनन्द जिसके फलमें प्रगट होता है ऐसा कारण उसने प्राप्त किया है। अंतरमें अभेद ज्ञायक आत्माका पूर्ण आश्रय करनेपर आत्मा गुणरूपी अनंत पंखुरियोंसे खिल उठता है। ८२०.

❁ अंतरमें दृष्टि लगाना ही आत्माका आहार है। श्रद्धा–ज्ञानका बारम्बार अभ्यास करना ही आत्माका आहार है। ८२१.

❁ अनुभवप्रकाशमें कहा है कि–प्रभु! तेरी शुद्धताकी तो क्या बात? तेरी शुद्धता तो बड़ी, लेकिन तेरी अशुद्धता भी बड़ी! केवलीके निकट गया तब भी तूने अपनी विपरीतता नहीं छोड़ी! त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरके पास गया, समवसरणमें प्रभुकी वाणी अनंतबार सुनी, जहाँ तीर्थंकरका कभी विरह नहीं होता ऐसे महाविदेहक्षेत्रमें अनन्तबार तेरा जन्म हुआ, समवसरणमें मणिरत्नके दीपकोंसे भगवानकी आरती उतारी तथा हीराकी थालीमें कल्पवृक्षके फूलोंसे पूजा की, किन्तु प्रभु! वह तो शुभराग है, संसार है, वह ज्ञायकभाव नहीं है। ८२२.

www.vitragvani.com

❁ विकारका मूल्य छूट जाये और स्वभावका मूल्य बढ़ जाये, तब विकार मन्द हो जाता है, अपंग हो जाता है, विकारकी कमर टूट जाती है। विकारकी रुचि मिटने और स्वभावका मूल्य समझने पर अस्थिरताका राग होता है; किन्तु स्थिरता होनेपर वह भी छूट जाता है। ८२३.

❁ जैसा भगवानका स्वभाव है वैसा ही मेरा है। परन्तु उसे विश्वासकी सराण पर चढ़ाना, श्रद्धामें लेना, उसके अस्तित्वमें यह मैं हूँ ऐसी प्रतीति करना! अहो! वह सब निर्विकल्प दृष्टि हुए बिना होता ही नहीं! ८२४.

❁ भाई! तू बिलकुल निवृत्त पदार्थ है, रिक्त है; विकार एवं पुण्य-पापसे रहित है। ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है। तू विकार करे तो पर्यायमें दिखायी देता है, वस्तुमें तो विकार है ही कहाँ? ८२५.

❁ भाई! तेरी परमेश्वरताका आधार तेरा द्रव्य है। तुझे परमेश्वर होना हो तो अपनी परमेश्वरताको अपने अंतरमें ढूँढ़। ८२६.

❁ जैसे-शरीर, स्त्री, पैसा आदि परद्रव्यके बिना मेरा नहीं चल सकता-ऐसा ले बैठा है; उसीप्रकार एकबार ऐसा तो ले कि मेरा अपने आत्माके बिना एक डग भी नहीं चल सकता! अपने द्रव्यके बिना मेरा एक क्षण भी नहीं चलेगा-ऐसा ले! ८२७.

❁ सर्वज्ञदेव लोकालोकको जानते हैं वह स्वक्षेत्रमें रहकर जानते हैं। स्वचैतन्य-क्षेत्रमें स्थित रहकर तीनकाल, तीनलोकके समस्त स्व-पर ज्ञेयोंको, मानो वे ज्ञानमें उत्कीर्ण हो गये हों इसप्रकार एक समयमें सहजरूपसे प्रत्यक्ष जानते हैं। जो पर्याय बीत गई है और जो होना शेष हैं उन सबको भी पूर्ण जानते हैं, प्रत्यक्ष जानते हैं। छद्मस्थको भी गुँधे हुए आटेका पिण्ड देखकर पहले यह आटा था और अब रोटी बनेगी-ऐसा प्रत्यक्ष ख्याल आता है तो केवलज्ञानीकी तो क्या बात करना! तीनकाल, तीनलोकको प्रत्यक्ष जानते हैं और तेरा भी ऐसा ही स्वभाव है, इसलिये तू निमित्तका, रागका तथा अल्पज्ञानका लक्ष छोड़ दे। अंतरमें सर्वज्ञस्वभाव है उसकी दृष्टि कर। इस आत्मामें कोई अद्भुत ज्ञानशक्ति है। ८२८.

❁ अपने सिवा स्त्री आदि परपदार्थोंमें राग करता है अर्थात् उनके प्रति प्रेम है तो दूसरोंके प्रति द्वेष होगा ही। सम्यग्दृष्टि तो अपनेको ज्ञातादृष्टा मानता है इसलिये उसकी दृष्टिमें जगतका कोई प्रेम करने योग्य है ही नहीं। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप शुद्ध

www.vitragvani.com

चिदानन्द प्रभु है; उसका ज्ञान हुआ कि मैं तो ज्ञातादृष्टा चैतन्य हूँ, मेरे सिवा अन्य अनन्त पदार्थ हैं वे मेरे ज्ञेय हैं, जानने योग्य हैं–ऐसा धर्मी जीव जानता है। अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव ज्ञान–आनन्दस्वरूप है ऐसी दृष्टि होनेके कारण ज्ञानी अपने सिवा अनन्त पदार्थोंके दो भाग नहीं करते। एक इष्ट है और एक अनिष्ट है–ऐसे दो भाग सम्यग्ज्ञानी नहीं करते। अपना स्वरूप ज्ञान एवं आनन्दरूप है ऐसी जिन्हें प्रतीति नहीं है वे अज्ञानी जीव, जगतके समस्त पदार्थ ज्ञानमें ज्ञेयरूप होनेपर भी एक ठीक है वह ग्रहण करने योग्य है, एक ठीक नहीं है वह द्वेष करने योग्य है–ऐसे दो भाग करते हैं। ८२९.

❁ भगवान आत्मा जीव है, वह जीव जो छह द्रव्य व्यक्त हैं उनसे अन्य है। छह द्रव्योंमें द्रव्य–गुण तो नित्य हैं, परन्तु जो नवीन–नवीन पर्यायें होती हैं वे विकृत हों या अविकृत हों, परन्तु वे अपने षट्कारकोंसे होती हैं; पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य यह सब व्यवहारके कथन हैं। केवलज्ञानकी पर्याय हो या निगोदकी पर्याय हो, परन्तु वह पर्याय अपनेमें अपनेसे अपने कारण है। छह द्रव्यस्वरूप लोकमें द्रव्योंकी पर्याय भी आ गई; द्रव्य, गुण और पर्याय आ गये। द्रव्य–गुण तो अपने कारण हैं, परन्तु विकारी या अविकारी पर्याय भी किसीके आलम्बन बिना प्रति समय अपने षट्कारकसे स्वतंत्र होती हैं। छह द्रव्यस्वरूप लोकका ऐसा स्वरूप है वह ज्ञेय है और ज्ञेय है उसका आत्मा ज्ञायक है; परन्तु ज्ञायक आत्मा उसका कर्ता नहीं है; ज्ञाता आत्मा परवस्तुका कर्ता नहीं है, परवस्तु तो ज्ञेय है। ८३०.

❁ बहिनके (बहिनश्रीके) वचनामृतमें आता है कि 'मैं अनादि–अनंत मुक्त हूँ'– मुक्तदशा तो सादि–अनंत है और प्रभु है वह अनादि–अनंत है। ऐसे अनादि– अनंत मुक्त शुद्ध आत्मद्रव्यपर दृष्टि करनेसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है। द्रव्य तो मुक्त है, मुक्तिकी पर्याय आना हो तो आये। मेरी दृष्टि तो द्रव्यपर ही है और द्रव्य तो मुक्त ही है। उसपर दृष्टि देनेसे पर्यायमें मुक्ति होगी, होगी और होगी ही। ८३१.

❁ आत्माको सदा ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य रखना; चाहे जो प्रसंग आये परन्तु द्रव्यस्वभावको मुख्य रखना। आत्माको मुख्य रखनेसे जो दशा होती है वह निर्मल- दशाको साधन कही जाती है और उसका साध्य केवलज्ञान करना है तथा उसका ध्येय पूर्ण आत्मा है। कषायकी मन्दता अथवा ज्ञानके विकासकी मुख्यता होगी उसकी दृष्टि संयोग पर जायेगी। आत्माकी ऊर्ध्वताकी रुचि और जिज्ञासा हो उसका प्रयास हुए बिना रहता ही नहीं; आत्माके अनुभवसे पूर्व भी सच्ची जिज्ञासा हो उसे अव्यक्तरूपसे आत्माकी ऊर्ध्वता होती है। अभी आत्मा जाननेमें

www.vitragvani.com

नहीं आया है परन्तु अव्यक्तरूपसे ऊर्ध्वता होती है और अनुभवमें आये तब व्यक्त–प्रगट ऊर्ध्वता होती है। ८३२.

❀ ज्ञायकभाव होनेपर भी दृष्टिमें नहीं आया है और राग पर दृष्टि होनेसे पर्यायमें जो विश्वरूपता–अनेकरूपता प्रगट है उसे अज्ञानी अनुभवते हैं। व्यवहारके विमोहित जीव पर्यायमें जो अनेकतारूप भाव हैं उन्हें अपनेरूप अनुभवते हैं। एकरूप चैतन्य ज्ञायकभाव होनेपर भी पर्यायमें जो अनेकता प्रगट है उसे अज्ञानी अनुभवते हैं। एकरूप चैतन्य ज्ञायकभाव होनेपर भी पर्यायमें अनेकता प्रगट है उसे जो अनुभवता है वह मिथ्यादृष्टि संसारी है। ८३३.

❀ आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। जैसे–बर्फकी बड़ी शीतल शिला होती है, उसी प्रकार आत्मा शीतलताकी विशाल शिला है, अनंत–अनंत अतीन्द्रिय आनन्दकी शिला है, अनंत सर्वज्ञताकी शिला है, आत्मा अर्थात् अनंत प्रभुताकी शिला है, अनंत विभुताकी शिला है।–इसप्रकार अनन्तानन्त गुणोंकी पूर्णानन्दसे भरी हुई विशाल शिला है। वस्तु तो सदाकाल ज्योंकी त्यों रही है। भले ही नरक, निगोद आदिके अनन्त भव किये हों तथापि वस्तु ज्ञानानन्दस्वरूप ज्योंकी त्यों विद्यमान है; उसका अंतरमें विश्वास आना चाहिये। ८३४.

❀ जीवने अपने सहज सुखस्वरूपका एक क्षण भी धीर–गंभीर होकर विचार नहीं किया। यदि विचार करे तो वस्तु बहुत ही सस्ती और सरल है; परन्तु तीव्र जिज्ञासा, लालसा और उत्कंठा होना चाहिये। इस संसारका रस–रुचि छूट जाये तो अवश्य ही आत्मस्वरूप प्रगट हो जाये। ८३५.

❀ पंचपरमेष्ठीके प्रेमकी अपेक्षा इस शरीरके प्रति प्रेम बढ़ जाये तो वह अनन्तानुबंधी लोभ है। ८३६.

❀ आत्माका गुणगान करते–करते भगवान हो जाते हैं। कोई क्रियाकांड करते रहनेसे भगवान नहीं हुआ जाता, किन्तु गुणी ऐसे भगवानका गुणगान करनेसे, महिमा करनेसे भगवान हो जाते हैं। अनंत गुणोंकी महिमा गाते–गाते अनंत जीव केवली हो गये हैं। अनंत गुणरत्नोंके भण्डार खुल गये हैं। भाई! तू पामर नहीं किन्तु प्रभु है, उसके स्वरूपका गुणगान कर। ८३७.

❀ मुनि कहते हैं कि अरे प्रभु! हमें आश्चर्य एवं खेद होता है कि शरीरादि परद्रव्यसे प्रत्यक्ष भिन्न होनेपर भी उसे तू अपना मानता है। अरे! क्या करता है भाई! चौरासीके

www.vitragvani.com

अवतारोंमें भ्रमण करते-करते कठिनाईसे मनुष्यभव मिला और ऐसा सत्य समझनेका सुयोग प्राप्त हुआ; अब तो शरीरसे भिन्न चैतन्य प्रभुका अनुभव कर! ८३८.

❀ एक बात और है कि-कोई पहले पूजा-भक्ति करता हो और यह बात सुनकर तत्त्वविचारमें रहने लगे, तब उससे कोई पूछे कि-यह सुननेका फल क्या? वह कहता है कि भाई! पूजादिकी अपेक्षा इस तत्त्वविचारमें विशेष कषायमन्दता है, इसमें भ्रष्टता नहीं है। तेरी दृष्टि विपरीत है, तेरे साथ पूजादिमें खड़ा दिखायी नहीं देता इसलिये भ्रष्ट हो गया ऐसा नहीं है, इसमें तो शुभभाव बहुत उच्च है। श्री मोक्षमार्गप्रकाशकमें भी यह कहा है। ८३९.

❀ जैसे-दर्पणके योगसे दूरस्थित ऐसे चन्द्र-सूर्य भी निकट भासते हैं-दिखते हैं, उसीप्रकार हे प्रभु! रत्नत्रयरूपी दर्पणमें आप कालसे दूर होनेपर भी निकट भासते हैं-दिखायी देते हैं।

सिद्ध कहीं नीचे नहीं उतरते। परन्तु साधक जीव कहता है कि हे सिद्ध भगवान! आप कहीं नीचे नहीं आते; इसलिये मैं ज्ञान-दर्पणमें एकाग्र होकर आपको अपने ज्ञान-दर्पणमें नीचे उतारता हूँ। ८४०.

❀ जिसे अपने आत्माका कल्याण करना है परन्तु स्वयं मार्ग नहीं जानता ऐसे जिज्ञासु जीवको मार्ग बतलानेवाले ऐसे वीतराग देव-शास्त्र-गुरुका आलम्बन बीचमें नियमसे आता है। अपने भीतर आत्मा क्या वस्तु है, उसका यथार्थ स्वरूप क्या है, उसकी प्राप्ति किस प्रकार हो-आदि कोई खबर नहीं है, और जिन्हें खबर है-अनुभव है ऐसे देव-गुरुको तथा जिनमें पूर्वापर अविरुद्धरूप न्याय एवं युक्तिसे मार्ग बतलाया गया है ऐसे सत् शास्त्रोंको साथ नहीं रखेगा, तो तू भीतर आत्मामें एक डग भी कैसे चल सकेगा? स्वयं जानता नहीं है और जाननेवाले अनुभवी पुरुषोंका समागम नहीं करता, तो अंतरका मार्ग सुने-समझे बिना तू अंतर-प्रयत्न कैसे करेगा? भले ही देव-शास्त्र-गुरु दे नहीं देते, परन्तु जिज्ञासुको मार्ग समझनेमें वे निमित्त हैं या नहीं? आत्मा शरीर, सम्पत्ति आदि परसे बिलकुल भिन्न, शुभाशुभ विभावोंसे कथंचित् रहित है, वह एक समयकी पर्याय जितना भी नहीं है, परन्तु परिपूर्ण अखण्ड ज्ञायकतत्त्व है—ऐसा देव-शास्त्र-गुरु बतलाते हैं या नहीं? निज ज्ञायक आत्माको तू स्वयं नहीं जानता और जो जानते हैं उनकी संगति नहीं करता तो तू आत्मामें एक डग भी नहीं भर सकेगा। ८४१.

www.vitragvani.com

❁ भाई! अपने वर्तमान अंशको तू मानता है, परन्तु वह अंश किसके आधारसे होता है? वह अंश किसका है? क्या वह 'जानने'रूप किसी परमाणु या रागका है? भीतर त्रिकाल ज्ञायकतत्त्व है उसका वह अंश है। वह अंश त्रैकालिक ज्ञायक-अंशीको बतलाता है। पर्याय तो पलटती होनेसे अनित्य ही है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—मोक्षमार्ग—भी पर्याय होनेसे अनित्य है। अरे! केवलज्ञानकी पर्याय भी प्रति समय परिवर्तित होनेसे विनश्वर है, क्योंकि पर्यायकी अवधि ही एक समयकी है, और वस्तु तो त्रिकाल ध्रुव है। ८४२.

❁ 'हे आत्मा!' यदि तुझे मलिनताके भावसे छूटकर—मलिन पर्याय जो मोह, राग, द्वेष एवं दुःखरूप है उससे छूटकर—सम्पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मदशा प्राप्त करना हो, मोक्षकी इच्छा हो, विभावका व्यय और परमानन्दरूपी मोक्षदशाका उपाय करना हो तो निर्विकार एवं निर्विकल्प ऐसे निज चैतन्यके अभेद ध्रुवस्वरूपको ग्रहण कर। आत्मवस्तु-नित्यवस्तु-जोकि अंतरमें ज्ञायकरूपसे विद्यमान है, जिसमें पर्याय तथा गुण-गुणीके भेद भी नहीं हैं, जो ज्ञान, आनन्दादि अनंत ध्रुव गुणोंकी एकतास्वरूप अभेद पदार्थ है, उसे रुचि अंतर्मुख करके ग्रहण कर, उसपर दृष्टि लगा दे। रागके ऊपर दृष्टि वह तो मलिनता है। मलिनता टिकती नहीं है, अच्छी भी नहीं लगती, इसलिये वह आत्माका स्वभाव नहीं है, भगवान आत्मा जोकि चैतन्य-प्रकाशका प्रवाह है, शाश्वत स्थायी और रुचती वस्तु है, ज्ञायकके दिव्य तेजसे सदा प्रकाशित है उसे ग्रहण कर, निर्मलानन्द ज्ञायकप्रभुकी दृष्टि कर, उसे ध्येय बना दे, अपनी वर्तमान श्रद्धापर्यायका विषय बना दे; उसका अंतरसे आदर एवं आश्रय कर तो तेरी अनादिकालीन विभावदशा-दुःखदशा-छूट जायेगी और मुक्तदशा प्राप्त होगी। ८४३.

❁ 'मुझे अपना हित करना है' ऐसी भावना-इच्छा-अभिलाषा जीवने अनंतबार की है, अनादिकालके परिभ्रमणमें अनंतबार दिगम्बर जैन द्रव्यलिंगी साधु हुआ है, किन्तु बाह्यक्रिया और रागके ऊपर दृष्टि रखी इसलिये मिथ्यादृष्टि रहा। मिथ्यादृष्टिको भी 'मुझे आत्मकल्याण करना है' ऐसे परिणाम तो होते हैं, मन्दकषायके कारण उसको लेश्या भी शुभ होती है, परन्तु विविध शुभभावमें सर्वस्व मानकर उसीमें संतुष्ट हो जाता है, शुभरागसे भी भिन्न त्रिकाल शुद्ध ज्ञायकभावका लक्ष नहीं करता। ८४४.

❁ भगवान आत्मा ज्ञानादि अनंत गुणोंका त्रैकालिक ध्रुवपिण्ड है, परन्तु अंतरमें उसकी

www.vitragvani.com

प्रतीति और महिमा नहीं होनेसे जीवको अनादिसे पर्यायके ऊपर ही दृष्टि है। साधु हुआ तब भी पर्यायदृष्टि–पर्यायके ऊपरका लक्ष–नहीं छोड़ा और पर्यायके पीछे पूर्णतत्त्व पूर्णानन्दका नाथ ज्ञायकप्रभु विद्यमान है उसकी दृष्टि नहीं की। वर्तमान पर्यायमें होनेवाले शुभाशुभ भावों पर ही लक्ष है वही पर्यायदृष्टि है। उनपर जिसकी दृष्टि है उसे भीतर जो द्रव्यस्वभाव–आत्मपदार्थ विद्यमान है उसकी खबर नहीं है। पर्याय तो व्यवहारनयसे, अभूतार्थनयसे आत्मा है, वह परमार्थ शुद्ध ध्रुव आत्मा नहीं है। ८४५.

❁ सारी दुनियाका भार अपने सिरपर उठाकर चले उससे भगवान कहते हैं कि–रागका एक कण भी जो परके लक्षसे होता है उसका कर्ता आत्मा नहीं है। अहाहा! यह बात किसे बैठेगी! जिसे भवके दुःखोंसे भयभीत हुआ है उसे प्रभुकी यह बात अमृत जैसी लगेगी। ८४६.

❁ धीर होकर ज्ञानको जरा विचारमें लगा; जिन्हें भूलना है, जिन्हें छोड़ना है, उन सबको भूलकर विचार कर। किसी भी समय परको तो तुझे छोड़ना ही है, तो इसी समय उसे भूलकर तू अपनेको सम्हाल। ८४७.

❁ अहो! यहाँ भगवानका विरह हुआ और तत्त्वकी विपरीत श्रद्धा– आचरणवालोंको रोकनेवाला कोई रहा नहीं। वस्तु अंतरकी है किन्तु लोग बाह्य क्रियाकाण्डमें लग गये! भाई! हम तो वस्तुका जो सत्यस्वरूप है वह कहते हैं, उससे विपरीत श्रद्धावालोंको न रुचे तो क्षमा करना! भाई, विपरीत श्रद्धाका फल बहुत बुरा होता है, इसलिये श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने कहा है कि–'हमारे शत्रुको भी द्रव्यलिंग न हो! हमें किसीके साथ व्यक्तिगत विरोध नहीं है; वे सब भी द्रव्यस्वभावसे तो प्रभु हैं; इसलिये द्रव्यसे तो साधर्मी हैं; इसलिये हमें समभाव है। ८४८.

❁ ज्ञायकको भजनेसे कभी कोई पीछे हटा है? पीछे हटे ऐसा हो ही नहीं सकता–ऐसा वीर-वाणी कहती है। भगवान ज्ञानानन्दस्वभावी है, वह भगवानका मूल्य है, एक समयकी पर्यायका भी मूल्य नहीं है। त्रैकालिक भगवान मूल्यवान है उसका मूल्य है। ज्ञानमें उसके संस्कार डाल! उसका फल तुझे प्राप्त होगा। उलझनकी बात नहीं है। भाई! जन्म–मरण रहित होनेकी बातें बड़ी अलौकिक हैं। ८४९.

❁ समस्त सिद्धांतका सारमें सार तो बहिर्मुखता छोड़कर अंतर्मुख होना है। श्रीमद् राजचंद्रने कहा है कि–"उपजे मोह विकल्पसे समस्त यह संसार, अंतर्मुख अवलोक तो विलय

www.vitragvani.com

होत नहीं बार।'' ज्ञानीके एक वचनमें अनंत गंभीरता भरी है। अहो! भाग्यशाली होगा उसे इस तत्त्वकी रुचि होगी और उसके संस्कार दृढ़ होंगे। ८५०.

❁ संसारमें भटकते-भटकते अनंतबार मनुष्यभव पाकर आत्माको जाने बिना मरा, परन्तु आत्मा क्या वस्तु है उसे नहीं जाना। कभी आत्माका यथार्थ विचार भी नहीं किया, इसलिये यहाँ उसकी महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि बाहरकी चिन्ता-पकड़ छोड़कर जो आत्माके स्वरूपमें स्थिर हुए हैं उन्होंने तो करने योग्य कार्य कर ही लिया है, उनकी क्या बात! परन्तु जगतकी चिन्ता-पकड़ छोड़कर जिसे आत्माकी चिन्ता-पकड़ हुई है कि अहो! अपने आत्माको मैंने अनंतकालसे नहीं जान पाया, अनंतकालमें कभी उसका ध्यान नहीं किया, आत्माको भूलकर बाह्य पदार्थोंकी चिन्तामें ही भटकता रहा हूँ, इसलिये अब सत्समागमसे आत्माको पहिचानकर उसका ध्यान करूँगा-ऐसी आत्माकी चिन्ताका परिग्रह, उसकी पकड़ करता है उसका जीवन भी प्रशंसनीय है। ८५१.

❁ चैतन्यमूर्ति सत्य शिरोमणिका असत्य विकारी रंकभावोंमें जाना, व्याप्त होना अशक्य है। आत्मभगवानका संसारभावोंमें व्याप्त होना असंभव ही है। ऊपर-ऊपरसे ही कृत्रिम पुण्य-पाप उपजते हैं और ऊपरसे ही नष्ट हो जाते हैं, उनको आत्माका आश्रय नहीं मिलता। ८५२.

❁ एक ओर दृष्टिकी अपेक्षासे कहते हैं कि-केवलज्ञान भी करना नहीं है, हो जाता है और चरणानुयोगका कथन चलता है वहाँ यह कहनेमें आता है कि मुनि अट्ठाईस मूलगुणोंका पालन करते हैं। तो जहाँ जैसा है वहाँ वैसा समझ लेना चाहिये।

अट्ठाईस मूलगुण भी राग है, उसे पालनेको कहा जाता है, किन्तु वे सहज होते हैं। रागको मैं पालूँ अर्थात् रागकी रक्षा करते हुए मिथ्यादृष्टि हो जाता है। ८५३.

❁ जैसे-पाँचसौ धनुषकी कायावाले महान पुरुषके पाँवका अंगूठा बालसे बाँधा हो तो उसे कहीं बंधन कहा जाता है? उसी प्रकार चैतन्यशक्ति स्वभावके सामर्थ्यके समक्ष चारित्रगुणकी क्षणिक विकारी पर्यायका बंधन वह कोई बंधन कहलायेगा? ८५४.

❁ सम्यग्दर्शनका अर्थ तो भाई! संपूर्ण परमात्मा दृष्टिमें बैठ गया। ८५५.

❁ यह चैतन्यपिण्ड रागसे पृथक् हो गया फिर तो मात्र ज्ञाता ही है। फिर दृष्टि तो अंतर्मुख कार्य करती है और राग बहिर्मुख रह जाता है।

www.vitragvani.com

अंतर्मुख होनेपर बहिर्मुखताका ज्ञान रहता है परन्तु परिणमन तो अंतर्मुखताकी ओर चलता ही रहता है। ८५६.

❁ यह तो ऐसी बात है कि सादि-अनंत आनन्द ही आनन्द हो जाये और संसार सादि-सांत हो जाता है। उसका फल महान है तो उसका कारण भी महान है और उसका आधार भी महान है—ऐसा उसे प्रथम निःशंकरूपसे भासित होना चाहिये पश्चात् अंतरमें प्रयोग होता है। ८५७.

❁ हे भगवान! आपने तो चैतन्यका भण्डार खोल दिया। उसके समक्ष कौन ऐसा है जिसे चक्रवर्तीका वैभव भी तृणतुल्य नहीं लगेगा? ८५८.

❁ अहो! शरीर पर प्रहार होते हों और भीतर आत्मामें शान्तिका वेदन चलता रहता है। दुनिया देखती है कि दुःखी हैं, ज्ञानी देखते हैं कि सुखी हैं। ८५९.

❁ जो मात्र शास्त्राभ्यासमें ही लग रहा है उसे स्वभावमें आनेके लिये शास्त्राभ्यासका निषेध किया है; परन्तु उसे सुनकर कोई अनपढ़ स्वभावमें तो जा नहीं सकता और शास्त्राभ्यासमें प्रवर्तता नहीं है तो वह निश्चयाभासी है। ८६०.

❁ संयोगको और रागको जो अपना मानता है वह प्राणी राजा हो या देव हो, परन्तु वह पामर प्राणी है, भिखारी है। ८६१.

❁ सिद्धगतिकी अपेक्षा भी तेरे द्रव्यकी महत्ता अनंतगुनी है।

तीनलोकका नाथ होनेपर भी उसे रंक मान लिया है। भाई! सत्को जैसा है वैसा स्वीकार तो वह तुझे उत्तर देगा। ८६२.

❁ ....अहो! निमित्तका हमें काम नहीं है, रागका काम नहीं है, परन्तु क्षयोपशमका भी हमें काम नहीं है। गजबकी बात है न! स्वरूपमें स्थिरताका प्रयत्न ही एक कर्तव्य है। ८६३.

❁ मन-इन्द्रियोंसे जो ज्ञान हुआ उसकी भी जीवको अधिकता रहती है। मुझे इसकी अपेक्षा अधिक ज्ञान है, इसप्रकार वह मन-इन्द्रियोंसे होनेवाले ज्ञानसे अपनी अधिकता मानता-वेदता है। परन्तु वह तो मर जाये—मन-इन्द्रियोंसे जो ज्ञान होता है उससे भी मर जाये—तब (आत्महित) हो ऐसा है। ८६४.

www.vitragvani.com

❁ दृष्टिकी अपेक्षासे तो चारित्रपर्यायकी भी गौणता है। उस पर भी जोर नहीं है। दृष्टिने तो परिपूर्ण वस्तुका अधिकार ले लिया है, तथापि प्रगट करनेकी अपेक्षासे चारित्रका भाव भी आता है, परन्तु उसपर जोर नहीं है। दृष्टिकी अपेक्षासे तो पर्यायमात्रकी गौणता है, पर्यायमात्र अभूतार्थ है, इसलिये हेय है। ८६५.

❁ हे माता! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता, मेरी आरामकी वस्तु मुझे मिल गई है, अपने आरामकी वस्तुको अनुभवनेके लिये मैं वनमें जाता हूँ। जहाँ मनुष्यका पगरव भी न हो वहाँ हम जायेंगे। तुझे तो रुला रहा हूँ परन्तु अब दूसरी माताको नहीं रुलाऊँगा। ८६६.

❁ भगवान सर्वज्ञकी पुकार है कि निजगृहके निधानमें जा, अन्य सब थोथे–व्यर्थ हैं। ८६७.

❁ अध्यात्मकी बात है बहुत थोड़ी किन्तु उसकी महिमा बहुत बड़ी है। ८६८.

❁ कोई भारी प्रतिकूलता आ पड़े, कोई बड़े कठोर मर्मछेदक वचन कहे तो शीघ्र ही शरीरमें स्थित परमानन्दस्वरूप परमात्माका ध्यान करके शरीरका लक्ष छोड़ देना। समताभाव रखना। ८६९.

❁ अरे, मुझमें पर या राग कुछ भी नहीं है—ऐसी प्रतीतिमें तो कितनी कषाय मन्द हो जाती है; उसके स्वच्छन्द होता ही नहीं। भले ही लड़ाई या भोगके परिणाम हों तथापि अनन्तानुबंधी कषाय नहीं है; और मिथ्यादृष्टि त्यागी हुआ हो तथापि अनंतानुबंधी तीव्र कषायी है। ८७०.

❁ बाह्यबुद्धि छुड़वाने, अंतर्बुद्धि करानेको द्रव्यानुयोग है। तेरे अंतरमें आनन्द है—ऐसी श्रद्धा कर। भाई! तू आत्मा है, तेरा आत्मा आनन्दस्वभावसे रहित नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन अर्थात् मुझमें ही आनन्द भरा है ऐसी श्रद्धा करानेके लिये ही द्रव्यानुयोग है। ८७१.

❁ जिह्वा चाहे जितने चिकने पदार्थका ग्रहण करे फिर भी रुक्ष–रूखी रहती है; उसीप्रकार ज्ञानी संयोगोंके समूहमें खड़ा हो तथापि रुक्ष–रूखा रहता है। जिस प्रकार कमल दिन-रात जलमें रहने पर भी जलका स्पर्श नहीं करता, उसीप्रकार ज्ञानी संयोगोंके मध्य रहनेपर भी लिप्त नहीं होता। सोना कीचड़में रहनेपर भी उसे जंग नहीं लगती, उसीप्रकार ज्ञानी संयोगोंमें रहनेपर भी उसे परमें एकत्वबुद्धि नहीं होती। ८७२.

www.vitragvani.com

❁ श्रोता :—निहाल हो जायें ऐसी बात है!

पूज्य गुरुदेव :—निहाल क्या? अंतर्मुहूर्तमें मोक्ष प्राप्त हो ऐसी बात है। अरे, साधक होगा तब भी असंख्य समयमें तो मोक्ष लेकर ही रहेगा। ८७३.

❁ स्वानुभूतिके कालमें अनंत गुणसागर आत्मा अपने ज्ञान–आनन्दादि अनंत गुणोंकी चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायोंमें रमता हुआ प्रगट होता। अहाहा! इन्द्रके इन्द्रासनमें भी जिसकी गंध नहीं है ऐसे आनन्दसे रमता हुआ प्रगट होता है। अनुभूतिके आनन्दकी दशा कोई अद्भुत है, वचनातीत है। ऐसी दशा प्रगट होनेपर सारा जीवन पलट जाता है। राग और कषायके वेदनका जीवन था उससे रहित भगवान आत्माके आनन्दका वेदन आया उस दशाका जीवन अद्भुत है। दुःखकी दशाका जीवन था वह पलटकर आनन्द एवं शान्तिका जीवन हो जाता है। आनन्दमय अनुभूतिमें बारह अंगका सार आ जाता है। ८७४.

❁ अहा! यह बात अन्यत्र मिलना कठिन है। भाई! क्या कहें? यह तो मान छोड़ देनेकी बातें हैं। किसका मान और किसका अपमान? तेरा मान तो तेरी वस्तुमें है। कहा है न!—'होय भव्यता तो बहुमान, हो अभव्य त्रिभुवन अपमान!' त्रिलोकीनाथ ऐसा कहते हैं कि—'यह सम्यग्दृष्टि है, इसने आत्माको जाना है।' यह त्रिलोकीनाथका सम्मान मिला, अब तुझे और किसका सम्मान चाहिये? और यदि त्रिलोकीनाथ कहें कि—'यह अज्ञानी है, रागका आदर करनेवाला है, अपात्र है'–यह भगवानकी ओरसे अपमान हुआ; इसके जैसा दूसरा अपमान क्या होगा? भले ही दुनिया तुझे मानती हो, परन्तु उससे क्या? ८७५.

❁ भगवान आत्मा अनंतानंत ज्ञान-दर्शनादि गुणलक्ष्मीसे भरपूर है, उसके अस्तिपनेकी स्वीकृति नहीं, विश्वास नहीं, और जिसमें स्वयं नहीं है ऐसी अल्पज्ञता एवं रागमें अपनी अस्ति मानना, उपस्थिति मानना वही अज्ञान है और वही बंधका कारण है। अन्य जानकारी नहीं की इसलिये अज्ञान है ऐसा नहीं कहा किन्तु अपने सर्वज्ञ–सर्वदर्शी स्वभावको नहीं जाना वही अज्ञान और बंधका कारण है ऐसा कहा। ८७६.

❁ एक विचार आया था कि सकारी नौकरोंको भी ५५–५६ वर्षकी आयुमें नौकरीसे निवृत्त कर देते हैं तो इन सेठों–व्यापारियोंके लिये ऐसा कोई कानून नहीं होगा कि ५५–५६ वर्षकी उम्रमें धंधेसे निवृत्त होकर अपने आत्माका हित करें? अहाहा! आजीविका मिलनेमें कमी न हो, पैसाका पार न हो फिर भी निवृत्ति लेकर अपने आत्माका

www.vitragvani.com

हित नहीं करते, उन्हें मरकर कहाँ जाना है? अरे! ममताके परिणाममें मरकर तिर्यंच बकरी आदिके पेटसे जन्म लेंगे!

श्रीमद् राजचन्द्र तो कहते हैं कि—मुमुक्षुओंको आजीविका जितना मिलता हो तो विशेष प्रवृत्ति नहीं करना चाहिये। यह तो रोटला मिलते हो तो सिर पर पोटला बाँधता है। अरेरे! जाना है कहाँ? जीवन थोड़ा है और यह क्या करते हो भाई! ऐसा मनुष्यभव मिला है और सत् समझनेका अवसर आया है तो चार- छह-आठ घन्टे स्वाध्याय–श्रवण–मनन–सत्समागम करके अपने आत्माका कुछ हित करके मानवजन्म सफल कर ले। ८७७.

❀ अहो! केवलज्ञान प्राप्त करनेमें कितना धैर्य, क्षमा और समता हो तब केवलज्ञान होता है! नीचे भी कितना निश्चिंत होता है, कितनी धीरज होती है! द्रव्य तक पहुँचनेमें कितनी धीरज हो तब पहुँच सकता है। बाह्यसे बहरा, बाह्यसे मूंगा और बाह्यसे अंधा हो जाता है। ८७८.

❀ नरकमें भयंकर दुःखोंमें एक क्षण बिताना भी कठिन होता है वहाँ सागरोपम कालकी आयु कैसी पूरी हुई होगी? प्रभु! भवभ्रमणके अभावका तूने कभी प्रयत्न नहीं किया इसलिये ऐसे असह्य दुःख तूने सागरोपम तक अनंतबार भोगे हैं। नरकके दुःख करोड़ों जीभोंसे और करोड़ों भवमें नहीं कहे जा सकें ऐसे दुःख तूने सहन किये हैं। प्रभु! जो दुःख सुने न जा सकें उनमें अनंतानंतकाल बिताया है। अनंतकालमें एकबार मिले तब भी अनंतबार मनुष्यभव मिला, और उसकी अपेक्षा असंख्यगुने अनंत नरकके भव तूने किये, वहाँ असह्य दुःख सहन किये, उनका गंभीरतासे विचार तो कर भाई! ८७९.

❀ बहिनके (बहिनश्रीके) वचनामृतमें आता है कि हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा। जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मामें रुचे ऐसा है इसलिये वहाँ उपयोग लगा दे। प्रवचनसारमें तो कहते हैं कि शुभ–अशुभ दोनों भाव दुःखरूप हैं। अशुभके फलमें नरक और शुभके फलमें स्वर्गके भोग मिलते हैं, किन्तु उस भोगमें लक्ष जाये वह भाव भी अशुभ होनेसे दुःख है। इसलिये अशुभका फल नरक और शुभका फल स्वर्ग वहाँ भी दुःख ही है तो शुभ–अशुभके फलमें अन्तर कहाँ रहा? वे दोनों ही दुःखके कारण हैं तो शुभको अच्छा कैसे कहा जायेगा? प्रभु! जिनके फलमें दुःख है ऐसे शुभ तुझे क्यों रुचते हैं? ८८०.

www.vitragvani.com

❁ अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप निज आत्मामें एकाग्रता करनेवाला जीव स्वतः अपनेमें एकाग्रता करता है। स्वतः सेवा करता है। उसमें उसे अन्य द्रव्योंकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। अन्य द्रव्य ज्ञानमें ज्ञात हों तो भले हों, परन्तु वे मुझे किंचित् हितकारी नहीं हैं। ऐसा निर्णय पहले होना चाहिये। निर्णयकी भूमिका यथार्थ हुए बिना हितका मार्ग हाथ नहीं आ सकता; इसलिये प्रथम यथार्थ निर्णय करो। ८८१.

❁ ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा? यदि यह भव व्यर्थ गवाँ दिया तो फिर ऐसा उत्तम योग प्राप्त नहीं होगा। तू विपरीत मान्यता छोड़नेके लिये प्रयत्न कर अर्थात् चाहे जैसे प्रसंग हों मिथ्यात्व छोड़नेका उग्र प्रयत्न कर। तू शाता-अशातामें रुक गया परन्तु वह तो तुझसे भिन्न है। अभी अनुकूलता नहीं है इसलिये फिर प्रयत्न करूँगा—ऐसे तू अटक गया है, परन्तु शाता-अशातासे तो तू भिन्न है। शरीरमें रोग या निरोगता हो परन्तु वह तो तुझसे भिन्न हैं। अरे! शुभाशुभ भावोंसे भी तू भिन्न है। शुभाशुभभाव तो आकुलतामय हैं। भगवानकी भक्ति-पूजा-स्मरण या शास्त्ररचना-वन्दना यह सब शुभभाव तो आकुलतामय भाव हैं, प्रभु तो उनसे भिन्न निराकुल ज्ञायक है। ८८२.

❁ लोग तो ऐसा मानते हैं कि बाह्यमें फेरफार कर दें और बाह्य संयोग-साधन जुटाकर उनमेंसे सुख प्राप्त कर लें, किन्तु भाई! तेरा सुख संयोगोंमें नहीं है। अरे! देखो तो सही! यह सर्वज्ञकी वाणी! संतोंकी रचना तो देखो! सर्वज्ञके मार्गके सिवा दूसरेका एक अक्षर भी सच्चा नहीं है, दूसरा तो सभी विपरीत है। सत्य बात समझनेसे पूर्व भी गहरे-गहरे उसका बहुमान करके जो स्वीकार करता है उस जीवको अन्य विपरीतताका आदर करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा तो फेर पड़ा है। भले ही अभी स्वभावकी दृष्टि नहीं प्रगट हुई हो, किन्तु सत्यका आदर किया उसमें भी उतना तो फेर पड़ा है या नहीं? भवका अभाव तो स्वभावकी दृष्टि करेगा तभी होगा परन्तु उससे पूर्व असत्यका पोषण छोड़कर सत्यके आदरका भाव भी जिसे न आये उसको तो स्वभावमें जानेकी पात्रता भी कहाँसे आयेगी? अखण्ड स्वभावकी दृष्टि प्रगट होनेसे पूर्व उसके बहुमानपूर्वक श्रवण-मननका भाव आये बिना नहीं रहता। सत्यका स्वीकार करके उसका आदरभाव भी जो नहीं करे उसे तो अंतरस्वभावकी दृष्टि प्रगट करनेका अवसर भी नहीं आता। ८८३.

❁ 'सतिया सत् नहिं छोड़िये, सत् छोड़े सत् जाय।'

ऐसा 'उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तम् सत्' है। प्रत्येक पर्यायका उत्पाद अपनेसे सत् है। वह

www.vitragvani.com

सत् पर्यायको इधर-उधर नहीं करेगा। दूसरेसे सत् पर्यायका उत्पाद होगा ऐसा नहीं मानना। जिस पर्यायका उत्पाद होता है वह पूर्व पर्यायके व्ययसे–अभावसे होता है, परन्तु निमित्तसे उत्पाद नहीं होता। भाई! सुखी होना हो तो सत् जैसा है वैसी अपनी श्रद्धा रखना। अहाहा! ऐसी स्वतंत्रताकी बात जैनदर्शनके अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं है। ८८४.

❁ विकल्प होता है वह क्रिया है, वह क्रिया परिणामसे भिन्न नहीं है और परिणाम द्रव्यसे भिन्न नहीं है। इसलिये विकल्पका कर्ता स्वयं है, पर उसका कर्ता नहीं हैं। जीवके परिणाम अपनेसे हैं परसे नहीं हैं ऐसा माने तब तो अभी व्यवहार- श्रद्धा है। सम्यग्दर्शनकी क्रिया परिणाम है, वह परिणाम द्रव्यसे अभिन्न होनेके कारण सम्यग्दर्शनका कर्ता जीव स्वयं है; दर्शनमोहका अभाव उसका कर्ता नहीं है। दिव्यध्वनिसे ज्ञान नहीं होता, महामुनिके उपदेशसे ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ज्ञानकी क्रिया परिणामस्वरूप है, वह परिणामसे भिन्न नहीं है और परिणाम द्रव्यसे–जीवसे भिन्न नहीं है। इसलिये ज्ञानकी क्रियाका कर्ता जीव है परन्तु दिव्यध्वनि या महामुनिका उपदेश ज्ञानका कर्ता नहीं है। केवलज्ञान हुआ उसका कर्ता घातिकर्मका अभाव नहीं है अथवा वज्रनाराचसंहननके कारण केवलज्ञान नहीं हुआ है, केवलज्ञानका कारण द्रव्य स्वयं ही है। ८८५.

❁ मोक्षपाहुड़में 'परदव्वाओ दुग्गई' कहा है और प्रवचनसारमें कहा है कि परद्रव्य ऐसे अरिहंतको जाननेसे सम्यग्दर्शन होता है; परन्तु उसका अर्थ?—ऐसा है कि—मेरा आत्मा अरिहंत जैसा और जितना है, ऐसा जाननेके लिये अरिहंतके द्रव्य–गुण–पर्यायको जानता है वह आत्माको जानता है। शास्त्रमें तो ऐसा कहते हैं कि परलक्षी ज्ञान वह आत्मज्ञानका कारण नहीं है और यहाँ उसे कारण कहते हैं। श्री समयसारकी ३१वीं गाथामें ऐसा कहते हैं कि इन्द्रियसे होनेवाला भाव-इन्द्रियज्ञान वह इन्द्रियज्ञान है, भगवानके लक्षसे तथा भगवानकी वाणीसे हुआ ज्ञान वह परलक्षी ज्ञान है। उसका लक्ष छोड़कर अपने स्वभावके लक्षमें जाता है–अतीन्द्रिय आनन्दकी दशामें उसे अनुभवता है उसे जितेन्द्रिय जिन कहते हैं। श्री प्रवचनसारमें कहा है कि जो कोई वास्तवमें अरिहंतके द्रव्य–गुण–पर्यायको जानता है अर्थात् उन जैसा ही मैं हूँ ऐसा जानकर आत्माकी ओर उन्मुख होता है उसने यथार्थरूपसे अरिहंतको जाना है। जिसने अरिहंतके द्रव्य–गुण–पर्यायको जानकर वहाँ खड़ा रहना उसकी बात नहीं ली। किस अपेक्षासे है भाई! उसे समझना चाहिये। ८८६.

❁ हे जीव! तू अव्यक्त है उसे तू जान। जाननेवाली पर्याय किसे जानती है?–

www.vitragvani.com

कि अव्यक्तको जानती है। आचार्यदेवको करुणाका विकल्प आया है इसलिये यह शुद्धात्माका उपदेश किया है। शुद्ध चैतन्यघन है वहाँ दृष्टि करनेसे वर्तमान पर्यायमें शुद्ध आनंदकंदका भाव प्रगट होता है। यहाँ यही कहते हैं कि अपने जीवकी अपेक्षासे छह द्रव्यस्वरूप लोक यह जीव नहीं है इसलिये अजीव है। छह द्रव्यस्वरूप लोक कहकर छह द्रव्य सिद्ध किये और फिर कहा कि वह लोक ज्ञेय है ऐसा हे जीव! तू जान। छह द्रव्यस्वरूप लोक वह व्यक्त है, प्रगट है, बाह्य है और अंतरमें अव्यक्त सूक्ष्म है उस जीवको तू जान!– ऐसा कहते हैं। ८८७.

❀ अपने परिणामकी धाराका अपने अंतरमें ख्याल आ जाता है, बराबर ख्याल आ जाता है और दूसरा ज्ञानी जीव भी उसे जान सकता है। 'धवला' टीकामें मतिज्ञानके भेदकी–अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाकी–व्याख्या आयी है, वहाँ ईहा ज्ञानमें ऐसा कहा हैं—'सामनेवाला जीव भव्य है या अभव्य' ऐसी जिज्ञासाके निर्णयरूप अवायज्ञानमें 'वह भव्य ही है क्योंकि उसके सम्यक्रत्नत्रयका सद्भाव है'—इसप्रकार एक जीव दूसरे जीवकी भव्यताका निर्णय कर सकता है। भाई! ज्ञानका स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, वह क्या नहीं जानेगा? बाह्यमें द्रव्यलिंग सच्चा हो और भीतर मिथ्यात्वकी भूल होय तो ज्ञानीके ख्यालमें आ भी जाती है; फिर भी दूसरोंसे कहता नहीं है; क्योंकि यदि उसकी प्ररूपणा सच्ची होती हो, भले ही अंतरमें अनुभव न हो परन्तु आचरण आगमानुसार निर्दोष हो तो उसे भी व्यवहारसे पूज्यनीय कहा जाता है। परन्तु दया, दान, व्रत, तप करो, वह करते-करते कल्याण हो जायेगा—ऐसी जिसकी प्ररूपणा और श्रद्धा ही प्रगटरूपसे मिथ्या है उसके तो प्रगटरूपसे विपरीतता ही है। अहा! कठिन बात है भाई! ८८८.

❀ अरेरे! जिस पर जीवको अत्यन्त प्रेम है ऐसा यह शरीर वास्तवमें केवल वेदनाकी मूर्ति है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भावपाहुड़में कहते हैं कि–एक अंगुलमें छियानवे रोग तो पूरे शरीरमें कितने? विचार तो कर प्रभु!—यह शरीर तो जड़ है, वेदनाकी मूर्ति है। भगवान ज्ञायक आत्मा आनन्दकी मूर्ति है, चैतन्यचमत्कारसे भरपूर महाप्रभु है कि जिसकी पूर्ण पर्याय प्रगट होनेपर तीनकाल और तीनलोकको युगपद् देखते हैं। ऐसी अनंत पूर्ण पर्यायोंकी शक्तिका पुंज ऐसा ज्ञानगुण, ऐसी अनंत श्रद्धा पर्यायोंकी शक्तिका पुंज ऐसा श्रद्धागुण, ऐसी अनंत स्थिरता पर्यायोंकी शक्तिका पिण्ड ऐसा चारित्रगुण, पूर्ण आनन्दकी पर्यायका ध्रुवतल ऐसा आनन्दगुण—ऐसे अनंतानंत गुण परिपूर्ण शक्ति सहित भीतर भगवान

www.vitragvani.com

आत्मामें विद्यमान हैं। अहा! इस परिपूर्ण द्रव्यस्वभावके अवलम्बनसे केवलज्ञानादि परिपूर्ण पर्यायें प्रगट होगी; मोक्षमार्ग जोकि अपूर्ण पर्याय है उसके आश्रयसे भी परिपूर्ण पर्याय प्रगट नहीं होगी। पूर्ण ज्ञानानन्दकी शीतल शिला—ध्रुव द्रव्यस्वभाव—भीतर सदा विद्यमान है, उसका आश्रय लेगा तो सम्यग्दर्शन होगा, उसका उग्र आश्रय लेगा तो चारित्र होगा और उसके पूर्ण आश्रयसे केवलज्ञानादिकी पूर्ण दशा प्रगट होगी। छूटनेका मार्ग ऐसा है भाई! ८८९.

❀ श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रममें थे, जवाहिरातका व्यापार करते थे। उन्हें आत्मज्ञान हुआ था। वे एक भव करके मोक्ष जायेंगे। स्वभावका अनुभव है परन्तु जो रागका भाग है वह अभी छूटता नहीं है; इसलिये कहते हैं कि—अशेष कर्मका भोग भोगना बाकी है, इसलिये एक देह धारण करके स्वरूप-स्वदेशमें जायेंगे। हमारा मूल वतन तो आनन्दादि अनंत गुणोंके पिण्डस्वरूप असंख्यातप्रदेशी आत्मद्रव्य है; वही हमारा स्वदेश है। वर्तमान दशामें हमें थोड़ा रागका भाग है, और ऐसा लगता है कि वह कुछ काल रहेगा, इसलिये हमारे आत्मामें भीतरसे ऐसा भाव आता है कि एक भव पश्चात् हम केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्षमें जायेंगे। ''तेथी देह एक ज धारीने जाशुं स्वरूप स्वदेश रे....' फिर कहते हैं कि—''हम परदेशी पंछी साधुजी, आरे देशके नाहीं रे....'' पुण्य और पापके–रागके देशके हम नहीं हैं। दया, दानादिके जो विकल्प आते हैं वह विभाव है–परदेश है, उस देशके हम नहीं हैं। वचनामृतके ४०१वें बोलमें बहिनश्रीने भी कहा है–ज्ञानीका परिणमन विभावसे विमुख होकर स्वरूपकी ओर ढल रहा है। ज्ञानी निजस्वरूपमें परिपूर्णरूपसे स्थिर हो जानेको तरसता है। स्वरूपकी स्थिरतामें कब पूर्ण हो जाऊँ, इसप्रकार अंतरसे तरसता है। यह बाहरी मिट्टीके ग्राम–नगर हमारा देश नहीं हैं किन्तु भीतर जो दया, दान, व्रत, तपादि पुण्यके–व्यवहाररत्नत्रयके भाव उठते हैं वह भी हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। सम्यग्दृष्टिको शुभराग भी बिलकुल नहीं रुचता। ज्ञानी कहते हैं—विभावस्वरूप परदेशमें हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्तगुणरूप हमारा परिवार बसता है वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं। ८९०.

❀ अरेरे! यह शरीर छूट जायेगा भाई! कहाँ जाकर उतरेगा? भीतर अपनी

www.vitragvani.com

ज्ञायकवस्तुकी दृष्टि नहीं की और रागके प्रेममें रुक गया तो चौरासीके अवतारमें परिभ्रमण करेगा; क्योंकि आत्मा तो अनंतकाल रहनेवाला है। यह शरीर तो छूट जायेगा न? फिर कहाँ रहेगा? जिसे रागका रस है वह तो मिथ्यात्वमें–परिभ्रमणमें रहेगा और जिसे आत्माका रस है वह तो सादि–अनंतकाल आत्मामें–सुखमें रहेगा। ८९१.

❀ प्रभु! तुझमें अनन्तानन्त अगाध शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज आनन्द, सहज वीर्यादि अनंत गुण—जिनकी अनन्तताका कोई पार नहीं ऐसी अनन्तानन्त शक्तियाँ–तुझमें सदा विद्यमान हैं। तुझमें तेरा वैभव भरपूर पड़ा है, उसमें कुछ भी बाहरसे नहीं लाना है। समस्त विश्वको एक समयमें जाननेवाला ऐसी अनन्त सामर्थ्यवाली केवलज्ञानकी एक समयकी पर्याय और ऐसे अन्य अनन्त गुणोंकी एक समयमें परिपूर्ण पर्याय–यह सब प्रगट होनेकी अगाध शक्ति तुझमें है। प्रभु! तू अन्यत्र कहाँ खोजने जाता है? अरेरे! कस्तूरी अपने पास होनेपर भी हिरन खोजनेको दौड़ता है जंगलमें! यह जीव भी शक्ति है भीतर और खोजने जाता है बाहर। वह भी हिरन जैसा ही है–'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।' अपनी अगाध शक्तिकी प्रतीति और ज्ञान नहीं है वह रागको तथा परको अपना मानकर, मृगकी भाँति चार गतियोंमें भटकता है। ८९२.

❀ मुनिराज इसप्रकार–परिणमित हो गये हैं मानों वीतरागताकी मूर्ति हों! राग-द्वेषके अंशरहित मात्र वीतरागताकी मूर्ति हैं मुनिराज। मुनिको तो तीन कषायका अभाव हुआ है, उन मुनिराजको शान्तिका सागर उछलता है। भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति है और मुनिराज तो पर्यायमें वीतरागकी मूर्ति हैं। श्री नियमसारके कलशमें तो कहा है कि अरेरे! हम जड़मति हैं कि मुनिराजमें और सर्वज्ञमें भेद मानते हैं। अहाहा! मुनिराज तो मानों साक्षात् वीतरागकी मूर्ति हों इसप्रकार परिणमित हो गये हैं—उन्हें मुनि कहते हैं। ८९३.

❀ परमात्मतत्त्वके ज्ञान बिना भ्रान्तिगतरूपसे जीव शुभाशुभका कर्ता होता हुआ शुभभावकी रुचिके समक्ष मोक्षमार्गकी लेशमात्र वांछा नहीं करता, उसकी भावना नहीं भाता ऐसे अज्ञानी जीवको इस लोकमें कुछ भी शरण नहीं है। अज्ञानी जीव लोकमें अशरणरूपसे भ्रमण करता रहता है। ८९४.

❀ जब यहाँ शुभभाव हुआ उसी समय शाता वेदनीय कर्म बंधा, वह पर्याय उसके क्रमबद्धमें थी वैसी ही हुई है उस क्षण कर्मकी पर्यायका उत्पत्तिकाल था–क्रम था तदनुसार हुई है वह क्रमबद्ध सिद्ध हुआ। अब अज्ञानीका शुभराग है वह नवीन कर्मबंधमें निमित्तकर्ता

www.vitragvani.com

है। कर्मबंधकी पर्याय अपने उपादानरूप हुई उसमें अज्ञानीका शुभराग निमित्तकर्ता है, इसप्रकार उपादान-निमित्त सिद्ध हुए। तथा शुभराग कर्मबंधमें निमित्त होता है परन्तु मोक्षमें निमित्त नहीं होता अर्थात् शुभरागसे निश्चय नहीं होता अर्थात् व्यवहारसे निश्चय होता है वह बात भी उड़ गई। इसप्रकार निश्चय-व्यवहार सिद्ध हुए। राग आया वह उसकी उत्पत्तिका जन्मकाल था और कर्मकी प्रकृत्ति बँधी वह उसके जन्मक्षणमें बँधी है तथा ज्ञानीको उसका ज्ञान भी अपने स्वकालमें हुआ है। इसप्रकार यह सब परिणमन क्रमानुसार हुआ है, अक्रमसे हुआ ही नहीं-ऐसा सिद्ध हुआ। ८९५.

❁ ज्ञानमें ऐसा निश्चित् तो कर! वस्तुका स्वरूप ऐसा है उसका ज्ञानमें निर्णयको अवकाश तो दे भाई! अरे, मरकर कहाँ जाना है! प्रत्येक योनिमें अनन्त भव बिताये; अब परसे लक्ष हटाकर आत्मामें डुबकी लगा! तू अपने घरमें प्रवेश कर न! यह सब शुभ विकल्प होते हैं, परन्तु वह तेरे घरकी वस्तु नहीं है, भगवान! तू तो शरीरकी पीड़ा और रागकी पीड़ा-दोनोंसे भिन्न है। उस शरीरके रोगकी तुझे जो अरुचि है वह तो द्वेष है-वह एक भी वस्तु तेरे घरमें नहीं है। ८९६.

❁ व्यवहार द्वारा परमार्थका प्रतिपादन होनेसे और परमार्थको व्यवहारके बिना समझना अशक्य होनेसे, परमार्थके प्रतिपादक रूपमें व्यवहारका स्थापन करना पड़ता है; परन्तु व्यवहार आदरने योग्य नहीं है। व्यवहार निश्चयको बतलाता है तथापि व्यवहार द्वारा निश्चय साध्य न होनेसे व्यवहार आदरणीय नहीं है, मात्र परमार्थके प्रतिपादन हेतु स्थापने योग्य है। ८९७.

❁ जिस-जिस द्रव्यकी जिस-जिस कालमें जो-जो क्रिया हो रही है उसका निमित्तकर्ता भी आत्मा नहीं है। परद्रव्यस्वरूप नोकर्मकी क्रियामें तथा जड़कर्मकी क्रियामें यदि आत्माको निमित्तकर्ता माना जाये तो आत्माको परद्रव्यकी सर्व अवस्थाओंमें नित्य उपस्थित रहना पड़ेगा, अर्थात् नित्य-कर्तृत्वका प्रसंग आ जायेगा। आत्मद्रव्य यदि जगतकी क्रियामें निमित्तकर्ता हो तो जगतकी जो-जो क्रियाएँ हों उनमें आत्माको नित्य उपस्थित रहनेका प्रसंग आयेगा। यदि द्रव्य निमित्तकर्ता हो तो प्रत्येक क्रियामें द्रव्यको निमित्तकर्तारूपमें सदा उपस्थित रहना पड़ेगा। इसलिये परद्रव्यकी क्रियाका आत्मा निमित्तकर्ता भी नहीं है। ८९८.

❁ भगवान चैतन्यदेव ज्ञानानन्दकी पूर्णतासे भरपूर अद्भुत ज्ञायक पदार्थ है। उसमें राग तो नहीं है किन्तु अपूर्णता भी नहीं है। उस ज्ञायक आत्मामें प्रविष्ट होकर अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्मसम्पदा प्राप्त करना ही हमारा-मुनियोंका विषय है। व्यवहार- रत्नत्रयका

www.vitragvani.com

शुभराग वह भी हमारा विषय नहीं है, क्योंकि वह शुभभाव आस्रव है, बंधका कारण है। चैतन्यप्रभु अंतरमें महा सम्पदासे भरपूर है। रुपया-पैसा, हीरा-माणिक तो आत्माकी सम्पदा नहीं है, परन्तु पुण्य भी सम्पदा नहीं है; वह तो विपदा-आपदा है। मुनिराज कहते हैं कि—पंचमहाव्रतका पालन करना वह हमारा विषय नहीं है; भीतर आनन्दस्वरूपमें स्थिर हो जाना वह हमारा विषय है-हमारा कर्तव्य है। ८९९.

❁ जिसे जिसकी आवश्यकता लगे उसे वही रुचता है। जिसे भगवान आत्माकी रुचि हो उसे वही अच्छा लगता है-सुखरूप दिखायी देता है, अन्य सब बाधारूप लगते हैं; बीचमें देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा आदिका शुभ विकल्प आता है परन्तु वह दुःखरूप लगता है। भीतर आनन्दस्वरूपकी रुचिमें भगवान आत्मा सुखरूप लगता है। अहा! ऐसा मार्ग है भाई! लोगोंने धर्मका मार्ग छिन्न-भिन्न कर दिया है; किसीने किसीमें और किसीने किसीमें धर्म माना है। ले लो आजीवन ब्रह्मचर्य, वस्त्र उतारो और हो जाओ नग्न; परन्तु भाई! इसमें खाक भी धर्म नहीं है। ऐसा बाह्य नग्नपना तो अनंतबार धारण किया है। आत्मा कि जिसमें रागकी वृत्तिके वस्त्र भी नहीं हैं ऐसी त्रैकालिक ज्ञायकवस्तु उसे पहले पहिचानकर—उसका अनुभव करके जिसे निजघरमें जाना है उसे दूसरा सब दुःखरूप लगता है। ९००.

❁ भाई! हम तो आत्मा हैं और आत्मा तो एक समयकी पर्यायके समीप पर्यायसे भिन्न, शुभाशुभरागसे भिन्न, शरीर-वाणी-लक्ष्मी तथा नामसे भी भिन्न भीतर पातालमें पड़ी हुई ज्ञायक वस्तु है। आत्मवस्तु सदा अपना ध्रुव परिपूर्ण सामर्थ्य रखकर रही है, वह कहीं एक समयकी पर्यायमें सम्पूर्ण नहीं आ गई है। अरेरे! तत्त्वकी ऐसी बात जीवको कहीं सुननेको भी नहीं मिलती! जीवन चला जा रहा है, मौतकी नौबत सिरपर बज रही है। एक समय ऐसा आयेगा कि तेरी यह सुन्दर काया राख होकर मिट्टीमें मिल जायेगी।—

तीतर खाये बाज ज्यों, बगला मछली खाय,
जलकर होगी राख त्यों, तेरी कंचन-काय।

मृत्यु चेतावनी देकर नहीं आयेगी कि 'मैं आ रही हूँ, तैयारी रखना।' क्या मृत्यु कहकर आती है? शरीर जड़ है, संयोगी है, वह तो अवधि समाप्त होनेपर पृथक् हो जायेगा। ९०१.

❁ शुभ विकल्पको उत्पन्न करना यही एक तो नपुंसकता है, और फिर शुभ विकल्प ही मैं हूँ वह तो नपुंसकतासे भी बड़ी नपुंसकता है। ९०२.

www.vitragvani.com

❁ इस जीवका अंतरंग रुचिपूर्वक मनन और मंथन वह आगे बढ़नेका मार्ग है। स्वरूपके प्रति उसे प्रेमकी आवश्यकता है; ज्ञान कम-अधिक हो उसकी कोई बात नहीं। ९०३.

❁ अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रके तलमें मात्र रत्न ही भरे हैं, उसमें रेत नहीं है, उसीप्रकार भगवान आत्माके तलमें-सत्त्वमें अकेली चैतन्यशक्तियोंरूप रत्न ही भरे हैं उसके तलमें रेत अर्थात् रागादि नहीं हैं। ९०४.

❁ केवलज्ञानकी एक समयकी पर्याय इतनी बड़ी है कि तीनकाल-तीनलोक उसमें ज्ञात होते हैं, परन्तु सामने ज्ञेय हैं इसलिये केवलज्ञान है ऐसा नहीं है और केवलज्ञान है इसलिये लोकालोक ज्ञेय है ऐसा भी नहीं है। अनंत केवली और सिद्ध भी ज्ञेय हैं। उन ज्ञेयोंके कारण साधक जीवको केवलीका बहुमान नहीं आता; परन्तु अपनी न्यूनताके कारण बहुमान आता है। ९०५.

❁ पर्यायका अन्तर मिटानेके लिये द्रव्य-गुणमें अन्तर नहीं है ऐसी दृष्टि करनेसे पर्यायका अन्तर मिटकर परमात्मा होता है। ९०६.

❁ निहालभाई कहते हैं न! कि आसन जमाकर बैठ जा, अर्थात् ध्रुवमें आसन लगाकर बैठ जा....यह बात सच्ची है। ९०७.

❁ आचार्य आत्माकी बात कहते हैं तब कोई कहे हमारा काल पकने दो, कषायकी मन्दता होने दो, व्यवहार कुछ सुधरने दो; वह तो जब लक्ष्मी टीका करने आयी तब मुँह फेरने जैसी बात है। ९०८.

❁ इस कार्यके लिये बहुत पुरुषार्थ चाहिये, बड़ी पात्रता चाहिये, पुण्य-पापमेंसे सुखबुद्धि उड़ जाना चाहिये, सुखबुद्धि कहो या हितबुद्धि वह उड़ जाना चाहिये। ९०९.

❁ जिसप्रकार आँखमें कण खटकता रहता है उसीप्रकार ज्ञानीको पर्यायमें राग हो वह खटकता रहता है। ९१०.

❁ ज्ञाता-दृष्टाके अनुभव बिना अज्ञानीको जो विकल्प आते हैं वह उसका 'कर्तव्य' बन जाते हैं। ९११.

❁ अरे, उसे रुदन भी नहीं आया कि मुझे अपना विरह! ९१२.

www.vitragvani.com

❁ पाँच पद शरणरूप हैं अर्थात् पाँच पदरूप अपना आत्मा ही शरणरूप है। कहा है न! कि वर्तमानमें सिद्धदशा तो नहीं है तो सिद्धोंका ध्यान कैसे होगा? सब झूठमूठ है! अरे, अंतरमें शक्तिरूप सिद्धस्वभाव तो वर्तमानमें मौजूद है और इसलिये उसका ध्यान करनेसे प्रत्यक्ष शान्तिका वेदन होता है। आत्मा स्वभावसे त्रिकाल सिद्धस्वरूप ही है। ९१३.

❁ जैसे किसी छोटे बच्चेको कुत्ता काटने आये तो वह वहाँसे दूर भागकर अपने माँ–बापके पास दौड़ जाता है और उनसे लिपट पड़ता है। उसीप्रकार अपना आत्मा महान है, वह बड़ा आधार है, उसकी शरणमें जा। ९१४.

❁ ....धीर होकर ज्ञानको जरा विचारमें लगा। जिन्हें भूलना है, छोड़ना है उन सबको भूलकर विचार कर। किसी भी समय–कभी भी परको तो तुझे छोड़ना ही है, तो इसी समय–अभी उसे भूलकर तू अपनेको सम्हाल! ९१५.

❁ किसी भी समय किसी भी प्रसंगमें भगवानको नहीं भूलना। अपने भगवानको सदा दृष्टिमें रखना। उसमें लीनता वही मोक्षमार्ग है; उसे कभी नहीं भूलना। तेरा भगवान शुद्ध अस्तित्वमात्ररूप है उसे किसी भी परिस्थितिमें भूलना नहीं। ९१६.

❁ श्रोता :—आप प्रतिज्ञा तो कुछ करवाते नहीं हैं?

पूज्य गुरुदेव :—प्रतिज्ञा करो कि पुण्य-पाप मेरे नहीं हैं, परकी क्रिया मैं नहीं कर सकता, मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ, सम्यग्दर्शन मेरी वस्तु है, पुण्य–पाप मेरे नहीं हैं।—इसप्रकार पहले मिथ्यात्वको टालनेकी प्रतिज्ञा होती है। भाई! एकबार नियम तो ले, सोगन्ध तो खा कि आत्माके पूर्णस्वभावके अतिरिक्त मुझे कुछ भी ग्राह्य नहीं है। ९१७.

❁ श्रोता :—प्रभु! मैं संसार-रोगसे पीड़ित रोगी हूँ; उस रोगको मिटानेवाले डॉक्टर आप हैं, इसलिये आपके पास आया हूँ।

पूज्य गुरुदेव :—कोई रोगी है ही नहीं। मैं रोगी हूँ ऐसी मान्यता छोड़ देना चाहिये। मैं तो निरोगी परमात्मस्वरूप ही हूँ। ९१८.

❁ श्रोता :—अज्ञानी जिज्ञासु जीव स्वभाव और विभावका भेदज्ञान करनेका प्रयत्न करता है, परन्तु स्वभावको देखा नहीं है तो विभावको उससे भिन्न कैसे कर सकेगा?

पूज्य गुरुदेव :—यदि जिज्ञासु जीवने पहले स्वभावको देखा हो तो उसे भेदज्ञान कराना कहाँ रहा? जिज्ञासुको पहले अनुमानसे निर्णय करना है कि यह परकी ओरका भाव

www.vitragvani.com

है वह विभाव है और अंतरोन्मुख होना वह स्वभाव है। परोन्मुखताके भावमें आकुलता और दुःख है तथा अन्तरोन्मुखताके भावमें शान्ति है—इसप्रकार पहले स्वभावका अनुमानसे निर्णय करता है। ९१९.

❁ हे प्रभु! मैंने परको अपना माना और स्वको भूल गया, उस महान अपराधके लिये हे नाथ! मुझे क्षमा करो—इसप्रकार अपने आत्मासे क्षमा याचना करना है। अरे! उसे आत्महितकी चिन्ता होना चाहिये कि मेरा क्या होगा? पैसा कमानेके लिये लोग अफ्रीका, अमेरिका आदि दूरके देशोंमें जाते हैं और कितनी मेहनत करते हैं, तो अपने आत्माके लिये भी प्रयत्न करना चाहिये न! ९२०.

❁ श्रोता :—रागसे लक्ष हटकर स्वरूपमें कैसे जाये?

पूज्य गुरुदेव :—किसी वेदनाके कालमें अन्य किसी अनुकूलताकी घटना हो जाये तो रोगमेंसे लक्ष हटाकर आनन्दित हो जाता है; उसीप्रकार स्वरूपकी महिमा करे तो....अपूर्व महिमा आने पर रागकी ओरसे लक्ष हटाकर स्वरूपकी रुचि और लक्ष हो जाता है। ९२१.

❁ श्रोता :—अरिहंतादिके प्रति रागका अंश भी अनर्थ-परम्पराका मूल है, यह बात जानकर आघात नहीं लगेगा?

पूज्य गुरुदेव :—अरे! अरिहंतादिके प्रति राग भी मुझे बंधका कारण है ऐसा जानने पर तो वीर्य स्फुरित होता है। वीर्यमें उल्लास आता है; आघात नहीं लगता। ९२२.

❁ जैसे स्वभाव सत् है वैसे ही राग भी उत्पादरूपसे सत् है। रागपरिणाम अपनी पर्यायमें हैं इसलिये आत्मा उनका कर्ता है। निश्चयनयसे आत्मा रागपरिणामोंका कर्ता है, क्योंकि अपनी पर्यायमें राग होता है, उस रागका कर्ता जड़कर्म नहीं किन्तु आत्मा उनका कर्ता है। राग अपनेसे अपनी पर्यायमें है—ऐसा जानकर स्वद्रव्यके आश्रयसे उसे छोड़ना। रागका कर्ता स्वयं है और उसे छोड़नेवाला भी स्वयं है ऐसा जानकर त्रैकालिकके अवलम्बनसे रागको टाला जा सकता है। ९२३.

❁ कोई पुरुष वनक्रीड़ा करने वनमें जाये और वहाँ वैराग्य उत्पन्न होनेसे, वस्त्र उतारकर मुनि हो जाये और ध्यानमें लीन होकर केवलज्ञान प्राप्त कर ले! अहाहा! अंतरमें स्वयं प्रभुत्वशक्तिसे परिपूर्ण है न! क्षणमें केवलज्ञान लेनेकी उसमें शक्ति पड़ी है। किसीको उसका शत्रु पानीमें डुबो दे और केवलज्ञान प्राप्त करता है, किसीको घानीमें पेले और केवल

www.vitragvani.com

ले, किसीको पर्वतसे फेंके और केवल प्राप्त कर ले। अंतरमें प्रभुत्व आदि शक्तिरूप स्वभावमें उपयोग एकाग्र हुआ वह बाह्य प्रतिकूलताको नहीं देखता। ९२४.

❀ एक-दो घड़ी शरीरादि मूर्तिक द्रव्योंका पड़ौसी होकर ज्ञायकभावका अनुभव कर। जिस प्रकार राग और पुण्यका अनुभव करता है वह तो अचेतनका अनुभव है, चेतनका नहीं; इसलिये एकबार मरकर भी, शरीरादिका पड़ौसी होकर, घड़ी-दो घड़ी भी ज्ञायकका लक्ष करेगा तो तुरन्त आत्मा और रागकी भिन्नता हो जायेगी और जैसा तेरा आत्मस्वरूप है वैसा तुझे अनुभवमें आयेगा। ९२५.

❀ जैसे आहार लिये बिना नहीं चलता, वैसे ही सदा शास्त्र-स्वाध्याय होना चाहिये। स्वाध्याय तो आत्माका आहार है। इसलिये उसका रटन रहना चाहिये, उसका व्यसन लगना चाहिये। ९२६.

❀ श्री समयसारजी पहली बार हाथमें आने पर, कुन्दकुन्दाचार्यने महाविदेहमें विराजमान श्री सीमंधरभगवानके साक्षात् दर्शन करके यहाँ आकर शास्त्रोंकी रचना की है इसलिये उनके द्वारा रचे गये आगम परम मान्य हैं—यह फुटनोट पढ़ते ही ऐसा लगा कि "यह मेरे घरकी ही बात है।" ९२७.

❀ हे भव्य! तू मोक्षमार्गमें ही निरन्तर विहार कर; अन्य द्रव्योंमें न विहर। प्रभु! तेरी वस्तु भीतर आनन्दका धाम है; तेरी प्रभुताका पार नहीं। उसके सन्मुख होकर स्वानुभूति करना वह धर्मका प्रारम्भ है; उसके बिना दया, दान, भक्ति, पूजादिके शुभभाव दुःखरूप हैं। ज्ञान-आनन्दादि अनंत पवित्र स्वभावोंसे भरपूर ऐसे निज ज्ञायकके सन्मुख दृष्टि होनेपर उसका अनुभव होता है। वह स्वानुभव होनेपर जीव सम्यग्दृष्टि एवं सम्यग्ज्ञानी कहलाता है, शेष सब थोथा-व्यर्थ है। ९२८.

❀ देह-मन्दिरमें ज्ञान-आनन्दादि अनंत गुणशोभायुक्त चैतन्यदेव विराजता है। अंतर सम्यग्दर्शनमें जिसे उसकी महिमा आयी उसे बाह्य ठाठबाटकी—समवसरण देखे तो उसकी भी—महिमा नहीं आती। समवसरण अर्थात् श्री जिनेन्द्र भगवानकी धर्मसभा। जहाँ सौ इन्द्र, राजादि मनुष्य, सिंह-बाघ आदि पशु भगवानकी दिव्यवाणी श्रवण करने आते हैं; स्फटिक आदि विविध रत्नोंसे निर्मित गढ़ होते हैं, मध्यमें तीन पीठिकाएँ उनपर गंधकुटी, रत्नोंका सिंहासन तथा लाख पंखुरियोंवाला कमल होता है, वहाँ भगवान अन्तरिक्ष विराजते हैं; परन्तु यह तो बाहरकी शोभा है। अंतरमें जिसे भगवान आत्माकी महिमा आयी उसे किसी बाह्य

www.vitragvani.com

वस्तुकी महिमा नहीं आती। जिसे अपने चैतन्यकी महिमा आयी उसे निज आत्मामें सुखबुद्धि हुई और राग, पुण्यपरिणाम तथा सर्व बाह्य वस्तुओंमेंसे सुखबुद्धि छूट गई। ९२९.

❀ यह आत्मा अतीन्द्रिय पूर्ण ज्ञान, शान्ति एवं आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव कर ले। दया, दान, व्रत, तप और भक्ति आदिके विकल्प आयें, परन्तु वह कोई धर्म नहीं है, वह मोक्षका परम्परा कारण भी नहीं है। 'मैं निर्विकल्प सहज ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ'—ऐसा प्रचुर स्वसंवेदन–ऐसा उग्र स्वानुभव वह मोक्षका साक्षात् कारण है, और सम्यग्दर्शन–ज्ञानपूर्वक मन्द शुद्धि वह मोक्षका परम्परा कारण है। मन्द शुद्धिके साथ जो शुभरागरूप कचास है उसे आरोपसे परम्परा कारण कहा जाता है। अंतरस्थिरता जो शुद्धिमें वृद्धि होगी वह व्रतादिके विकल्पोंका अभाव करके होगी; इसलिये सम्यग्दृष्टिके व्रतादिस्वरूप शुभरागको मोक्षका परम्परा कारण कहा है, मिथ्यादृष्टिके व्रतादिस्वरूप रागको नहीं। ९३०.

❀ अरे प्रभु! तूने सच्चिदानन्दस्वरूप निज ज्ञायकतत्त्वकी दृष्टि कभी नहीं की, उसका आश्रय नहीं किया और 'पुण्यभावसे मेरा कल्याण होगा',—इसप्रकार उसका आश्रय करके मिथ्यात्वभावका सेवन किया। मिथ्यात्वभावके कारण चौरासी लाख योनियोंमें अनंतबार अवतार लिये। अहा! नरकके वे भयंकर दुःख! भगवान ऐसा कहते हैं कि—नरकगतिके एक क्षणके दुःख करोड़ जिह्वाओं द्वारा और करोड़ भवोंमें नहीं कहे जा सकते; वह तो जीव उन्हें भोगे और केवली उन्हें जानें! नरकके एक क्षणके दुःखोंका वर्णन रत्नकरंड श्रावकाचार (पं. सदासुखदासजीकृत टीका) और छहढालामें किया है। भाई! तू उत्कृष्ट तेतीस सागर तथा जघन्य दस हजार वर्षकी तथा एक-एक समय बढ़नेसे बीचकी असंख्य प्रकारकी स्थितिसे नरकमें अनन्तबार जन्मा! उन दुःखोंकी भयानक वेदना! अरे, तूने उनका विचार तक कभी नहीं किया। अब तो उन भीषण दुःखोंका अन्त करनेके लिये एकबार सम्यग्दर्शन तथा स्वानुभूति प्रगट कर। ९३१.

❀ अरेरे! जीव अनन्तानन्त कालसे भटक रहा है। आयु पूरी होनेपर जीव तो यह शरीर छोड़कर चला जाता है। कहाँ गया उसकी कोई खबर पड़ती है? अनजान द्रव्यमें, अनजान क्षेत्रमें, अनजान कालमें तथा अनजान भवमें तुझे जाना है उसकी खबर नहीं है भाई! जबतक मिथ्यात्वका भाव है तबतक एकके बाद एक स्थानों पर जन्म धारण करना है। अरबपति मरकर बकरीके पेटमें जाता है, सुअर होता है। दुनियाको कहाँ उसकी खबर पड़ती है भाई! अपनी वस्तुको पहिचानकर यदि उसको परिणमित नहीं किया तो संसारका रोग दूर नहीं होगा। ९३२.

www.vitragvani.com

❁ भगवान ज्ञायक आत्मा सर्वथा अपरिणामी नहीं है। प्रमाणदृष्टिसे देखने पर वह द्रव्य-अपेक्षासे अपरिणामी भी है और पर्याय-अपेक्षासे परिणामी भी है। ध्रुवस्वभावकी अपेक्षासे आत्मा पलटता नहीं है और वर्तमान पर्यायकी अपेक्षासे पलटता है। प्रमाणदृष्टिसे देखने पर आत्मा उन दोनों स्वरूप है। ९३३.

❁ बाह्यमें सुख है ही नहीं। सुन्दर शरीर, स्त्री, लक्ष्मी आदिमें तो सुख है ही नहीं, वे तो कहीं दूर रह गये; परन्तु भीतर जो पुण्यके भाव होते हैं उनमें भी सुख नहीं है। शुद्ध बुद्ध सुखकन्द प्रभु तो भीतर पृथक् विराज रहा है। इन बाह्य विषयोंको जाननेवाला भीतर भिन्न है और जो जाननेमें आती हैं वह वस्तुएँ भिन्न हैं। भिन्नका सुख भिन्न वस्तुओंमें कहाँसे होगा? ऐसी बात है भाई! यह मार्ग ही कोई भिन्न है। अनंतकालमें यह अमूल्य मनुष्यपर्याय प्राप्त हुई उसमें यदि आत्महित नहीं करेगा तो कब करेगा? यह मनुष्यभव बारम्बार नहीं मिलेगा। यह अवसर चूक गया तो फिर पता नहीं चलेगा। प्रभु! सुख अंतरमें है; बाहर खोजनेसे नहीं मिलेगा। ९३४.

❁ श्रोता :—इसमें कमाई क्या होगी?

पूज्य गुरुदेव :—इसमें कमाई यह है कि वह स्वयं तीनलोकका नाथ बन जायेगा। केवलज्ञानका बादशाह हो जायेगा यह कमाई है। अरे! श्रद्धा–ज्ञान हुए कि वहीं वह केवलज्ञानका बादशाह बन गया। ९३५.

❁ जिसे ऐसा लगे कि मैं दुःखी हूँ वह सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करेगा। परपदार्थमें ठीकपना और अठीकपना लगना वही दुःखका लक्षण है; अपनी शान्तिके लिये परका आश्रय लेना पड़े वही दुःख है। ९३६.

❁ हे भाई! सत्को समझे बिना तुझे कोई शरण नहीं होगा। आँखें मिचीं वहाँ द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव सब अनजाना....अनजाना हो जायेगा....भीतरके ज्ञाताको जिसने ज्ञाता बनाया होगा वह जहाँ जायेगा ज्ञाता ही रहेगा। ९३७.

❁ तिर्यंचको सम्यक्त्व होता है। किसीने पूर्वभवमें ''आत्मा शुद्ध है'' ऐसा सुना होता है वह स्मरणमें आनेपर फिर विचारमें उतरता है और जैसे बिजली ऊपरसे नीचे उतर जाती है तदनुसार वीर्य अंतरमें उतर जाता है। बस! करना तो इतना ही है; फिर उसीके उसीमें स्थित रहना है। ९३८.

www.vitragvani.com

❁ संक्षेपमें तो ऐसा है कि तेरे ध्रुवस्वभावमें आनन्द भरा है, उसमें दृष्टि लगा। आकुलता होती है, किन्तु वस्तु तो अनाकुल रस है उसकी ओर दृष्टि दे। यह लाख बातकी एक बात है, अधिक कौन पढ़ता है!—ऐसी बात है। ९३९.

❁ कर्मका उदय भविष्यमें कैसा आयगा ऐसा नहीं, परन्तु मैं भविष्यमें ऐसा आऊँगा कि पुरुषार्थ बराबर हो गया तो क्षणमें केवलज्ञान लाऊँगा। ९४०.

❁ श्रीमद् राजचन्द्र जैसे भी ईडरके पहाड़ पर बैठकर श्लोकोंकी स्वाध्याय करते थे। कोई कहे कि–निर्विकल्प हो जाओ न! स्वाध्याय तो शुभराग है। तो वह स्वच्छन्दी है; मिथ्यात्वमें निर्विकल्प हो गया है। ९४१.

❁ सर्वज्ञकी वाणीमें भी मैं पूरा न आऊँ—ऐसा मैं कौन? उसका जिसे माहात्म्य आया है, अहाहा!....और वह माहात्म्य भासित होना वही उसे करना है—कर्तव्य है। ९४२.

❁ स्वभाव और रागके साथ उसने गाँठ बाँधी है; उस गाँठको एक क्षण भी वह खोल दे तो रागसे भिन्न परमात्मा उसके हाथ आ जाये। ९४३.

❁ अरे जीव! अनंत संसारमें परिभ्रमण करते हुए तूने बहुत दुःख सहन किये हैं—नरकादिके घोरमें घोर दुःखोंसे भी तू आरपार हो गया। परन्तु विराधकभावके बदले एकबार यदि तू आराधक भावसे उन सब दुःखोंके पार निकल जा अर्थात् चाहे जैसी प्रतिकूलता आये तब भी आराधकभावसे न डिगे तो फिरसे इस संसारका कोई दुःख तुझे न आये और तुझे अपना सुखधाम प्राप्त हो जाये। ९४४.

❁ शरीर–धन–मकानादि अनुकूलता देखकर तुझे आश्चर्य और कौतूहल होता है, तो भगवान आत्मा महिमावंत पदार्थ है, अजायबघर है उसका तो कौतूहल कर! भगवान सर्वज्ञदेवने जिसकी इतनी-इतनी प्रशंसा और महिमा की है ऐसा आत्मा कैसा है उसे देखनेका कौतूहल तो कर। एकबार विस्मय तो कर कि तू कितना महान पदार्थ है! उसे देखने–अनुभवनेका कौतूहल तो कर! नरकका नारकी महा पीड़ामें पड़ा है, परन्तु वह ऐसे महान आत्माको कौतूहल करके अनुभवता है, तो तू ऐसे अनुकूल योगमें एकबार कौतूहल तो कर! ९४५.

❁ अरिहंत भगवान वर्तमानमें भरतक्षेत्रमें नहीं हैं, परन्तु महाविदेहक्षेत्रमें इस समय भी सीमंधर भगवान आदि लाखों केवली विराजते हैं। अरे! उन अरिहंतदेव तथा लाखों केवली भगवन्तोंकी सत्ताका स्वीकार करके अंतरसे नमन वह कोई अपूर्व बात है। अहो! अरिहंत

www.vitragvani.com

परमात्माके द्रव्य–गुण–पर्यायको जिसने जाना, द्रव्य–गुण तो ठीक किन्तु उनकी पर्यायमें इतनी सामर्थ्य है! ऐसा जिसने ज्ञानमें जाना और जानकर अंतरमें विचारता है कि अरे! मैं उन्हींकी जाति–पाँतिका ऐसा आत्मा हूँ—इसप्रकार अरिहंत परमात्माके स्वरूपके साथ उसके अपने द्रव्यकी तुलना करता है और अंतरमें उतर कर पूर्ण स्वरूपकी प्रतीति करता है वहाँ उसे सम्यक्त्व हो जाता है और सम्यक्त्व हुआ इसलिये केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। ९४६.

❁ विष्टाके भँवरेको फूलोंमें रहनेवाला भँवरा अपने बागमें ले गया और पूछा कि– यहाँ तो अच्छी सुगन्ध आती है? तब वह बोला कि मुझे तो वहकी वही गंध आ रही है! फूलोंका भँवरा सोचने लगा कि यह क्या? उसने भँवरेकी नाकमें देखा तो वह विष्टाकी छोटी-छोटी गोलियाँ नाकमें रखकर आया था, इसलिये गुलाब पर बैठा हो तब भी गंध तो विष्टाकी ही आयेगी! उसीप्रकार भ्रमणा रखकर देखता है इसलिये उसे खबर नहीं पड़ती। परपदार्थोंको अनुपकारी–उपकारी माननेकी भ्रमणा है, उस भ्रमणाकी गोली उसने खा रखी है। परन्तु परपदार्थ अनुपकारी या उपकारी नहीं हैं। आत्माका आनन्द वह आत्माको उपकारी है और रागादि वे आत्माके लिये अनुपकारी हैं। इसके सिवा कोई परपदार्थ आत्माको उपकारी या अनुपकारी नहीं हैं–ऐसी श्रद्धा करके उसे आत्माका ज्ञान करना चाहिये। ९४७.

❁ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव अष्टपाहुड़ ग्रन्थमें कहते हैं कि हे जीव! भूतकालमें तूने इतनी माताओंको अपनी मृत्युके बाद रुलाया है कि तेरे प्रत्येक भवकी उन माताओंके आँसू एकत्रित करनेसे समुद्र भर जायें! ऐसे अनंत भूतकालकी अपेक्षा तेरा भविष्यकाल अनन्त-गुना बड़ा है; यदि अपने आत्माकी सम्हाल नहीं की और शरीर, धन, परिवारमें ही इस अमूल्य मनुष्यभवको गँवा दिया तो तेरा भविष्यकाल भी भूतकालकी भाँति अनन्त दुःखोंमें ही व्यतीत होगा। कालकी इस अनन्तताका गंभीरतासे विचार करके भूतकालके दुःखोंका स्मरण करके फिर ऐसे दुःख न भोगना पड़ें उसके लिये अब जागृत हो! एकबार तो अपने आत्मा पर दया कर! ९४८.

❁ जिसने अरिहंतदेवके द्रव्य–गुण–पर्यायको जाना वह आत्माको जानता है—ऐसा जो कहा वहाँ ऐसा आत्मा लिया है कि अरिहंतके द्रव्य–गुण–पर्यायको जानकर, वहाँसे लक्ष हटाकर अन्तरोन्मुख हुआ है। अरिहंतके द्रव्य–गुण–पर्यायको जाना और जानकर छोड़ देता है। पाठमें ऐसा है कि अरिहंतके द्रव्य–गुण–पर्यायको मन द्वारा जाना और फिर वहाँसे लक्ष छोड़ देता है तब आत्माको जानता है। ९४९.

www.vitragvani.com

❀ कारणशुद्धपर्यायमें उत्पाद-व्यय नहीं हैं, वह वर्तमानरूप है। यदि यह एकधारारूप कारणशुद्धपर्याय आत्माके साथ त्रिकाल न हो तो, स्वभावकी शक्ति और उसका एकरूप पूर्ण वर्तमान उन दोनोंके अभेदरूप एक परमपारिणामिकभाव सिद्ध नहीं होता। और यदि इस पर्यायका अनुभव हो तब तो बंध-मोक्ष आदि व्यवहार ही नहीं रहेगा। इसके आश्रयसे मोक्ष प्रगट होता है। वह मोक्ष कार्य है और यह पर्याय तो त्रिकाल कारणरूपसे वर्तती है। यह परमपारिणामिकभावकी पर्याय पूजित है, आश्रय करने योग्य है। अहो! मुनिराजने वस्तुके स्वभावको प्रगट करके रखा है। ९५०.

❀ सम्यग्दृष्टिको जो तीर्थंकरगोत्र बाँधनेका भाव आये उस भावको और आत्माको एकत्वका बंध नहीं है, संधिवाला बंध है अर्थात् दोनों भिन्न हैं। जिसप्रकार शास्त्रके दो पृष्ठोंका भिन्नरूपसे सम्बन्ध है उसीप्रकार भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप है उसे और रागरूप विकारको भिन्नरूप सम्बन्ध है, एकरूप सम्बन्ध नहीं है। परन्तु वह सन्धि सूक्ष्म होनेसे उसे देखनेको अति सूक्ष्म उपयोगकी आवश्यकता है। ज्ञानका अत्यन्त सूक्ष्म उपयोग करे तो राग और आत्माके बीचकी सन्धि दिखायी दे, परन्तु स्थूल उपयोगसे वह दृष्टिमें नहीं आयेगी, क्योंकि स्थूल उपयोगमें तो रागका सम्बन्ध है, स्थूल उपयोगसे देखने पर राग और आत्माकी सन्धि दुर्लक्ष्य है, जाननेमें नहीं आती। ९५१.

❀ जबतक परिपूर्ण स्वभावकी दृष्टि नहीं है तबतक पर्यायके ऊपर दृष्टि होनेसे उस काल अर्थात् मिथ्यात्वदशाके कालमें रागादिका कर्ता होता है; जीवने उन परिणामोंको व्याप्य-व्यापकरूपसे किया है। क्यों?—कि जो ज्ञाता हो वह भूलता है, पुद्गल ज्ञाता नहीं है वह विकार क्यों करेगा? इसलिये जीव विकार करता है; क्योंकि कर्मचेतना और कर्मफलचेतना चेतनाकी पर्यायें हैं। ज्ञानचेतना ज्ञानीको होती है और कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना ज्ञानीको गौणरूपसे होती है परन्तु दृष्टिकी अपेक्षासे ज्ञानी उनका ज्ञाता-द्रष्टा है और परिणमनकी अपेक्षा कर्ता-भोक्ता है। ९५२.

❀ श्रोता :—भूतकालके दुःखोंको किसलिये याद करना?

पूज्य गुरुदेव :—ऐसे दुःख फिर न आयें उसके लिये याद करके वैराग्य उत्पन्न करते हैं। मुनिराज भी भूतकालके दुःखोंको याद करके कहते हैं कि मैं भूतकालके दुःखोंका स्मरण करता हूँ तब हृदय पर चोट लगती है। देखो! मुनि सम्यग्दृष्टि हैं, आनन्दका वेदन है, तथापि भूतकालके दुःखोंका स्मरण करके फिर वे दुःख न आयें उनके लिये वैराग्य बढ़ाते हैं। ९५३.

www.vitragvani.com

❁ आत्मा क्या है? राग क्या है? मैं नित्य स्थायी वस्तु कैसी हूँ? आदि अभ्यास करके, ज्ञान करके, रागसे भिन्न आत्माका अनुभव करना वह पहली बात है। आत्माको जाने बिना उसके क्रियाकाण्ड वे सब अरण्य-रोदनके समान हैं। आत्मा अंतरमें आनन्दस्वरूप भगवान चैतन्यतेजका पुंज प्रभु है; उसका ज्ञान न हो, अंतरंग दशाका वेदन न हो, तबतक उसके सब क्रियाकाण्ड मिथ्या हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका प्रयत्न होना चाहिये। ९५४.

❁ जैनका अर्थ है जो अंतरमें समा जाये वह जैन। बाहरके जो उफान आयें वे तो सब प्रकृतिके इन्द्रजाल हैं। विकल्पोंका उठना वह भी सब प्रकृतिके इन्द्रजाल हैं और बाह्यमें जो सब होता है वह सब पुद्गल परावर्तनके अनुसार होता ही रहता है। ९५५.

❁ दुनियाकी दुनिया जाने, तू अपना कर। दुनिया तो उसके परिणमन अनुसार परिणमित होगी, तेरा किया कुछ नहीं होगा। ९५६.

❁ चूहे फूँक-फूँककर पाँव आदि खाते हैं न! चूहे फूँक मारकर काटते हैं इसलिये नींदमें खबर नहीं पड़ती। उसीप्रकार यह स्त्री-पुत्रादि प्रशंसा कर-करके खाते हैं इसलिये मूढ़को पता नहीं चलता!

श्रोता :—यह तो सब घरमें झगड़ा हो ऐसी बातें हैं!

पूज्य गुरुदेव :—शास्त्रकार भी कहते हैं न! कि कुटुम्बीजन ठगोंकी टोली है, भाई! जिसे साँपका विष चढ़ा हो उसे कड़वा नीम भी मीठा लगता है। उसीप्रकार यह संसार विष समान होनेपर भी मोही जीवको वह मीठा लगता है। इसलिये उसे जिनवाणीका अमृतपान कराके निर्मोही बनानेके लिये जैसी वस्तुस्थिति है वैसी कही जाती है। यहाँ तो भवका अभाव करनेकी तथा परभव सुधारनेकी बातें हैं। ९५७.

❁ पर्यायमें जो राग होता है उसे आत्मारूपमें अनुभवनेवालोंको आत्मा तिरोभूत हो गया है। रागके सम्बन्धमें-रागकी रुचिमें पड़ा है उसे ज्ञायकभाव-एकरूप भाव दृष्टिगोचर नहीं होता, इसलिये उसको ज्ञायकभाव ढँक गया है। चौरासी लाख योनियोंकी एक-एक योनिमें अनन्तबार उत्पन्न हुआ है; क्यों?—कि उसने रागको अपना माना है। स्व-परप्रकाशक ज्ञायक आत्मा और विकल्पकी क्रिया इन दो को भिन्न नहीं करनेवालोंको एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, इसलिये चौरासी लाख योनियोंमें भटकता है। ९५८.

❁ अहो! रागकी तो क्या बात! एक समयकी पर्याय वह मूल वस्तु नहीं है। मूल

www.vitragvani.com

वस्तु तो पर्यायके पीछे जो पूर्ण तत्त्व विद्यमान है वह है। पर्यायके पीछे पूरा बड़ा भगवान विद्यमान है, पर्यायका लक्ष छोड़कर भीतर प्रभुके दर्शन करे तब प्रभु होता है। ९५९.

❁ धर्म तो समय आने पर ही होता है, परन्तु धर्म करनेवालेकी दृष्टि समय पर न जाकर स्वभाव पर जाती है तब उसे धर्म और मोक्ष होता है। ९६०.

❁ अहो! तुझमें प्रतिसमय परिपूर्णता वर्त रही है, पूर्ण कारण तो जब भी जाने तब तुझमें ही उपस्थित है; बाहर कारण खोजने जाना पड़े ऐसा नहीं है। संसारदशामें भी कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल वर्तती है। ९६१.

❁ श्रोता :—सम्यक्त्वीको सब छूट है?

पूज्य गुरुदेव :—उसने सबसे पृथक् होकर छूट ली है, भीतर दृष्टिकी सारी दिशा बदल दी है। रागका स्वामित्व टल गया है। मैं ज्ञानानन्द हूँ ऐसा स्वामित्व हो गया है।

सम्यक्त्वीको विश्वासमें आया है भगवान और परका विश्वास छूट गया है। यह कोई साधारण बात है। उसकी दृष्टिमें भगवानका विश्वास आया है, राग और परकी दृष्टि छूट गई। यह ज्ञानीकी छूट है। ९६२.

❁ दिगम्बर सन्तोंके शास्त्र अर्थात् चैतन्यचिन्तामणिको बतलानेवाले विशाल दर्पण! परसे हटकर स्वभावसन्मुखता करानेके लिये शास्त्रोंकी रचना की है। ९६३.

❁ मेरी चैतन्यस्वरूप वस्तु तो अनादिसे ज्योंकी त्यों है। मेरे धाममें किसीने प्रवेश किया ही नहीं है। राग रागमें रहा है, ऊपर-ऊपर रहा है। मेरे स्वरूपमें किसीका प्रवेश हुआ ही नहीं है। मेरा कुछ खोया नहीं है। मेरा कुछ कम नहीं हुआ है। ऐसा जानकर हे भाई! तू प्रसन्न हो, प्रसन्न हो! ९६४.

❁ उसे अधिक ज्ञेयोंके सामने देखनेकी आदत पड़ गई है इसलिये उसे एक ज्ञेयकी ओर आना कठिन लगता है। बाहरके अधिक ज्ञेयोंके सामने देखनेसे उसे भरा-भरा लगता है और एक ज्ञेयमें उसे खाली-खाली लगता है। सचमुच तो अधिक ज्ञेयोंमें खालीपन है और यह एक ज्ञेय भरपूर है। अनन्त ज्ञेयोंकी ओर जानेसे इस एक ज्ञेयका ज्ञान सच्चा नहीं होता और एकको जाननेसे अनंतका ज्ञान सच्चा हो जाता है। इस एक ज्ञेयमें ही महानता है। जिसमेंसे अनन्तानन्त केवलज्ञानकी पर्यायें प्रगट होती हैं, वही महान ज्ञेय है। ९६५.

www.vitragvani.com

❁ आत्मामें पुण्य-पाप आदि राग-द्वेषके भाव होते हैं वे अपने अपराधसे होते हैं; उन्हें कर्म कराते हैं ऐसी शंका नहीं करना। क्रोध, मान, माया, लोभादि उत्पन्न होते हैं उन्हें परद्रव्य उत्पन्न करते हैं ऐसी शंका नहीं करना। यहाँ स्त्री-पुत्रादि परद्रव्यकी तो बात नहीं है, परन्तु भीतर जो कर्म हैं वे आत्माको बलजबरीसे राग कराते हैं ऐसी शंका नहीं करना; आत्मा अपने दोषसे राग–द्वेष करता है। ९६६.

❁ भाई! शक्तिरूपसे तू परमात्मा है, नरियलमें जैसे खोपरेका सफेद गोला, नरियलके जटा, नरेली तथा लालीसे भिन्न है, वैसे ही भगवान आत्मा शरीरसे भिन्न, कर्मसे भिन्न और पुण्य–पापकी वृत्तिसे भिन्न शुद्ध तथा आनन्दका गोला है, उसे पहिचानना वह धर्म है। भाई! ऐसा मनुष्यभव मिलना कठिन है, जिन्दगी चली जा रही है, भ्रममें रह जायेगा तो फिर कब ऐसा अवसर मिलेगा? इसलिये चेत, भाई, चेत! ९६७.

❁ शरीर–मन–वाणीकी प्रीति वह उसका सेवन है। अब तू उनका सेवन छोड़कर शुद्धात्माका सेवन कर, उसकी प्रीति कर, उसमें एकाग्र हो, तुझे परम सुख होगा। तू भगवान है! पामरताका पक्ष बदल दे! शरीर मेरा, स्त्री–पुत्र मेरे, पैसा मेरा—इसप्रकार शरीरके पक्षमें सो रहा है परन्तु वहाँ कषाय सुलग रहा है इसलिये वह पक्ष बदलकर शुद्ध परमात्मस्वरूपके पक्षमें आ जा। तुझे परम शान्तिका अनुभव होगा। ९६८.

❁ अज्ञानी जीवोंको बंधनमें डालनेके लिये यमराजाने स्त्री तथा गृहवासकी जेल बनायी है; स्त्री वह घरका मूल है। स्त्री बंधका कारण नहीं है किन्तु स्त्रीके प्रति मोह बंधका कारण है। अन्य प्रकारसे कहें तो रागकी परिणति वह स्त्रीका घर है–गृहवास है भाई! जगतकी प्रत्येक वस्तुका मोह वह महापाप है। अपनेको रागवाला मानना वह मिथ्या है, तो अपनेको स्त्रीवाला मानना महामिथ्या है। रागके साथ रमना वह व्यभिचार है, रागको अपना मानना वह व्यभिचार है, तब स्त्री तो परपदार्थ है, उसके मोहमें फँसता है वह फन्देमें फँसा है। ९६९.

❁ भगवान, एकबार सुन! तू यह स्त्री–पुरुष आदि भेद भूल जा और अनादिसे जिसको भूल गया है ऐसे ज्ञान–दर्शन स्वरूपकी दृष्टि कर। अनादिसे तू अपनेको भूल गया है इसलिये रागादि अशुद्ध उपयोगसे कर्मबंध करता है। अशुद्ध उपयोग अनादिका है, उसका निमित्तकर्म अनादिका है और जिसे अनादिसे भूल गया है ऐसी त्रैकालिक एकरूप वस्तु भी अनादिकी है। भाई, यह मनुष्यपर्याय प्राप्त हुई है, भवके अभावका अवसर आया है,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दुनियाकी मान-प्रतिष्ठामें यह भव चला जा रहा है वह तुझे कैसा पोसाता है? जाग रे जाग भाई! अब तो जाग! ९७०.

❀ जिन कुटुम्बियोंके लिये तू उत्साहपूर्वक समय गँवा रहा है, जिन कुटुम्बियोंकी सुविधाके लिये तू धन कमानेमें समय बिता रहा है, वही कुटुम्बीजन तेरी मृत्युके बाद तेरे शरीरको मकानकी चौखटका भी स्पर्श नहीं होने देते, तो तू दूसरोंके लिये यह भव क्यों गँवा रहा है? अरे, तुझे कहाँ जाना है? जैसे कोई मुसाफिर चला जा रहा हो और रास्तेमें जो कोई आये उसे अपना मान ले, उसी प्रकार तू मुसाफिर है और वह स्त्री-पुत्रादि मेरे, शरीर मेरा-इसप्रकार मेरे-मेरे कर रहा है; परन्तु प्रभु! तुझे तो यहाँसे चल देना है भाई! फिर यह मेरे-मेरे क्यों कहता है? ९७१.

❀ वस्तुके साथ कारणशुद्धपर्याय अनादि-अनन्त एकधारासे वर्तती है; वह गुण नहीं है, सामान्य द्रव्य नहीं है, परन्तु सामान्यके साथ वर्तता एकरूप ध्रुव-विशेष है, वह कारणशुद्धपर्याय है। उसका व्यक्त अनुभव किसीको नहीं होता। यदि उसका व्यक्त अनुभव हो जाये तो वह कारण नहीं रहा। उसमें उत्पाद-व्यय न होनेपर भी वह परिणति है, पर्याय है, द्रव्यके साथ अखण्ड पारिणामिकभावसे वर्तमान वर्तती है। अहो! एकधारारूप परमपारिणामिकभावकी परिणतिसे शोभित चैतन्य भगवान विराज रहा है। वह द्रव्य-गुणसे तो पूर्ण है परन्तु पर्यायमें भी परिपूर्ण भगवान अनादि-अनन्त एकधारारूप जब देखो तब वर्तमानमें विराज रहा है-शोभित हो रहा है। ९७२.

❀ भगवान! यह शरीर भोगके लिये नहीं, योगके लिये है, अंतरमें एकाग्रता करनेके लिये है। इस क्षणभंगुर नाशवान शरीरके निमित्तसे सादि अनन्त स्थिर अविनाशी ऐसे मोक्षपदकी साधना कर। यह शरीर मलिन है, उसके निमित्तसे निर्मल वीतरागी पदकी सिद्धि कर। यह शरीर अनादि गुण रहित निर्गुण है, उसके निमित्तसे ज्ञानादि गुणकी सिद्धि कर लेने जैसा है। इसलिये मुनिराज कहते हैं कि अनित्यको नित्यका साधन कर, मलिनको पवित्रताका साधन कर। ९७३.

❀ दुनिया मेरे लिये क्या कहेगी?-कि यह आदमी बिलकुल निर्बल है, कुछ बोलना भी नहीं आता, भीतरका भीतर पड़ा रहता है,—इसप्रकार लोग चाहे जो कहें, उसकी तुझे क्या परवाह है? लोग मेरी प्रशंसा करें, मेरी प्रतिष्ठा बढ़े-ऐसी बुद्धिवाला जीव तो बहिरात्मा-मिथ्यादृष्टि है; इसलिये लोगोंका भय छोड़कर, निर्बलताको दूर करके अंतर्मुखस्वभावका दृढ़ पुरुषार्थ कर। ९७४.

www.vitragvani.com

❀ समयसारके निर्जरा अधिकारमें कहा है कि–कोई जीव तो अति दुष्कर एवं मोक्षसे पराङ्मुख ऐसे कर्मो द्वारा स्वयमेव क्लेश पाते हैं तो पाओ और अन्य कोई जीव महाव्रत तथा तपके भारसे दीर्घकाल तक भग्न होते हुए (–टूट मरते हुए) क्लेश पाओ तो पाओ....क्या क्लेशको कारण बनाकर आत्माका सम्यग्दर्शन होता है? अहा! सर्वज्ञ–वीतरागके पदचिह्नों पर चलनेवाले दिगम्बर सन्तोंका ऐसा स्पष्ट कथन है; उनके अनुयायी सम्यक्त्वी भी ऐसा कहते हैं। भाई! तू शांत होकर सम्यग्ज्ञानकी तीक्ष्ण बुद्धिसे, भीतर जो ध्रुव आत्मतत्त्व विद्यमान है उसे पकड़। उपयोगको परमें, रागमें तथा पर्यायमें पकड़ रखा है वह तो मिथ्यात्व है। उपयोगको वहाँसे छुड़ाकर, किंचित् सूक्ष्म करके अतीन्द्रिय आनन्दकन्द ज्ञायकको पकड़ ले! अहा! ऐसा मार्ग दिगम्बर संतोंके सिवा अन्यत्र कहाँ है? ९७५.

❀ अहा! जिसने द्रव्यस्वभावका अवलम्बन लेकर अंतरमें सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया उसे देहान्तके समय कौन शरण होगा? अरे! जब रग–रग खिंचेगी, पीडा होगी, प्रत्येक रजकण पलट जायेगा, उस समय ज्ञायक भगवान आत्मा जोकि शरणभूत है, उसकी दृष्टि नहीं होगी तो वह जायेगा कहाँ? वह दुःखमें दब जायेगा, भाई! वहाँ अपने आत्माके सिवा अन्य कोई शरण नहीं है। ९७६.

❀ चौरासीका भ्रमण छुड़ानेवाली, त्रिलोकीनाथकी वाणी सुनने आये उसे देव–शास्त्र–गुरुकी कितनी विनय चाहिये? स्वर्गसे आकर इन्द्रादि देव भगवानकी वाणी कितनी विनय, भक्ति और नम्रतासे सुनते हैं! जिनवाणीका श्रवण करते समय शास्त्रकी विनय और बहुमान करना चाहिये। शास्त्रको नीचे नहीं रखा जाता, उस पर कुहनी नहीं टेकी जाती, पैर पर पैर चढ़ाकर शास्त्रश्रवणके लिये नहीं बैठा जाता, रूमाल या पन्ने आदिसे हवा नहीं की जाती, जम्हाइयाँ नहीं ली जाती, प्रमादसे बैठा नहीं जाता आदि कितनी विनय–बहुमान–भक्ति हो तब तो जिनवाणी-श्रवणकी पात्रता है। व्यवहार-पात्रता जैसी है वैसी जानना चाहिये। ९७७.

❀ भाई! चौरासीके चक्करमें परिभ्रमण करते–करते बड़े भाग्यसे यह मनुष्यपर्याय प्राप्त हुई है; परन्तु बाईस–तेईस घन्टे तो खाने–पीने–कमानेमें तथा स्त्री-बच्चोंको संतुष्ट करनेमें–मात्र पापमें चले जाते हैं और मुश्किलसे एकाध घन्टा कुछ पढ़ने–सुननमें जाता है। शेष पूरा दिन पाप...पाप...और पापके धंधोंमें बीत जाता है। ''एरनकी चोरी और सुईका दान'' जैसी स्थिति है। वह तो अंतरसे चौरासीके अवतारोंसे भयभीत हो तो अंतरमें विश्रामका स्थान ढूँढ़े। ९७८.

www.vitragvani.com

❁ शरीरके एक-एक अंगुलमें छियानवे-छियानवे रोग हैं, वह शरीर क्षणभंगुर है, न जाने कब छूट जायेगा! किंचित् सुविधा लगे वहाँ घुस जाता है, परन्तु भाई! तुझे जाना कहाँ है? किसका मेहमान होगा? कौन तेरा परिचित है वहाँ? उसका विचार करके अपना कुछ कर ले! शास्त्रमें लिखा है कि जब तक वृद्धावस्था न आये, शरीरको जब तक व्याधियाँ घेर न लें और इन्द्रियाँ शिथिल न हो जायें तब तक अपना आत्महित कर लेना। ९७९.

❁ प्रभु तू चैतन्य देवाधिदेव है। ज्ञानादि एक-एक शक्तिमें रमनेसे आनन्द आता है ऐसी अनन्तानन्त शक्तियोंकी रमणीयता तेरे आत्मामें भरी पड़ी है, उसे पहिचान। अन्य सब-शास्त्रोंका जानपना आदि छोड़कर निर्मलानन्दनाथको पहिचान, उसका ज्ञान कर और उस ओर झुक जा। बाह्यमें शास्त्रोंकी पहिचानसे भीतर ज्ञायकदेवकी पहिचान नहीं होती। ९८०.

❁ आचार्यदेव करुणा करके कहते हैं कि-हे अंध! तुझे व्यापारके बहीखाते आदि अनेक कलाओंका ज्ञान है, और तेरे सुखका निधान अपनी वस्तुका तुझे ज्ञान नहीं है! तू अंधा है! स्वयं ज्योतिरूप सुखका धाम होनेपर भी उसकी तुझे प्रतीति नहीं है और दुःखके कारणभूत बाह्य पदार्थोंका ज्ञान है! अहाहा! कैसी बात है! ९८१.

❁ स्वसमय और परसमयका वाद-विवाद करने जैसा नहीं है, तू अपने आत्माका अनुभव कर। परके साथ वादविवादमें पड़ने जैसा नहीं है। निधान प्राप्त करके अपने वतनमें जाकर उसे भोगनेको कहा है इसलिये निधि प्राप्त करके स्वयं अकेले भोगने जैसा है। ९८२.

❁ श्रोता :—क्या जीव दुःखमें सुख मानते होंगे?

पूज्य गुरुदेव :—हाँ, मूढ़ है न! इसलिये दुःखमें सुख मानते हैं, उन्होंने यथार्थ सुखका नमूना कहाँ देखा है? इसलिये किसके साथ तुलना करें? दुःखको ही सुख मान रहे हैं। ९८३.

❁ जो संसारको मारकर मरे उसने मरना सीखा है। संसार अर्थात् विकारको मारकर चैतन्य-जीवन द्वारा जो जीवित हुआ उसे जीना और मरना आता है। ९८४.

❁ पत्थरकी पतली शिलापर शास्त्र उत्कीर्ण किये हों और पानी रखे तो डूब जायेगी, उसीप्रकार अकेले शास्त्रोंकी पढ़ाईका बोझ उठाया हो, किन्तु उनका भाव समझे बिना वह पढ़ाई उसे तारेगी नहीं, संसारमें डूब जायेगा। ९८५.

www.vitragvani.com

❁ परसे अपनेको बड़ा मानना इसमें अपने स्वरूपका ''खून'' होता है। ९८६.

❁ सज्ञनकी प्रशंसा अपने शत्रुसे करायी जाये तो वह शत्रु उसी सज्ञनकी कितनी प्रशंसा–महिमा करेगा? उसीप्रकार चैतन्यकी महिमा जड़ ऐसी वाणी कितनी कर सकेगी? वृक्षपर या उसकी डालपर चन्द्रमा बतलानेसे यदि दृष्टि दूर–दूर आकाशमें चली जाये तो चन्द्रमाको देख सकता है। उसीप्रकार न्याय–युक्ति आदिसे वस्तुको बतलानेपर यदि दृष्टि अंतरमें (अभेदमें) चली जाये तो वस्तुकी अपार महिमा अनुभवमें आये। ९८७.

❁ आत्मा लड्डू खा नहीं सकता। परन्तु मैं लड्डू खाता हूँ ऐसा मानता है वह आत्मा ही नहीं। सुख-दुःखका वेदन करे वह आत्मा नहीं। ९८८.

❁ भाई! आत्मामें आनन्द है, अन्य कहीं आनन्द नहीं है। शुभभाव किये हों तथापि स्वर्गमें आनन्द कहीं है नहीं। बाहरी असुविधा थोड़ी अधिक हो तो वहाँ हाय-हाय! करता है और थोड़ी सुविधा बढ़ जाये तो फूला नहीं समाता, परन्तु भाई! उसमें क्या? अरे, सन्निपात हुआ है सन्निपात! भाई सुख तो आत्मामें है। सम्यग्दृष्टिको शुभभावोंके फलमें स्वर्गकी प्राप्ति होती है उसमें वह सुख नहीं मानता। अज्ञानीको अरेरे! जब शरीर अच्छा था तब यह कार्य नहीं किया और वह नहीं किया अब क्या होगा?—ऐसी चिन्ता कर-करके मरकर चला जाता है नरकमें और निगोदमें.....९८९.

❁ द्रव्यलिंगी अट्ठाईस मूलगुणोंका पालन करके अनन्तबार नववें ग्रैवेयक तक गया है तथापि पुण्यको धर्म माना है और शरीरकी क्रिया मुझसे होती है ऐसा मानकर मिथ्यात्वको पाला है। नववें ग्रैवेयक तक जाकर भी उसने मिथ्यात्वभाव नहीं छोड़ा! जब तक अज्ञानी जीव शुद्ध ज्ञायक आत्माकी दृष्टि नहीं करेगा और परपदार्थमें इष्ट–अनिष्टके भेद करेगा तब तक उसके चौरासीके अवतार चलते रहेंगे; और जब ''मैं चैतन्यमूर्ति हूँ, शुद्ध हूँ, रागका एक कण भी मेरे स्वरूपमें नहीं है–ऐसी स्वभावदृष्टि करेगा तब राग-द्वेष रुक जायेंगे–टल जायेंगे। ९९०.

❁ पर्यायबुद्धिवाला जीव संयोगमें ही सुख मानता है; अंतर्स्वभावकी दृष्टि नहीं करता। वह बाह्य विषयोंमें ही सुखकी कल्पना करता है। राजा हो तो राज्यपदमें ही सुख मानता है और मरकर विष्टाका कीड़ा हो तो उसमें सुख मानता है, परन्तु मैं तो सिद्धसमान चिदानन्दस्वभावी हूँ—ऐसी प्रतीति अज्ञानी नहीं करता। ९९१.

www.vitragvani.com

❁ ज्ञानकी निर्मल किरणके बिना महाव्रतोंका पालन करें, ब्रह्मचर्य पाले, अरे! आजीवन स्त्रीका संग न करे तथापि उससे आत्माकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये यदि तू दुःखसे छूटना चाहता हो तो पुण्य-पापकी रुचि छोड़कर आत्मज्ञान कर। आत्मा आनन्दका नाथ है उसका ज्ञान कर। उसके बिना अरेरे! कीड़ा–कौआ–कुत्तेका भव कर-करके मर गया! अनन्तकाल यों ही दुःखमें बीत गया। प्रभु! तूने इतने दुःख सहे हैं कि जिनकी कोई मर्यादा नहीं रही...लेकिन तू वे सब भूल गया है। भाई! प्याजको जब तेलमें तला तब तू भी कड़कड़ाट तला गया था–तू उस प्याजमें बैठा था। ऐसे-ऐसे तो अपार दुःख तूने भोगे हैं। चौरासी लाख योनियोंके दुःखमें पिलता रहा है। आनन्दके नाथको पुण्य–पापकी घानीमें पेल दिया है। अब यदि उन दुःखोंसे छूटना चाहता हो, सिद्धसुखके झूलेमें झूलनेकी इच्छा हो तो आत्मज्ञान करके निजपदको प्राप्त कर। ९९२.

❁ लक्ष्मणजीकी मृत्यु होनेपर धर्मात्मा रामचंद्रजी भाईके मोहवश अस्थिरताके मोहवश छह महिने तक मृतशरीरको साथ रखते थे, उसे भोजन कराते, सुलाते, नहलाते आदि क्रियाएँ कराते थे। अज्ञानी भी न करे ऐसे कार्य धर्मात्मा मोहके वश करते दिखायी देते हैं, तथापि अंतरमें ज्ञाता-द्रष्टाका प्रवाह चल ही रहा है। बाहरकी उन्मत्त चेष्टाके समय भी उस चेष्टाके तथा उस समयके मोहके ज्ञातारूपसे रामचन्द्रजी वर्तते हैं। ९९३.

❁ जिसे शुभकी रुचि है उसे विषयोंकी ही रुचि है, क्योंकि शुभकी रुचिवालेको उसके फलमें पुण्यकी सामग्री मिलेगी, तब उसीमें वह लीन हो जायेगा, इसलिये वास्तवमें तो शुभरागका प्रेमी वह विषयोंका ही प्रेमी है; फिर भले ही वर्तमानमें उसने राजपाट आदि छोड़कर द्रव्यलिंग धारण किया हो! धर्मात्माको तो पुण्य तथा पुण्यकी सामग्री काले नाग जैसी लगती है, इसलिये उससे छूटनेके लिये वह अंतर्मुख प्रयत्न करता है। अस्थिरताके कारण धर्मात्माको शुभ विकल्प आते हैं परन्तु उनकी रुचि नहीं होती। रागका रुचिपूर्वक सेवन वह आत्मस्वरूपसे विरुद्ध आचरण होनेसे व्यभिचार है। अज्ञानीको रागका सेवन रुचिपूर्वक होता है, धर्मात्माको तो स्वभावकी ही रुचि होती है। ९९४.

❁ लक्ष्मी मिलना वह पुण्यका फल है, उसमें आत्माको क्या? पैसेकी समृद्धिसे अपनेको बड़ा माननेवाला भिखारी है, रंक है। एकबार एक राजा व्याख्यान सुनने आये थे। तब कहा था कि–राजन्! अधिक माँगे वह बड़ा भिखारी और थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी! व्यापारी लाखोंकी तृष्णा करता है इसलिये वह छोटा भिखारी और राजा करोड़ों–अरबोंकी तृष्णा

www.vitragvani.com

करता है इसलिये वह बड़ा भिखारी....सामान्यरूपसे तो सब भिखारी और रंक ही हैं। जिन्हें अपनी चैतन्यलक्ष्मीकी खबर नहीं है और जड़ लक्ष्मीकी–पैसा दो, प्रतिष्ठा दो, स्त्री दो, ऐसी–भीख माँगते हैं उन्हें शास्त्रमें 'वराकाः' कहा है! भाई! यह बाहरी लक्ष्मी तो धूल है; भीतर भगवान आत्मामें ज्ञानानन्दमय चैतन्यलक्ष्मी भरी पड़ी है उसका तुझे मूल्य नहीं है। तेरी चैतन्यसंपदाका क्या कहना! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य–ऐसी अनन्तानन्त गुणलक्ष्मी तेरे चैतन्यभण्डारमें भरी पड़ी है। भगवान ज्ञायक आत्मा है तो शरीरप्रमाण इतने क्षेत्रमें, परन्तु उसके गुणोंकी संख्यामें इतनी अनन्तता है कि अनन्तका अनन्त द्वारा अनन्त–अनन्त–अनन्त बार गुणाकार करो तथापि कभी उन गुणोंकी अनन्तताको नहीं पहुँचा जा सकता। अरे प्रभु! आत्मा क्या वस्तु है! आत्मामें ज्ञान, आनन्दादिकी अनन्त–अनन्त लक्ष्मी भरी पड़ी है उसकी तुझे खबर नहीं है। ९९५.

❀ कारणशुद्धपर्याय किसे कहा जाये? द्रव्यमें निरपेक्ष कारणरूप शुद्धदशा त्रिकाल है। श्री पद्मप्रभ मुनिराजने ऐसी बात कही है कि जिसप्रकार धर्म–अधर्म–आकाश और काल यह चारों द्रव्य त्रिकाल शुद्ध हैं तथा पर्यायमें भी धाराप्रवाहरूप अखण्ड एकरूप वर्तते हैं, उनकी पर्यायमें विषमता नहीं है, उसीप्रकार आत्मामें भी वैसी एकरूप पर्याय है। संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष–ऐसी पर्यायोंमें तो अनेकरूपता–विषमता आती है। आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, उस स्वभावके साथ त्रिकाल ध्रुवरूप रहनेवाली अव्यक्तरूपसे वर्तमान वर्तती व्यक्तरूप उत्पाद–व्यय रहित ऐसी अखण्ड कारणशुद्धपर्याय है; वह अनादि–अनन्त है। ९९६.

❀ यहाँ तो प्रथम यह विचारो कि–उसकी सत्ता है, अस्तित्व है वह त्रैकालिक है, तो यहाँसे देहान्त होनेपर वह अन्यत्र तो जानेवाला ही है। क्योंकि देह तो रहनेवाली नहीं है, कहीं और जायेगी ही; तो कहाँ जायेगी? उसका निर्णय तो उसे करना पडेगा न! यदि आत्माको पहिचानकर प्रतीति करेगा तो आत्मामें रहेगा, किन्तु यदि प्रतीति नहीं की तो देहमें दृष्टि पड़ी है इसलिये चार गतियोंमें भटकता फिरेगा और दुःख भोगेगा। अपने ऊपर दया करके अपनी पहिचान कर लेनेका उसे यह अवसर प्राप्त हुआ है। भाई! ऐसा अवसर फिर कब प्राप्त होगा? ९९७.

❀ अहा! ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव मिला, जैनकुलमें जन्म हुआ, वीतरागकी वाणी सुननेको मिली; प्रभु! अब तो आत्महितके लिए कुछ करना पड़ेगा न? ऐसे तो जन्म–मरणके चक्करमें अनन्तबार एकश्वासमें अठारह भव किये। विचार तो खबर पड़ेगी। छहढालामें

www.vitragvani.com

कहा है कि–'एक श्वासमें अठदसबार, जन्म्यो–मर्यो भर्यो दुःखभार;' प्रभु! वह सब तू भूल गया है। भूल गया इसलिये नहीं है–ऐसा कैसे कह सकते हैं? अरे! इस मनुष्यभवमें आनेपर प्रथम छह महिने तक तेरी माताने तुझे दूध पिलाया, नहलाया–यह सब तुझे याद है? याद नहीं है इसलिये वह नहीं था–ऐसा कैसे कहेगा? बचपनमें तूने किस प्रकार खाया–पिया, कैसे रोया–यह सब याद है तुझे? नहीं है इसलिये वह नहीं था ऐसा कौन कहेगा?–इसप्रकार पूर्वभवका स्मरण नहीं है इसलिये पूर्वमें जो दुःख सहे हैं वे नहीं थे–ऐसा कैसे कहा जाये? आता है कुछ समझमें? यह सब लॉजिक–न्यायसे समझना पड़ेगा भाई! ९९८.

❁ देवोंको जिस प्रकार कण्ठसे अमृत झरनेके कारण भोजनकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार धर्मीको अंतरमेंसे अमृतरस झरता है इसलिये रागका रस नीरस हो गया है–छूट गया है। ९९९.

❁ जिसने दृष्टिमें मुक्तिधाम देखा है, रागसे तथा संयोगसे पृथक् चैतन्यपिण्ड देखा है, उस मुर्देको पॉलिश की हुई लकड़ियोंसे जलाये तो उसे कोई प्रीति या हर्ष नहीं है; उसीप्रकार ज्ञानी रागके भावसे मृत हो गये हैं। एक सचेतन ज्ञानज्योतिसे जीवन है; साक्षात् ज्योति अनादि–अनंत है उससे जीवन है। १०००.

❁ निमित्तमें मधुरता उसे लगती है कि जिसे उपादानमें मधुरता प्रगट हुई हो। आत्मरसका रसिक जीव है उसे भगवानकी वाणी मीठी लगती है। जो आत्मामेंसे कमाई करके आया है उसे वाणीमें भी मधुरता लगती है। १००१.

❁ आत्मस्वभावका अनन्त अनादर और अनन्त परद्रव्योंकी कर्ताबुद्धि ऐसे मिथ्यात्वभावको छेदनेके लिये अनंत अचिंत्य पुरुषार्थकी आवश्यकता है। महान पुरुषार्थरूपी घनके प्रहार द्वारा उसका छेद हो सकता है। १००२.

❁ हम परमात्मा होनेवाले हैं और जिन्होंने परमात्माको अपनेमें पधराया है वे भी परमात्मा हुए बिना नहीं रहेंगे। १००३.

❁ द्रव्यपर दृष्टि करनेसे प्रयोजन सिद्ध होता है। दो नयोंका ज्ञान करनेपर भी प्रयोजनपर दृष्टि किसी जीवकी ही जाती है, उसीको सम्यक्त्व होता है। १००४.

❁ मिथ्यात्व ही सबसे बड़ा कषाय है। तत्त्वनिर्णय करते-करते वह मन्द होता जाता है। निर्णय पूर्ण होनेपर उसका अभाव हो जायेगा। १००५.

www.vitragvani.com

❁ भगवान ऐसा नहीं कहते कि तुम्हारी काललब्धि पकेगी तब पुरुषार्थ होगा। हम कहते हैं वैसा पुरुषार्थ करो तो तुम्हारी काललब्धि पक ही गई है–ऐसा भगवान कहते हैं। १००६.

❁ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि–हमारे मालके ग्राहक कौन होंगे जिन्होंने हृदयमें सिद्ध भगवानको विराजमान किया है, वे हमारे ग्राहक होंगे; (सारी सभामें करतल ध्वनि) अभी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है उन्हें सम्यग्दर्शनके लिये समझाते हैं। १००७.

❁ पूर्वकालमें जो रामचन्द्रजी आदि महापुरुष और तीर्थंकर आदि हुए वे सब केवलज्ञानसे पूर्व मुनिदशा या गृहस्थाश्रममें बारम्बार वस्तुका स्तवन करते थे कि वस्तु ऐसी अचिंत्य है, पर्यायका सामर्थ्य ऐसा अचिंत्य है, परमाणुकी शक्ति इतनी है, उसकी पर्यायकी शक्ति इतनी है—इसप्रकार वस्तुका चिन्तवन–स्तवन करते थे और भगवानका भी स्तवन करते थे। १००८.

❁ यह कोई ऐसे–वैसोंका मार्ग नहीं है, किन्तु तीर्थंकरों एवं चक्रवर्तीयोंने जिस मार्गपर विचरण किया–ऐसा महान मार्ग है। जिसके फलमें सादि–अनन्तकालकी शान्ति हो जाये ऐसा परम सत्य मार्ग है। १००९.

❁ जादूगर द्वारा लड़कीके दो टुकड़े करके फिर जीवित करनेकी बात चलनेपर पूज्य गुरुदेवश्रीने कहा कि अरे! उसमें क्या था? विद्याके बलसे विशाल सेना खड़ी कर देते हैं, मार देते हैं, जीवित कर देते हैं, परन्तु उससे आत्माको क्या लाभ?.....यदि रागसे ज्ञानकी भिन्नता कर दे तो वह सच्ची कला कहलाती है। १०१०.

❁ मुझे अपने गुण–पर्यायकी आवश्यकता है और किसीकी नहीं–इसका नाम वैराग्य है। जो अपनेमें है उसकी अपेक्षा और अपनेमें जो नहीं है उस सबकी उपेक्षा–ऐसे अपने अस्तित्वकी प्रतीति होना वह ज्ञान है। १०११.

❁ मेरा तत्त्व सदा मुझे अनुकूल ही है। जितनी चैतन्य–कल्पवृक्षकी एकाग्रता करूँ उतना मिलता ही है, मुझे किसी अन्यकी आवश्यकता नहीं है। १०१२.

❁ श्री समयसारके १८९वें कलशमें आचार्यदेवने कहा है कि–शुभभावरूप प्रतिक्रमणादि जो हमने निषेध किया वह तो शुद्धभावरूप अप्रतिक्रमणमें जानेके लिये किया है, उसके बदले जीव प्रमादी होते हुए नीचे–नीचे क्यों जाते हैं? ऊँचे–ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते। यह बात

www.vitragvani.com

निकलने पर पूज्यश्रीने कहा था कि–सायंकाल लोग खुली हवा खानेके लिये घूमने निकल पड़ते हैं वह तो अशुभमें गये, संध्याकालमें तो धर्मी ध्यानादि करते हैं.....जैनदर्शनकी प्रत्येक बात ऊपर चढ़नेके लिये है, नीचे जानेके लिये कोई बात नहीं है। १०१३.

❁ ....'तथा विषयसुखादिका फल नरकादि हैं', विषयसुखका सेवन करेंगे तो नरकमें जायेंगे–ऐसा अज्ञानीको डर लगता है, परन्तु विषयसेवनका भाव ही दुःखरूप है और आत्मा आनन्दरूप है ऐसी दृष्टि तो करता नहीं है। 'शरीर अशुचिमय तथा विनाशीक है, पोषण करने योग्य नहीं है'—ऐसा माननेवाले भी मिथ्यादृष्टि है; क्योंकि वह तो द्वेष हुआ। परद्रव्यको क्या है? सम्यग्दृष्टि तो वह पोषण करने योग्य है या नहीं, उसकी दृष्टि छोड़कर, आत्मा आनन्दकन्द है उसकी दृष्टि करता है। 'तथा कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं,' इसलिये छोड़ना–ऐसा माननेवाला परद्रव्यको अहितकारी मानता है जो मिथ्यात्व है। भाई! तू स्वयं अज्ञानके कारण लुटता है तब उन्हें लुटेरा कहा जाता है। और वह परवस्तु तो कहाँ तुझे हानि पहुँचाती है? किन्तु परद्रव्यमें अनिष्टकी मान्यता ही हानिकारक–मिथ्यात्व है। इसप्रकार अज्ञानी परद्रव्योंका दोष विचारकर उनका त्याग करता है किन्तु वह तो मिथ्या है; क्योंकि दोष अपना है या परका? परमें इष्ट–अनिष्टपना मानना वह अपना दोष है। १०१४.

❁ वस्तुमें राग–द्वेष तथा मिथ्याश्रद्धाकी गंध ही नहीं है। शक्तिमें तो अकेला सिद्धपद ही पड़ा है। उसकी दृष्टि होनेपर पर्यायमें उसीका एन्लार्ज होता है। १०१५.

❁ नरकके दुःख सुने जायें ऐसे नहीं हैं। पाँवमें काँटा लगने जितना दुःख तुझसे सहन नहीं होता तो फिर जिसके गर्भमें अनन्त दुःख पड़े हैं उस मिथ्यात्वको छोड़नेका प्रयत्न तू क्यों नहीं करता? तू शरीरको स्पर्शता नहीं है फिर भी तूने माना है कि शरीर मेरा है; यह तूने क्या किया?–क्या माना!–विपरीत मान्यताके स्थूल असंख्य प्रकार तथा सूक्ष्म अनंत प्रकार हैं। परको मार सकता हूँ या जिला सकता हूँ वह मिथ्यात्वका एक भाग है। अनंत परवस्तुओंको अपना माना भाई! परन्तु अपने अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको तू स्पर्शता भी नहीं है। सत्य बोल सकता हूँ–ऐसा माना परन्तु वह तो मिथ्यात्वका एक भाग है। मिथ्यात्वभावको छोड़नेका प्रयत्न क्यों नहीं करता? प्रमादमें क्यों पड़ा है? १०१६.

❁ यहाँ तो एक ही बात है कि–भाई! अपने चैतन्यपुंजकी निधिको सम्हाल, बाकी सब जो होना होगा वह होगा। १०१७.

❁ कोई अरबपति व्यक्ति जेबमें पाँच–पच्चीस रुपये लेकर सागभाजी खरीदने निकला

www.vitragvani.com

हो, उसे उतनी ही पूँजीवाला माने तो उसने उसे पहिचाना ही नहीं। उसी प्रकार जो आत्माको वर्तमान अल्पज्ञता एवं अल्प वीर्यवान माने उसने उसे पहिचाना ही नहीं, आत्माकी त्रैकालिक ध्रुवसत्ताको स्वीकार करे उसीने आत्माको जाना है। १०१८.

❁ निजस्वरूपका उपयोग वह सुख है। वह आबाल-वृद्ध सब कर सकते हैं, इसके बिना शान्तिका कोई अन्य उपाय नहीं है। १०१९.

❁ नववें ग्रैवेयकमें जानेवाले द्रव्यलिंगीको भी अनादिके ऐसे–ऐसे सूक्ष्म शल्य रह गये हैं कि उनका उसे पता ही नहीं चला। कहीं–कहीं निमित्तमें, रागमें, संयोगमें अधिकता देकर आत्माका अनादर ही उसने किया है। १०२०.

❁ महान-महान अनंत-अनंत माहात्म्यपूर्वक निर्णय हो जाये, बस, खलास! फिर राग आनेपर भी छूटा ही छूटा है। १०२१.

❁ जिस प्रकार एक द्रव्य पलटकर अन्य द्रव्यरूप नहीं होता, क्षेत्र पलटकर अन्य क्षेत्ररूप नहीं होता, उसी प्रकार वस्तुकी पर्याय पलटकर अन्य पर्यायरूप हो ही नहीं सकती। पर्याय भी उस समय पर्यंत वस्तु है। १०२२.

❁ मैं चैतन्य, रागको छुआ ही नहीं, अंतरकी दृष्टिमें रागका त्याग है। संसारके उदयभावको आत्माने कभी छुआ ही नहीं। ऐसी वस्तुको आत्मा कहते हैं। १०२३.

❁ संसारकी गंध आत्मामें बिलकुल नहीं है, आत्मामें संसार है ही नहीं। मिथ्यात्वादि भाव संसार है, वे मुझमें नहीं हैं—ऐसी रुचि करनेपर दृष्टिमेंसे संसार छूट जाता है। १०२४.

❁ रागका, व्यवहारका आदर है उसको पुद्गलका ही आदर है, पुद्गलका प्रवाह उसके समीप बना ही रहता है। बाह्यज्ञानका आदर करता है वह भी पुद्गलका ही आदर करता है। उसे पुद्गलकी ही निकटता रहेगी। १०२५.

❁ प्रत्येक आत्मा भगवानस्वरूप है, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप चैतन्य रसकन्द है। अहाहा! इस समय वर्षाऋतुमें तो हरी घास बहुत है, उसपर बिना कारण पाँव रखकर कुचलते हुए चलना वह नहीं होना चाहिये भाई! उस एक सूक्ष्म टुकड़ेमें असंख्यात जीव हैं, वे सब भगवानस्वरूप हैं। १०२६.

❁ दो नय परस्पर विरोधी हैं; यदि वे एक हों तो दो नय नहीं रहते। व्यवहार नहीं है ऐसा नहीं, परन्तु व्यवहारसे लाभ हो तो निश्चयनय नहीं रहता। पानी गर्म होता

www.vitragvani.com

है उसमें अग्निका निमित्त नहीं है ऐसा नहीं है, परन्तु निमित्तसे उपादानमें कार्य हो तो उपादान नहीं रहता। निश्चयके साथ व्यवहार नहीं होता ऐसा नहीं है, परन्तु व्यवहारसे निश्चय हो तो निश्चय नहीं रहता। उपादानके कार्यकालमें निमित्त होता है परन्तु निमित्तसे उपादानमें कार्य नहीं होता–ऐसी वस्तुकी स्थिति है। १०२७.

❁ भाई! सम्यग्दृष्टिके अंतस्तलकी थाह लेना बहुत कठिन है। धर्मी जीवको चक्रवर्तीका राज्य हो, युद्धमें खड़े हों, परन्तु आत्माके आनन्दसे राग भिन्न हो गया है, रागादि परिग्रहमें भेदबुद्धि हो गई है; भले ही उसके विषयसामग्री हो, उसका भोग भी करते हों, सम्यग्दृष्टिको पुण्य विशेष होता है, पुण्यके ढेर होते हैं, स्त्री-पुत्रादिमें, शरीर वैभवमें पुण्यके ढेर दिखायी देते हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टिको उनमें एकत्वबुद्धि छूट गई है; चैतन्यका अतीन्द्रिय आनन्द उसे दृष्टिगोचर होता है। आनन्दका सागर उछल रहा है, आनन्दका ज्वार आता है —ऐसे सम्यग्दृष्टिको भोग-सामग्रीमें किंचित् आसक्ति दिखती है–होती है तथापि अभिप्रायमें उसका स्वीकार नहीं है, सुखबुद्धि नहीं है। भोग भुजँग समान लगते हैं, काले नाग दिखते हैं। १०२८.

❁ नामधारी जैनको रात्रिभोजन नहीं होता। रात्रिको सूक्ष्म जीव-जन्तु भोजनमें आ जाते हैं, इसलिये मांसाहारका दोष लगता है, इसलिये नामधारी जैनको भी रात्रिभोजन नहीं होता। अचार–मुरब्बोंमें भी त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है, इसलिये वह आहार भी जैनोंको नहीं होता।

....यहाँ तत्त्वकी बहुत ऊँची बात आयी है, इसलिये सामान्य निचली बातका कोई महत्त्व नहीं ऐसा नहीं। अपने भीतरसे विचार उगना चाहिये। कोई कहे इसलिये नहीं, किन्तु अपनेको चिन्ता होना चाहिये। जिसे अपने भविष्यका निर्णय नहीं हुआ है उसे तो भय लगना चाहिये कि–अरे! भविष्यमें मैं कहाँ जाऊँगा? अपना हित करना हो उसे ध्यान रखना चाहिये। १०२९.

❁ एक समयकी भूलके सिवा पूर्ण भगवान स्वभावसे महाप्रभु है–उसे छोड़कर रागको देखनेसे भगवानको देखनेमें अंतराय पड़ गया है। रागको भूलकर भगवानको देखे तो अंतराय टूट जाये। १०३०.

❁ श्रोता:—आत्माको प्राप्त करनेके लिये सारे दिन क्या करें?

पूज्य गुरुदेव:—दिन भर शास्त्रोंका अभ्यास करना, विचार–मनन करके तत्त्वका निर्णय

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

करना और शरीरादिसे तथा रागसे भेदज्ञानका अभ्यास करना। रागादिसे भिन्नताका अभ्यास करते-करते आत्माका अनुभव होता है। १०३१.

❀ बहिर्लक्षी शास्त्रज्ञानसे सम्यग्ज्ञान या उसकी वृद्धि नहीं होती। ग्यारह अंगका ज्ञान अनन्तबार किया, परन्तु वह कोई ज्ञान नहीं है। शास्त्र तो परवस्तु है, उसका ज्ञान करना वह तो अपनी पर्यायमें परलक्षी ज्ञानका अंश है; उसे वास्तविक ज्ञान ही नहीं कहते। जब पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्माकी अंतर्दृष्टि करे–अनुभव करे तब ज्ञानकी वृद्धि, दर्शनकी वृद्धि, स्थिरताकी वृद्धि–यथासंभव सर्ववृद्धि, अनंत गुणोंके परिणमनमें शुद्धिकी वृद्धि होती है। भीतर चैतन्यसागर उछल रहा है। अहा! यह बात कैसे बैठे? जिसप्रकार महासागर जब मध्यबिन्दुसे उछलता है तब उसमें ज्वार आता है उसीप्रकार, चैतन्यस्वभावका आश्रय लेनेसे, ज्ञायकस्वभावकी ओर उन्मुखताका प्रयत्न करनेसे, आराधनाकी पर्यायमें ज्ञानका ज्वार, दर्शनका ज्वार, चारित्रका ज्वार....सर्व गुणोंके परिणमनमें यथासंभव ज्वार आता है। वह ज्वार बाहरसे नहीं किन्तु भीतरसे आता है। १०३२.

❀ जिसकी दृष्टिमें चैतन्यधाम आ गया है, जिसकी दृष्टि क्षयोपशमके एक अंशका भी विश्वास नहीं करती, जिसकी दृष्टिमें राग एवं निमित्तका विश्वास भी उड़ गया है—ऐसे सम्यक्त्वीको द्रव्यप्रत्यय उदयमें आनेपर भी बंधन नहीं है। उसकी दृष्टि तो चैतन्यधाम पर लगी है। १०३३.

❀ जिस घर नहीं जाना हो उसे भी जान लेना चाहिये कि यह घर अपना नहीं है किन्तु दूसरेका है। उसीप्रकार पर्यायका आश्रय नहीं करना है इसलिये उसका ज्ञान भी नहीं करे तो एकान्त हो जायेगा, प्रमाणज्ञान नहीं होगा। पर्यायका आश्रय छोड़ने योग्य होनेपर भी उसका ज्ञान तो यथावत् करना पड़ेगा, तभी निश्चयनयका ज्ञान सच्चा होगा। १०३४.

❀ जिसे निश्चय–अमृत-कुम्भका अनुभव हुआ है उसके व्यवहार-प्रतिक्रमणादिको व्यवहारसे अमृत-कुम्भ कहा जाता है, किन्तु अज्ञानीका शुभराग तो मात्र विष है। अज्ञानी चाहे जितने महाव्रतादिका पालन करे परन्तु वह विष है; चार गतियोंमें परिभ्रमणका कारण है। मिथ्यात्वका महापाप पड़ा होनेपर महाव्रतादिका पालन करता है वह विषका घड़ा है। सम्यग्दर्शनके बिना व्यवहार-प्रतिक्रमणादि सर्व अपराध ही है, इसलिये शुभाशुभ रहित तीसरी भूमिका वह यथार्थ अमृत-कुम्भ है। १०३५.

❀ घर–परिवारकी चिन्ता कर-करके तू भववनमें भ्रमण करता आया है इसलिये अब परद्रव्यकी इच्छाको रोककर परमानन्दरूप परमात्मस्वरूपमें ध्यान लगाकर परद्रव्यका ममत्व छोड़।

www.vitragvani.com

वीतराग परमानन्दरूप परमात्मा वह तेरा निजघर है, उसमें निवास कर यह कहनेका तात्पर्य है। सर्व शास्त्रोंका सार यह है कि जिसमें वीतरागता भरी है ऐसे अपने निजघरका आश्रय ले, क्योंकि ऐसा करनेसे तेरी पर्यायमें वीतरागता प्रगट होगी। इसलिये मात्र एक निजस्वरूपका आश्रय तथा उसकी भावना करना, एक ही वह कर्तव्य है, इसके सिवा अन्य कुछ भी करने योग्य नहीं है। १०३६.

❁ वस्तु चैतन्यचमत्कारिक है। चैतन्यद्रव्यमेंसे अनन्तानन्त कालसे पर्यायें उत्पन्न होनेपर भी चैतन्यद्रव्यमें किंचित् मात्र न्यूनता या हीनता नहीं आयी है। निगोदकी दशामें अति अल्प विकास रहनेसे चैतन्यद्रव्यमें किंचित् मात्र वृद्धि नहीं होती। निगोद पर्यायकी अपेक्षा नव पूर्व तथा ग्यारह अंगके विकासकी पर्याय अनन्तगुनी है और उसकी अपेक्षा अनंतगुनी केवलज्ञानकी पर्याय है, जोकि अनंत-अनंत पदार्थोंको अनंतकाल तक जानती है; इतनी महान पर्याय होनेपर भी चैतन्यद्रव्यमें किंचित् मात्र भी न्यूनता या अल्पता आ जाये ऐसा नहीं है, द्रव्य तथा गुण तो सदैव ज्योंके त्यों परिपूर्ण रहते हैं—ऐसा चैतन्यचमत्कार है। उसकी शक्तियाँ चमत्कारी हैं। चैतन्यके चमत्कारकी महिमा अपरम्पार है। ऐसे चमत्कारी चैतन्यप्रभुकी प्रतीति करना वह इस दुर्लभ मनुष्यभवमें एकमात्र कर्तव्य है। १०३७.

❁ द्रव्य स्वयं ही अकारणीय है, स्वयं ही अनन्त पुरुषार्थरूप है। उसके विश्वासकी बलिहारी है। १०३८.

❁ इकलौता जवान पुत्र मर जाये तो कैसा आघात लग जाता है! ऐसे ही उसे आघात लगना चाहिये। राग और संयोगकी ओटमें तू स्वयं मरा जा रहा है उसका तुझे कोई आघात लगता है? १०३९.

❁ जिसप्रकार हलवाईके यहाँ कढ़ाईमें उबलते हुए तेलमें ऊपरसे गिरा हुआ सर्प आधा तो जल गया, परन्तु उस जलनके कष्टसे बचनेके लिये वह चूलेमें घुस जानेपर पूरा जल गया!.....उसीप्रकार संसारके जीव पुण्य-पापमें तो जल ही रहे हैं और उसमें वे विशेष सुखकी लालसामें विशेष जलते हैं ऐसे विषयोंमें झंपापात करके सुख मानते हैं। १०४०.

❁ दुनिया दुनियाकी जाने, तू अपना कर! दुनिया तो उसके परिणाम अनुसार परिणमेगी, तेरे परिणमानेसे परिणमित नहीं होगी। १०४१.

❁ जैसे–कोई पक्षीके पैरोंके चिह्न आकाशमें खोजता हो और मछलीके गमनके निशान पानीमें ढूंढ़े, तो वह मूर्ख है। उसीप्रकार रागादिमें आत्माको खोजनेवाला मूर्ख है। १०४२.

www.vitragvani.com

❁ समवसरण (जिनमंदिर), जिनबिंबादि वीतरागताका स्मरण करनेके निमित्त हैं। अहा! ऐसे जीव हैं, उनके ऐसे पुण्य हैं! यह सब देखनेपर वर्तमानबुद्धि छूटकर त्रैकालिककी बुद्धि होती है और उसके लिये यह समवसरण जिनमंदिरादि निमित्त हैं। १०४३.

❁ जिसके ज्ञानमें राग द्वैत है, पृथक् है, अनेक है, उससे भिन्नता है और चैतन्य अकेला ही है–यह बात प्रसन्नतापूर्वक सुनता है उसे केवलज्ञान ही होगा, मुक्ति होगी ही। १०४४.

❁ ऊपरसे बिजली गिरे तथापि खबर न पड़े ऐसा ध्यान कर। जो वस्तु उसकी नहीं है उसमें फेरफार होनेपर जिसे शान्ति न रहे वह ध्यान नहीं कर सकता। निर्विकल्प ध्यानमें तो बिच्छू काट ले तब भी खबर नहीं पड़ती, शरीरमें चाहे जैसा कष्ट आ जाये तब भी उसे पता नहीं चलता। १०४५.

❁ जितने भी विकल्प उठते हैं उन सबमें कोई लाभ नहीं है। वे सब दुःखका पंथ हैं, सब विकल्प हैरान–परेशान करनेवाले हैं–ऐसा निर्णय हो तो आत्माकी ओरके प्रयत्न करे। १०४६.

❁ बाहरी परीक्षामें फेल होनेपर उसे हीनता लगती है, परन्तु अंतरमें अपनेको हीन मानता है वह हीनता है। पूर्णको हीन मानना ही हीनता है। १०४७.

❁ जिसकी दृष्टिमें मन्दरागमें इष्टबुद्धि है उसकी दृष्टिमें सारे जगतके भोग पड़े हैं, वह दृष्टिमें मांसभक्षण कर रहा है। १०४८.

❁ आत्मानुभवकी दृष्टिसे तो पुण्य ही वास्तवमें पाप है। व्यवहारसे पुण्य–पापमें भेद हुआ वहाँ अज्ञानीको उमंग उठती है। १०४९.

❁ अरे! ऐसा नहीं मानना कि हम अनपढ़ हैं, ऐसा नहीं मानना कि हम स्त्री हैं, ऐसा नहीं मानना कि हम दीन–हीन हैं;–यह मान्यता ही तेरे परमात्माकी शत्रु है। १०५०.

❁ जबतक उसे अंतरमें भासित न हो कि–पैसेमें सुख नहीं है, पुण्य–पापमें सुख नहीं है, तबतक वह आत्माके सुखमें नहीं कूदेगा। १०५१.

❁ अहो! शरीर, संसार और भोगोंसे चेतते रहने जैसा है। १०५२.

❁ करना-धरना कुछ नहीं है, मात्र दृष्टिका साध्य राग था उस दृष्टिका साध्य द्रव्य हो गया। १०५३.

www.vitragvani.com

❁ राग तो पुद्गलके परिणाम हैं; परन्तु ग्यारह अंग तथा नवपूर्वका ज्ञान भी पुद्गलके परिणाम हैं, क्योंकि उससे आत्माकी शान्ति नहीं आयी। शान्ति नहीं आयी इसलिये वह आत्मा नहीं है; आत्माके साथ तो ज्ञानका आनन्द व्याप्त है; आनन्द नहीं आया इसलिये ग्यारह अंग नवपूर्वका ज्ञान भी रागकी भाँति पुद्गलके ही परिणाम हैं....यह तो उल्लसित वीर्यसे जिसे अपना कार्य करना है उसके लिये बात है। १०५४.

❁ ज्ञानी रागको अपना मानते नहीं हैं और आता है तो घबराते नहीं हैं। रागकी खटक आती है। समाधान नहीं होता तो बाह्य प्रवृत्ति भी हुए बिना नहीं रहती, शरीरकी चेष्टा आदि भी होती है। यह अंतरकी सूक्ष्म बात है। १०५५.

❁ नरकमें नारकीके शरीरकी गठरी बाँधकर दूसरे नारकी उसके शरीरके आरपार खीले ठोकते हैं, उस क्षण भी जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है। विवेक द्वारा भेदज्ञान प्राप्त करता है और यहाँ हर प्रकारकी अनुकूलता होनेपर भी तुझे परसे पृथक् होनेका अवकाश नहीं मिलता! १०५६.

❁ राग होनेपर भी साधकके हृदयमें सिद्ध भगवान उत्कीर्ण हैं। १०५७.

❁ उसे काल थोड़ा है और करनेके लिये कार्य बहुत है। १०५८.

❁ वस्तुस्वभाव तो शुद्ध और परम पवित्र है, उसमें विकार नहीं है किन्तु विपरीत जोर लगाकर जबरन विकार कर रहा है। जबरदस्ती करके जो नहीं हैं उन्हें (–विकारादिकको) उत्पन्न कर रहा है। भीतर शक्तिमें तो विकार है ही नहीं परन्तु उलटा जोर लगाकर उत्पन्न करता है। १०५९.

❁ छह खण्डका स्वामी चक्रवर्ती विचारता है कि अहो! आनन्दका कारण मैं एक स्वयं हूँ और यह सब दुःखके कारण निमित्त हैं....ऐसा वैराग्य होनेपर....सिर धुनती हुई रानियोंसे कहते हैं कि अरे! अब तुम सबकी ओरका राग जल गया है, हमारे आनन्दका कारण हमारे पास है, उस आनन्दको प्रगट करनेके लिये हम जा रहे हैं। हम आनन्दके भ्रमर हैं और आनन्दका पराग लेने भीतर अंतरमें उतर रहे हैं। हमारे आनन्दकी ऊर्मियाँ अंतरसे उमड़ रही हैं। अंतरमें कुछ देखा होगा न!–कि जिसके समक्ष यह सब सड़े हुए तृणसमान भासित होता है। १०६०.

❁ तत्काल अनुभव करनेवालोंकी संख्या भले अल्प होगी, परन्तु उसकी श्रद्धा दृढ़

www.vitragvani.com

करके पक्षको पक्का करनेवाले और उसीका मंथन करके अल्पकालमें कार्य कर लेनेवाले जीव अल्प ही क्यों कहलायेंगे? वे तो बहुत होते हैं। १०६१.

❁ अहो! अनन्तकालमें हमने यह बात नहीं सुनी–इसप्रकार प्रसन्न चित्तसे ज्ञानस्वभावकी बात अंतरसे सुने, रुचिको पलटकर सुने उसे भविष्यमें मुक्ति होना ही है। अहो! उसे पक्ष पक्का हो गया, वह बदलेगा नहीं। वह अवश्य मोक्षमें जायेगा; उसे तो यह काल तथा यह योग ही विशेष भासित होता है। नववें ग्रैवेयकवालेने प्रसन्नतापूर्वक इसप्रकार तत्त्वकी बात सुनी ही नहीं; उसकी दृष्टि तो पुण्यपर थी। यह तो अनंत कालमें नहीं सुनी हुई ऐसी अपूर्वतासे तत्त्वकी बात सुनता है उसकी बात है। १०६२.

❁ दर्पणकी वर्तमान अवस्थामें जल, कोयला, बर्फ, अग्नि, सर्पादि ज्ञात होते हैं; उस अवस्था जितना ही जो मानता है, अवस्था पलटने पर उसके पीछे जो स्वभाव रह जाता है उसे नहीं मानता। उसीप्रकार एक समयकी पर्याय जितना ही आत्माको माननेवाला ज्ञेय बदलने पर ज्ञानकी अवस्था बदल जाती है वहाँ मैं नष्ट हो गया ऐसा मानता है; परन्तु ज्ञानकी वह पर्याय बदल जानेपर भी ज्ञानस्वभाव उसके पीछे ज्योंका त्यों विद्यमान है उसे अज्ञानी नहीं मानता। १०६३.

❁ यह आत्मा और यह गुण.....यह आत्मा और यह पर्याय.....ऐसे भेदका अभेद आत्मामें अभाव है। आत्मामें जो बड़प्पन और महिमा भरी है वह भगवान घोषित करते हैं कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता आदि अनन्तस्वभावका एकरूप ऐसा जो स्वभावरूप स्वद्रव्य वह निर्विकल्प वस्तुमात्र है। अनन्त–अनन्त स्वभावसे भरपूर अभेद एकरूप आत्मा वही स्वद्रव्य होनेसे उपादेयरूप है। १०६४.

❁ अहाहा! पर्यायका विमुख होना वह कोई साधारण बात है? पर्याय अनादिसे परमें जाती है उसे विमुख करके–पलटाकर अंतरमें ले जाना है। भीतर तलमें ले जानेमें महान पुरुषार्थ है। परिणाममें अपरिणामी भगवानके दर्शन हों वह पुरुषार्थ अपूर्व है। १०६५.

❁ जीवको अटकनेके अनेक प्रकार हैं। अटकना क्या है वह विचारके बिना नहीं बैठेगा। कहाँ भूल है और क्या मैं मानता हूँ? अतीन्द्रिय आनन्दके बिना जो कुछ बाह्य क्रिया है उसमें अटकता है। मैं व्रत पालता हूँ, ब्रह्मचर्य पालता हूँ, विशेष जानपना है–इत्यादि असंख्यात प्रकारके अटकनेके कारण हैं। प्रभु! अनन्तकालमें मनुष्यपना प्राप्त करना कठिन है; तुझे वह मनुष्यपना प्राप्त हुआ तो प्रभु! दुनियाकी बात छोड़ दे। मैं कुछ हूँ

www.vitragvani.com

ऐसी दृष्टि छोड़ दे। सर्वत्रसे विमुख हो। मात्र चैतन्य- दरबारमें अनंत अनंत शान्ति भरी पड़ी है उसका वेदन कर। दूसरा सब छोड़कर आनन्दकन्द प्रभुके दरबारमें जा। १०६६.

❀ अपने ज्ञायकस्वभावमें मैत्री होना चाहिये, उसके बदले परपदार्थ निमित्त हैं, उसमें प्रेम वर्तता है, वहाँ रुक गया है, ज्ञातृत्वकी पर्यायमें बाह्य पदार्थ निमित्त होनेसे उसमें मैत्रीके कारण आत्मविवेक शिथिल अर्थात् विपरीत हुआ है, इसलिये अपने आत्माके प्रति द्वेष वर्तता है। सच्चिदानन्दप्रभु निरंजन निराकार आत्मा जो कि ज्ञानलक्षण द्वारा लक्षित होनेवाला है उसे भूलकर ज्ञानकी पर्यायमें जो ज्ञेय निमित्त हैं वे जानने योग्य हैं–ऐसा न जानकर परपदार्थोंमें–निमित्तोंमें मैत्री करता है, इसलिये स्वभावके प्रति विपरीतता वर्तती है, द्वेष वर्तता है। १०६७.

❀ भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूपसे विराजमान है, उसे अतीन्द्रियज्ञानसे जानना होता है परन्तु इन्द्रियों द्वारा जानना नहीं होता, इन्द्रियों द्वारा जाननेका कार्य उसके नहीं होता। उसको अर्थात् ज्ञायक आत्माको लिंगों द्वारा अर्थात् पाँच इन्द्रियों द्वारा जानना नहीं होता। इन्द्रियों द्वारा जाननेका कार्य करे वह आत्मा नहीं है। इन्द्रियाँ अनात्मा हैं, इसलिये उनके द्वारा जाननेका कार्य करे वह ज्ञान अनात्मा है। शास्त्रश्रवण करे और उसके द्वारा जो ज्ञान हो उस ज्ञानको आत्मा नहीं कहते। शास्त्र सुनते हुए ख्यालमें आये कि यह कह रहे हैं–ऐसा जो जानना हुआ वह इन्द्रिय द्वारा हुआ है, इसलिये उसे आत्मा नहीं कहते। १०६८.

❀ भगवान आनन्दका नाथ चैतन्यचक्रवर्ती है किन्तु अपनेको भूल गया है और भिखारी हुआ परके पास भीख माँगता है। पैसा लाओ! स्त्री लाओ! प्रतिष्ठा लाओ! निरोगता लाओ!—इसप्रकार भीख मंगा होकर माँगता रहता है, परन्तु अपनेमें ही आनन्द भरा है उसके समक्ष दृष्टि नहीं करता, इसलिये चार गतियोंमें भटकता हुआ दुःख भोगता है। शुभराग तथा अशुभरागकी वासना वह विषकी वासना है। जहाँ आनन्दका नाथ है वहाँ दृष्टि नहीं करता और जहाँ आनन्द नहीं है वहाँ व्यर्थ प्रयत्न करता है। १०६९.

❀ रागको जानना वह ज्ञानका स्वकाल है; आत्मा रागमें व्याप्त नहीं होता। ज्ञानकी जाननेकी पर्याय और रागकी पर्याय अपने–अपने षट्कारकोंसे स्वतंत्र होती है। परकी दया तो आत्मा नहीं पाल सकता, परन्तु रागको भी आत्मा नहीं करता और रागमें व्यापता भी नहीं है। रागके कालमें होनेवाले रागपरिणामोंको स्वकालमें होनेवाली ज्ञानपर्याय जानती है, परन्तु कर्ता नहीं है। १०७०.

www.vitragvani.com

❁ वर्तमानमें किंचित् एक प्रतिकूलता आये तो वह उससे सहन नहीं होती, किन्तु भविष्यमें अनन्त प्रतिकूलताएँ आयेंगी उनकी परवाह नहीं है। १०७१.

❁ सम्यग्दृष्टिकी लौकिक नीति भी अलौकिक–अन्य प्रकारकी होती है! १०७२.

❁ बाह्य वैभवमें सुख मानना वह विष्टामें सोकर उसमें सुख मानने जैसा है। १०७३.

❁ भाई! यह तो पचाकर परिणमित करनेकी बात है। वाद-विवादकी बात नहीं है। वाद–विवादमें मौन रह जाना पड़ता है....शास्त्रमें ऐसा लिखा है और वैसा लिखा है...यह तो वीतरागता उत्पन्न करनेकी बात है। १०७४.

❁ परद्रव्यसे बिलकुल लाभ नहीं होता,–ऐसा पहले विकल्पसहित निर्णय करे तो उसका वीर्य स्वोन्मुख होगा। परसे कुछ भी लाभ होता है ऐसा मानेगा तो उसका वीर्य आत्मोन्मुख नहीं होगा। १०७५.

❁ अरे, उसने कभी आत्माकी परवाह नहीं की। बाह्यमें यहाँसे मिलेगा, वहाँसे मिलेगा–इसप्रकार बाह्यमें ही मिथ्या प्रयत्न करके सम्मेदशिखरसे कुछ मिल जायेगा, अन्यत्र कहींसे मिलेगा–ऐसी भ्रमणामें वह स्वयंको खो बैठा है! १०७६.

❁ अज्ञानीकी विद्वत्ता उसके आत्माको सुलगा देती है। १०७७.

❁ आचार्यके मुखसे निकले और समस्त पाप क्षयके हेतुभूत ऐसे प्रतिक्रमणादिरूप शुभ भाव ग्रहण करने योग्य नहीं हैं; क्योंकि वे पौद्गलिक वचनमय होनेसे स्वाध्याय हैं। अहा! यहाँ पापक्षयके कारणभूत ऐसे द्रव्यश्रुतको, पुद्गलमय होनेसे, ग्रहण करने योग्य नहीं हैं ऐसा कहकर अकेले आत्माको ही ग्रहण करनेकी प्रेरणा दी है। १०७८.

❁ तीनलोकके नाथ सर्वज्ञके निकट भी हितकी कामना करना वह भी भ्रम है, अन्य देवी–देवताओंकी तो बात ही क्या है! १०७९.

❁ जहाँ निचली बातका ठिकाना न हो वहाँ ऊँची बात तो कैसे बैठेगी? पात्रतारूप निचली बातका ठिकाना न हो उसे ऊँची अर्थात् अध्यात्मकी अलौकिक बात कैसे बैठ सकेगी? १०८०.

❁ जिसे प्रतिकूलतामें द्वेष आता है उसे अनुकूलताका राग पड़ा ही है। द्वेषके पेटमें

www.vitragvani.com

राग पड़ा है, रागके पेटमें द्वेष पड़ा है। यह मिथ्यात्वके राग–द्वेष हैं, अस्थिरताके राग-द्वेष तो ज्ञेयमें जाते हैं। १०८१.

❁ एक न्याय मस्तिष्कमें ऐसा आया था कि–"धनार्थी है वह आत्मार्थी नहीं है और आत्मार्थी है वह धनार्थी नहीं हैं।" धनार्थीमें मान–प्रतिष्ठा आदिका अर्थी–सब आ जाता है। १०८२.

❁ श्रोता :—व्यवहार बंधका कारण है तो हमें करना या नहीं?

पूज्य गुरुदेव :—यह प्रश्न ही कहाँ है! परन्तु जबरन् व्यवहार–विकल्प आये बिना रहेंगे ही नहीं। १०८३.

❁ मैं वणिक हूँ ऐसा तो नहीं, परन्तु मैं मनुष्य हूँ–ऐसा माननेवालेने जीवको मार डाला है। मैं अल्पज्ञानवाला हूँ, मैं राग करनेवाला हूँ–ऐसी मान्यतावालेने अपने जीतेजी जीवको मार डाला है। उसका अनादर करना ही उसे मारना है। १०८४.

❁ स्वर्गमें जाने योग्य परिणामोंका भी जिसके ठिकाना नहीं है, मनुष्यमें जाने योग्य परिणामोंका भी जिसके ठिकाना नहीं है, उसे धर्म प्राप्त करने योग्य परिणाम हो ही नहीं सकते। १०८५.

❁ जबतक आत्मामें सुख है ऐसा भास न हो और परमें सुख नहीं है ऐसा भास न हो तबतक उसे आत्माका अनादर वर्तता है। १०८६.

❁ आत्मस्वभावके श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र जैसी कोई निरुपाधि नहीं है और अंतरमें राग–द्वेष तथा मिथ्यात्व जैसी कोई उपाधि नहीं है। १०८७.

❁ विषय–कषायकी रुचि तो छूटी नहीं है और मात्र ज्ञातृत्व है, वह ज्ञातृत्वके नामपर आत्माको ठगता है। वह ज्ञातृत्व है ही नहीं। सच्चा ज्ञातृत्व होनेसे तो विषय–कषायकी रुचि छूट जाती है। १०८८.

❁ भगवानकी वाणीमें तो मानों चैतन्यहीरा सराण पर चढ़ा है! वह सुननेको मिलना भी हीरेके कण मिलना है। १०८९.

❁ देह तो रोगकी मूर्ति है और भगवान आत्मा आनन्दकी मूर्ति है। मृतक शरीरमें अमृतका सागर भगवान मूर्च्छित हुआ है। भाई! एकबार तू अपनेको देख; दूसरोंको देखनेमें अंध हो जा और स्वयं अपनेको हजार आँखोंसे देख। १०९०.

www.vitragvani.com

❁ शर्करामें मात्र मिठास ही भरी है; उसी प्रकार आत्मामें मात्र आनन्द ही भरा है। उसका एक क्षण भी विश्वास करे तो आनन्द झरमर-झरमर झरता है; वर्षा होती है, उसे सुप्रभात कहते हैं। (नूतनवर्षके प्रभातमें) १०९१.

❁ भगवान आत्मा परम अमृतस्वरूप है। अमृत अर्थात् आत्मा अमर है, अक्षय है और अमृतस्वरूप अर्थात् अमृतका सागर, अमृतका प्रवाह! १०९२.

❁ लड़की भाग जाये तो दुःखी-दुःखी हो जाता है, परन्तु आत्मा भाग गया है अनादिसे, उसे देख न!....आत्मा विकारमें जाता है उसकी शर्म कर न! १०९३.

❁ सद्गुरुने मारे शब्दोंके बाण और अंतरमें खिल उठा भगवान! १०९४.

❁ विकल्पात्मक निर्णयसे मुझे लाभ होगा ऐसा माना, उसने तो मिथ्यात्वको समग्र दृढ़ किया है। शुभभावसे लाभ माननेकी भाँति इसमें भी मिथ्यात्व दृढ़ होता है। १०९५.

❁ भाई! तू सांसारिक प्रसंगोंका स्मरण किया करता है, किन्तु स्वयं पूर्णानन्दका नाथ अनंत गुणरत्नोंसे भरपूर महाप्रभु सदा ज्योंका त्यों है उसे याद कर न! स्त्री-पुत्रादिको मैंने इसप्रकार संतुष्ट किया था और ऐसे भोग-विलास किये थे-ऐसे पूर्वके प्रसंगोंका स्मरण किया करता है परन्तु वे तो सब तुझे दुःखके कारण हैं; सुखका कारण तो तेरा स्वभाव है; वह तो सदा शुद्धरूप ज्योंका त्यों विद्यमान है; चार गतियोंमें परिभ्रमण करने पर भी तेरा सुखसागर स्वभाव ज्योंका त्यों भरा पड़ा है उसे याद कर-उसका स्मरण कर! भाई, वह एक ही तेरे लिये सुख-शान्तिका कारण होगा। १०९६.

❁ जैनदर्शनमें जैसा व्यवहार कहा है वैसा न माने तो वह निश्चयाभासी है और यदि उस व्यवहारको धर्म माने तो वह व्यवहाराभासी है। १०९७.

❁ जिसप्रकार केवलज्ञानी लोकालोकके कर्ता नहीं हैं, किन्तु मात्र ज्ञाता हैं, उसीप्रकार ज्ञानी शुभभावका कर्ता नहीं किन्तु मात्र ज्ञाता है। असंख्यात प्रकारके शुभभाव हैं वे सहज हैं, उनका कर्ता धर्मी जीव नहीं है। जिस समय जिस प्रकारका राग आता है उस प्रकारके संयोगकी ओर उसका लक्ष जाता है। १०९८.

❁ यह चैतन्यतत्त्व तो कोई अगम्य वस्तु है। वह बाहरी वैराग्यसे या ज्ञानके क्षयोपशमसे प्राप्त हो जाये ऐसी वस्तु नहीं है। अंतरमें अव्यक्त तथापि प्रगट अचिन्त्य वस्तु विद्यमान है, उसके माहात्म्यकी ओर जायेगा तो वह गम्य होगी और जन्म-मरणका अन्त आ जायेगा ऐसी वस्तु है। १०९९.

www.vitragvani.com

❁ परसत्तावाले तत्त्वोंको ग्रहनेका, तथा उन्हें त्यागनेका अभिमान वह अभिमान ही मिथ्यात्व है और वह सप्त-व्यसनके पापकी अपेक्षा महान पाप है। ११००.

❁ भाई! तू शरीरके सामने न देख! तेरे विकल्प व्यर्थ जाते हैं और आत्मकार्य भी नहीं होता। शरीर धोखा दे जायेगा। भाई! अपने आत्माका करना है वह कर ले। ११०१.

❁ सुनते समय तो उसे आत्माका स्वरूप स्पष्ट लगता है तथापि उसका भ्रमजाल बना रहता है; उसका कारण यह है कि उसने ज्ञानकी नींव गहरी डाली ही नहीं है। ११०२.

❁ बाल चीरनेकी तो क्या बात! किन्तु यह तो परमाणुको चीरनेकी बात है; परमाणु क्या किन्तु उसकी अनंत पर्यायोंको चीरनेकी बात है। एक पर्यायको दूसरी पर्यायकी सहायता नहीं है। आत्माके अनन्त गुणोंकी पर्यायमें एक पर्यायको दूसरी पर्याय सहायक नहीं है। पर्याय पर्यायकी योग्यतासे षट्कारकोंसे स्वतंत्र परिणमती है। अहो! यह तो जैनदर्शनके पेटकी स्वतंत्रताकी मूल बात है। ११०३.

❁ जैसे सारा जगत पड़ा है, उसे ग्रहण क्या करे और छोड़े क्या? ज्ञानी उसमें प्रवर्तता नहीं है; उसी प्रकार राग-व्यवहार भी जगतकी वस्तु है, उसे छोड़े क्या और ग्रहण क्या करे? ज्ञानी उसमें प्रवर्तता नहीं है, मात्र भिन्नरूपसे जानता ही है। ११०४.

❁ ज्ञातास्वभावको रागका कार्य सौंपना उसका अनादर है। सिद्ध भगवानसे कहना कि आप आकर मेरी दया करो, वह तो ज्ञातास्वभावसे राग करनेको कहने जैसा है। ११०५.

❁ जैसे छह द्रव्य जगतमें पड़े हैं, वैसे ही राग-व्यवहार भी जगतमें पड़ा है। (राग) छह द्रव्योंके साथ तन्मय है, आत्माके साथ तन्मय नहीं है-ऐसा ज्ञानी जानते हैं। ११०६.

❁ क्रोधमें रंगा हुआ कहता है कि हम क्रोधके ज्ञाता हैं, तो ऐसा नहीं है, वह तो क्रोधसे रंगा हुआ है ज्ञाता नहीं है। जो ज्ञानसे रंगा हुआ है वही क्रोधपरिणामोंका ज्ञाता है। ११०७.

❁ अहो! एकबार शरीर छूटनेके अवसरका विचार करे तो उसे खबर पड़े कि अरे! यह कैसा खेल है! वह परमेश्वर (आत्मा) और फँसा हुआ है इसमें... (शरीरमें)!! ११०८.

❁ मनुष्यपर्यायका एक-एक क्षण महान कौस्तुभमणिसे भी मूल्यवान है। इसमें चौरासीकी खानसे निकलनेका यत्न करना है। एक-एक क्षण करोड़ों-अरबों रुपयोंसे भी

www.vitragvani.com

मूल्यवान है। चक्रवर्तीके छह खण्डके राज्यसे भी एक समय थोड़े ही मिल सकता है? इसमें (-मनुष्यपर्यायमें) यह एक ही करने योग्य है। ११०९.

❁ पहले तो अपनेको विकल्पवाला मानना और फिर विकल्पको टालनेका प्रयत्न करना वही बड़ीसे बड़ी विपरीतता है, मिथ्यात्व है। पहले ऐसी दृष्टि करे कि मैं विकल्परहित हूँ, फिर विकल्प छूटते हैं। १११०.

❁ कितने ही लोगोंको ऐसा लगेगा कि यह तो सामर्थ्यसे बाहरकी बात है! अरे, सामर्थ्यसे बाहरकी क्या?–एक समयमें केवलज्ञान प्राप्त करे इतनी उसकी सामर्थ्य है। यह तो हाथीके ऊपर फूल रखने जैसी सरल बात है। ११११.

❁ निहालभाईने तो (द्रव्यदृष्टिप्रकाशमें) लिखा है कि–सुननेवालेको नुकसान और सुनानेवालेको भी नुकसान,–दोनोंको नुकसान है। सामनेवाले समझें तो ठीक, यह दीनता है न! ११११२.

❁ अहो! भावलिंगी मुनि यानी चलते हुए परमेश्वर! जो भीतर आनन्दके झूलेमें झूलते हों और पंचमहाव्रतका राग उठे उसे विष मानते हों, अहा! जिनके दर्शन बड़े भाग्यसे प्राप्त होते हों, जो आनन्दकी खेती कर रहे हों...वह धन्य दशा अलौकिक है। गणधरोंका नमस्कार जिसे पहुँचता हो उस दशाकी क्या बात! १११३.

❁ भाई! तुझे बहुत पुरुषार्थ करना है। हरिहरादि भी पीछे रह गये, पहुँच नहीं पाये, तुझे तो प्रारंभ करना है, तुझे प्रभुके घर पहुँचना है, इसलिये तुझे तो बड़े पुरुषार्थकी आवश्यकता होगी। १११४.

❁ जैसे शकरकन्द आगमें भुनता है वैसे ही आत्मा विषय-वासनाकी आगमें भुन जाता है; परन्तु उसकी उसे खबर नहीं है इसलिये सुख मानता है। १११५.

❁ यह चैतन्य तो अपंग है। हिलता नहीं, चलता नहीं, बोलता नहीं, विकल्प नहीं करता; जो होता है उसे मात्र जाननेके स्वभाववाला ज्ञाता–द्रष्टा ही है। १११६.

❁ अहो! संत–मुनि ऐसे एकान्तमें चले गये हैं जहाँ मनुष्य तो न हों, किन्तु उनका पगरव भी नहीं हो। आत्माकी शोध करने गये हैं। यह तो आत्मशोधनका काल है; परन्तु परकी तथा रागकी शोधमें ही सारा जीवन बीत जाता है। १११७.

❁ ज्यों-ज्यों ज्ञानमें समझ द्वारा भावभासनमें वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों ज्ञानका सामर्थ्य भी बढ़ता जाता है और उस बढ़ते हुए ज्ञानसामर्थ्य द्वारा मोह शिथिल होता जाता है। ज्ञान

www.vitragvani.com

जहाँ सम्यक्रूपसे परिणमता है वहाँ मोह समग्र नष्ट हो जाता है इसलिये ज्ञानसे ही आत्माकी सिद्धि है, ज्ञानके सिवा अन्य कोई आत्मसिद्धिका साधन नहीं है। १११८.

❁ "कुछ करना ही नहीं, मैं अपनेको देखूँ,"–ऐसा भी जहाँ विकल्प नहीं है, आत्मा तो चैतन्यसूर्य है, उसमें पर या रागका कर्तृत्व ही कहाँ है? आत्माके द्रव्य–गुणमें उसकी गंध ही नहीं है। मैं अपनेको जानूँ–देखूँ ऐसा विकल्प भी जहाँ नहीं है। ज्ञाता-द्रष्टा स्वभावमें स्थिर हो जाये ऐसी दशाको स्वानुभव कहते हैं। ११११९.

❁ धन कमानेका काल है वह तो मरनेका काल है। यह तो कमानेका काल है–आत्माके आनन्दको कमानेका काल है, इसे चूकना नहीं। ११२०.

❁ सारी दुनियाका चाहे जो हो, किन्तु मेरा भगवान तो मेरे पास ही है। मुझे तो सदा लाभ ही है, अलाभकी बात ही मेरे नहीं है। ११२१.

❁ मेरु पर्वत उठाना सरल है परन्तु यह पुरुषार्थ उठाना कठिन है; इसीलिये शास्त्रमें इस पुरुषार्थको दुर्लभ कहा है। सहजस्वभावसे सरल है परन्तु अनादि अनभ्यासके कारण दुर्लभ है। ११२२.

❁ एकबार अंतरमें दृष्टि कर कि मैं भी सिद्धकी भाँति अशरीरी हूँ, शरीरका स्पर्श ही नहीं करता; वर्तमानमें ही शरीरसे पृथक् हूँ ऐसी श्रद्धा न करे तो जब शरीरसे पृथक् होगा तब उसकी अभिलाषा शरीरके प्रति ही बनी रहेगी। ११२३.

❁ जिसके सिर पर जन्म–मरणकी तलवार लटक रही है और संयोगोंमें संतोष मान रहा है वह पागल है। ११२४.

❁ कोई मनुष्य मूक, बधिर एवं अंध हो इसलिये वह पंचेन्द्रिय नहीं है–ऐसा नहीं। उस प्रकारका लब्ध–विकास तो उसे होता है; परन्तु उपयोगकी योग्यता नहीं है; उसी प्रकार आत्मा वर्तमान पर्यायमें अल्पज्ञ होनेपर भी शक्तिरूपसे अल्पज्ञ नहीं है, शक्तिरूपसे तो सर्वज्ञ है। ११२५.

❁ एकरूप अभेद निर्विकल्प वस्तु वह स्वद्रव्य है और उसमें गुण या पर्यायके भेदकी कल्पना करना वह भेदकल्पना परद्रव्य है। आत्मा और यह गुण, इसप्रकार अभेद वस्तुमें भेद करना वह परद्रव्य है। शरीर–मन–वाणी परद्रव्य तो कहीं रह गये; यहाँ तो ज्ञानादि अनन्त गुण वे आधेय हैं और आत्मा उनका आधार है–ऐसे आधेय-आधारके भेद करना वह परद्रव्य है, इसलिये वह हेय है। परद्रव्यके लक्षसे तो राग होता है परन्तु अभेद वस्तुमें भेद करके देखनेसे भी राग होता है। गजब बात है न! अन्तिमसे अन्तिम शिखरकी बात है। ११२६.

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

❁ पर्यायदृष्टिवान जीव दया, दान, पूजा, भक्ति, यात्रा, प्रभावनादि अनेक प्रकारके शुभभावोंका कर्ता होकर, दूसरोंकी अपेक्षा स्वयं कुछ अधिक है–ऐसा अहंकार करता हुआ मिथ्यात्वभावको दृढ़ करता है और निश्चयस्वरूप मोक्षमार्गको लेशमात्र भी नहीं जानता। ११२७.

❁ तीन लोकका नाथ सम्राट नींदमें पड़ा है उसे जगानेकी बात है! जाग रे जाग, तुझे लुटेरे लूट रहे हैं। जाग रे....जाग! यह जगानेवाली बात जिसे सुननेको मिलती है वह भी महा भाग्यशाली है। ११२८.

❁ बाहरी अनुकूलता हो तो मुझे ठीक रहे, यह मान्यता ही आत्माके लिये प्रतिकूल है। बाहरकी प्रतिकूलता मुझमें है ही नहीं–ऐसा निर्णय तो पहले ही कर लिया है, उसे क्या बाधा होगी? ११२९.

❁ पुण्यके परिणामोंका कार्य सर्वज्ञको सौंपा जाता है? चक्रवर्तीको गोबर उठानेका काम नहीं सौंपा जाता, उसीप्रकार आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, उसकी प्रतीति हुई उसे पुण्यकार्यमें कर्ताबुद्धि नहीं होगी। ११३०.

❁ आक्रन्द तो इसका होना चाहिये कि मैं ऐसी-ऐसी शक्तिवाली वस्तु हूँ; फिर भी संसार क्यों? ११३१.

❁ वस्तु पृथक् है...बस उसे दृष्टिमें पृथक् करना। फिर चाहे जहाँ हो तथापि पृथक्की पृथक् ही है। यही मोक्षका मार्ग है, दुःखसे छूटनेका दूसरा मार्ग नहीं है...दूसरी बात रहने दे भाई! ११३२.

❁ एकवार एक प्रदेशमें अकाल पड़नेसे गरीब लोग भूखके मारे राजाके पास गये और प्रार्थना की–महाराज! हम भूखसे मर रहे हैं, हमारे पास अनाज नहीं है। तब राजा बोला कि—अनाज न हो तो खाजा खाओ! गरीब बेचारे कुछ समझे नहीं कि महाराज यह क्या कह रहे हैं! बोले–महाराज, हमारे पास अनाज ही नहीं है फिर खाजा तो कहाँसे होंगे?...लेकिन यहाँ तो सबके पास खाजा रखे ही हैं; नहीं हैं ऐसा नहीं। यहाँ तो भाई! तुम्हारी अंतर्शक्तिमें अतीन्द्रिय आनन्दके खाजा अर्थात् खजाने भरे हैं, तुम अंतर्दृष्टि करो इतनी देर है। ११३३.

❁ देवरानी–जेठानी आदिको जब अलग होना होता है तब पहलेसे एक-दूसरेके दोष ढूँढ़कर बुरा बोलने लगती हैं, वे उनके अलग होनेके लक्षण हैं। उसीप्रकार ज्ञान और रागके बीच भेदज्ञान होनेका यह लक्षण है कि ज्ञानमें रागके प्रति तीव्र अनादरभाव जागृत होता है, वह उन दोनोंके बीच भेदज्ञान होनेका लक्षण है। आत्मामें रागकी गंध नहीं है। रागके जितने

www.vitragvani.com

विकल्प उठते हैं उनमें जलता हूँ, उनमें दुःख ही दुःख है–विष है–ऐसा निर्णय पहले ज्ञानमें कर ले तो भेदज्ञान प्रगट होता है। ११३४.

❁ अहाहा! जिसप्रकार परमाणु पलटकर वर्णादि रहित नहीं होता उसीप्रकार भगवान आत्मा पलटकर वस्तुस्वभाव नहीं बदलता, वस्तु रागादिरूप नहीं होती। ऐसी वस्तुकी श्रद्धा एवं दृष्टि करनेकी बात है। चैतन्य जगमग ज्योति पलटकर क्या राग हो जायेगी? क्या जड़ हो जायेगी?–ऐसा कहकर परसे एकत्व तुड़वाया है। भगवान आत्मा त्रैकालिक है, अनादि–अनन्त है और विकार एक समयकी क्षणिक पर्याय है। इसलिये जैसे परमाणु पलटकर वर्णादिरहित नहीं होता वैसे ही भगवान आत्मा निगोदमें चला जाये तथापि वस्तुस्वभाव नहीं बदलता, रागादिरूप नहीं होता। यह तो बेनके (बहिनश्रीके) वचन हैं। ११३५.

❁ सिरको काटनेवाला, कंठको छेदनेवाला, अपना जितना अहित नहीं करता उतना अहित अपना मिथ्या अभिप्राय करता है। जगतको अपने विपरीत अभिप्रायकी भयंकरता भासित नहीं होती। ११३६.

❁ आत्मा दैवी शक्तियोंसे परिपूर्ण देव है। यह आत्मा ही देवाधिदेव है। इसके अंतरंगसे आनन्दका स्वाद आनेपर इन्द्रके सुख घूरे जैसे लगते हैं। ११३७.

❁ बेनके (बहिनश्रीके वचनामृतके) बोलमें आता है कि आत्माने तो एक ज्ञायकभावका ही वेश परमार्थतः धारण किया है। आत्माने तो नित्य एक ज्ञायकभावका ही वेश धारण किया है। ज्ञायकतत्त्वका परमार्थतः कोई वेश नहीं है। संवर, निर्जरा और मोक्ष तो पर्यायवेश है। आत्माको तो परमार्थतः ज्ञायकपनेका ही वेश है और ज्ञायकभावको पर्यायवेश परमार्थतः नहीं है। संवर, निर्जरा और मोक्ष यह पर्यायवेश भी ज्ञायकको नहीं है। ११३८.

❁ बहुश्रुतके हृदयमें तीर्थंकर देवका वास है, ज्ञानीके हृदयमें तीर्थंकर निवास करते हैं, इसलिये उनकी वाणीमें जो तीर्थंकर कहते हैं वही बात आती है। ११३९.

❁ जैसे किसीको एकबार भीषण शारीरिक वेदना हो चुकी हो और फिर वैसी ही वेदना होगी ऐसे चिह्न दिखाई देनेपर वह भयसे काँप उठता है–भयभीत हो जाता है; उसीप्रकार चौरासीके अवतारोंके दुःखोंका स्मरण करते हुए भयसे काँप उठता है। ११४०.

❁ अहो! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञानकी तलहटी! आनन्दानुभवके झूलेमें झूलते हुए हजारों बिच्छुओंके काटने पर या पचास कोस दूर भीषण वज्रपातकी घोर ध्वनि होनेपर भी जिसे खबर नहीं पड़ती और आनन्दकी गहरायीमें उतरकर क्षणमें केवलज्ञान प्राप्त कर लें उस अद्भुत मुनिदशाकी क्या बात! धन्य है वह दशा! ११४१.

www.vitragvani.com

❁ सत्य बात समझनेमें टिका रहना वह भी एक पुरुषार्थ है। ११४२.

❁ कोई भी जीव अपने अस्तित्वके बिना क्रोधादि होनेके कालमें यह नहीं जान सकता कि यह क्रोधादि हैं। अपने अस्तित्वमें ही वे क्रोधादि ज्ञात होते हैं। रागादिको जानते हुए भी ज्ञान...ज्ञान ऐसा मुख्यतः ज्ञात होनेपर भी ज्ञान सो मैं ऐसा न मानकर, ज्ञानमें ज्ञात होनेवाले रागादि सो मैं, ऐसा रागमें एकत्वबुद्धिसे जानता है–मानता है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। ११४३.

❁ सातवें नरकमें पड़ा जीव भी अपनी मतिमें आत्माका वास कराता है। पंचेन्द्रियके उत्कृष्ट दुःखोंका यह स्थान है; तथापि यह जो दुःख है। सो मैं नहीं हूँ, विकल्प वह मैं नहीं हूँ, एक समयकी पर्यायमें भी पर्यायका वास नहीं कराता किन्तु एक समयकी पर्यायमें संपूर्ण द्रव्यको वसाया है जिसने अपनी मतिमें आत्माको वसाया उसकी गतिमें वह परमात्मा ही होता है और जिसने अपनी मतिमें पुण्य–पापको वसाया उसे चार गतियाँ ही मिलती हैं। ११४४.

❁ सम्यग्दर्शन करनेके लिये बारम्बार इसीकी स्वाध्याय करना, मन्थन करना, इसीकी बारम्बार स्वाध्याय करनेसे निर्णय होता है और निर्णय होनेपर सम्यग्दर्शन होता है। ११४५.

❁ भगवानने उपदेश दिया, परन्तु शासनका क्या हुआ अथवा किसे लाभ हुआ, वह देखनेके लिये भगवान नहीं रुकते; उसीप्रकार सम्यग्दृष्टिको भी विकल्प उठा और वाणी निकली, परन्तु किसे लाभ हुआ, कितना लाभ हुआ यह वे नहीं देखते। अपने आत्मामें देखते हैं। ११४६.

❁ जगतकी धन–संपत्ति मिलना सरल है, परन्तु इस तत्त्वका मिलना दुर्लभ है, इसके श्रवण आदिके साधन मिलना भी दुर्लभ है। इस कालमें यह शास्त्र प्रगट हुए वह लोगोंका सौभाग्य है। ऐसे शास्त्र घरेलू सरल भाषामें प्रकाशित हुए हैं। ११४७.

❁ स्वभावका पक्का पक्ष हो जाये तो यह जहाँ जाये वहाँ भी अपना कार्य कर सकता है। मोक्षमार्गप्रकाशकमें भी कहा है न? कि–या तो इसी भवमें सम्यक्त्व प्राप्त करता है। निश्चयका पक्ष जीवने कभी किया ही नहीं–ऐसा कहा है न! यह भी एक स्थिति है इसलिये कहा जाता है न! परन्तु वह (–निश्चयका पक्ष) किये है यह कुछ नहीं कहा जाता। जितना कारण दे उतना कार्य तो आता ही है न! ऐसा जीव तो आगे ही आगे बढ़ता जाता है, मात्र विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव ही नहीं हुआ, परन्तु श्रद्धा तो पक्की हो गई है। ११४८.

www.vitragvani.com

❁ हे जीव! स्त्री-पुत्रादिके कारण तू जो हिंसादि पाप करता है उसका फल तुझे अकेलेको भोगना पड़ेगा, दुःखफल भोगनेके लिये स्त्री-पुत्र या सगे-सम्बन्धि साथ नहीं आयेंगे। स्त्री-पुत्र, सगे-सम्बन्धियों आदिके ममत्वसे तू हिंसा, झूठ आदि अनेक प्रकारके पाप करता है, तथा अंतरमें रागादि विकल्पों द्वारा रागादिरहित शुद्ध चैतन्य भगवान आत्माकी हिंसा करता है, परन्तु उसके फलमें जो दुःख भोगना पड़ेंगे उस समय स्त्री-पुत्रादि उस दुःखमें सम्मिलित होने नहीं आयेंगे; तुझे अकेले ही नरक–निगोदादिके अनेक दुःख सहना पड़ेंगे। जिनके कारण तू पाप कर रहा है वे तेरे साथ दुःख भोगनेको तो नहीं किन्तु देखनेको भी नहीं आयेंगे। ११४९.

❁ भावकभाव तथा ज्ञेय मेरे होकर पुनः मोह उत्पन्न करें वह मुझे नहीं है। क्यों?–कि अपने निजरससे, अपनी निज शक्तिके सामर्थ्यसे मोहको मूलसे उखाड़ दिया है। मोह पुनः क्यों उत्पन्न नहीं होगा?–कि अपने स्वभावके सामर्थ्यसे–कर्मसे या निमित्तसे नहीं परन्तु अपने निजरससे ही–मोहको मूलसे उखाड़ दिया है। अहाहा! क्या समयसार! क्या उसका कथन करनेवाले संत! और क्या उसके श्रोता! जिसे समझाया है और जो समझा है ऐसा श्रोता कहता है कि अपने पूर्णस्वभावकी सावधानीके सामर्थ्यसे मैंने मोहको मूलमेंसे उखाड़ डाला है इसलिये पुनः हमें मोह उत्पन्न होनेवाला नहीं है। ११५०.

❁ यह तो सनातन स्याद्वाद जैनदर्शन है। उसे जैसा है वैसा समझना चाहिये। त्रैकालिक ध्रुववस्तुकी अपेक्षासे एक समयकी शुद्धपर्यायको भी भले हेय कहते हैं परन्तु दूसरी ओर शुभराग आता है, होता है, उसके निमित्त देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका शुभराग होता है, भगवानकी प्रतिमा होती है, उन्हें न माने तब भी मिथ्यादृष्टि है। भले ही उनसे धर्म नहीं है परन्तु उनका उत्थापन करे तो मिथ्यादृष्टि है। शुभराग हेय है, दुःखरूप है परन्तु वह भाव होता है, उसके निमित्त भगवानकी प्रतिमा आदि होते हैं, उसका निषेध करे तो वह जैनदर्शनको नहीं समझा है इसलिये मिथ्यादृष्टि है। ११५१.

❁ यह आत्माको परमात्मा होनेकी बात अरबों रुपये दे तब भी सुननेको मिले ऐसी नहीं है। यह परमात्मतत्त्वकी बात पैसेकी वस्तु ही नहीं है। इसका मूल्यांकन पैसेसे नहीं हो सकता; बाह्य वस्तुसे मूल्यांकन हो सके ऐसी यह वस्तु ही नहीं है। ११५२.

❁ श्रोता :—तत्त्वका श्रवण–मनन करने पर भी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेव :–वास्तवमें अंतरसे रागके दुःखकी थकान नहीं लगी है, इसलिये उसे

www.vitragvani.com

विश्रामस्थल–शान्तिका स्थान नहीं मिलता है। जिसे वास्तवमें अंतरसे दुःखकी थकान लगे उसे अंतर्मुख होनेपर विश्रामस्थल मिल जाता है। सत्यकी खोज करनेवालेको सत्यकी प्राप्ति न हो ऐसा नहीं होता। ११५३.

❁ दूसरोंके साथ लड़ना, जीतना और बेचारे दूसरोंको अपमानित करना वह तो कायरका काम है; आत्मामें उतरना वह शूरवीरता है। ११५४.

❁ कहीं विरोध जैसा हो वहाँ नहीं जाना चाहिये और कदाचित् जाना पड़े तो मौन रहना चाहिये। यह अंतरका मार्ग तो ऐसा है कि सहन कर लेना चाहिये। विरोधमें नहीं पड़ना। अपना गुड़ स्वयं चोरीसे अर्थात् गुप्तरूपसे खा लेना चाहिये, विवाद करने जैसा काल नहीं है; अपना सम्हाल लेना ही उचित है, वाद–विवादमें उतरने जैसा नहीं है। ११५५.

❁ अज्ञानीकी भूल हो तो उसे जान लेना, परन्तु उसका तिरस्कार नहीं करना। वह भी भगवान आत्मा है न! वे बेचारे अज्ञानसे दुःखी हैं; जो दुःखमें झुल रहे हों उनका तिरस्कार करना वह धर्मीका काम नहीं है। ११५६.

❁ ....पात्र होना कठिन है। बातें करना सीख गया इसलिये मैं समझ गया ऐसा माने तो वह ठीक नहीं। यह तो भाई! समझना बहुत कठिन है। कितनी पात्रता ....कितनी सज्जनता....कितनी योग्यता हो तब वह समझनेके योग्य होता है। ११५७.

❁ अहो! सर्व जीव वीतरागमूर्ति हैं। जैसे हो वैसे बनो। दूसरोंको मारना तो कहीं रह गया, दूसरोंका तिरस्कार करना वह भी कहीं रह गया, परन्तु सर्व जीव सुखी होओ; हमारी निन्दा करके भी सुखी होओ, हम जैसे हैं वैसा जानकर भी सुखी होओ, चाहे जैसे सुखी होओ!....प्रभुका प्रेम तो लाओ भाई!....तुम्हें सुखी होना है न! ११५८.

❁ श्रोता :—आत्माके भिन्न-भिन्न गुण तो ख्यालमें आते हैं, परन्तु अभेद ख्यालमें क्यों नहीं आता?

पूज्य गुरुदेव :—स्वयं ख्यालमें नहीं लेता इसलिये ख्यालमें नहीं आता, अभेदको ख्यालमें लेना वह तो अन्तिमसे अन्तिम स्थिति है। निर्विकल्प हो तब अभेद आत्मा ख्यालमें आता है।

श्रोता :–उसे ख्यालमें लेना कठिन लगता है!

पूज्य गुरुदेव :–धीरे....धीरे....प्रयत्न करना। अटकने या उलझने जैसा नहीं है।

www.vitragvani.com

अनुभवमें आ सके ऐसा है इसलिये धी...रे...धी...रे प्रयास करना, अटकना नहीं, हो सके ऐसा है। ऐसे समयमें ऐसी ऊँची बात सुननेको मिली यह कोई कम है! ११५९.

❀ श्रोता :—रुचि हो और यहाँ सम्यग्दर्शन न हो तो दूसरे भवमें सम्यग्दर्शन हो–ऐसा कुछ है क्या?

पूज्य गुरुदेव :—रुचि हो उसे होगा ही....होगा ही....होगा...होगा...और होगा ही। यथार्थ रुचि और लक्ष हो उसे सम्यग्दर्शन न हो ऐसा तीनकालमें नहीं हो सकता। वीर्यमें हीनता–हतोत्साह नहीं होना चाहिये। वीर्यमें उत्साह–निःशंकता आना चाहिये, कार्य होगा ही ऐसा लगना चाहिये। ११६०.

❀ श्री समयसारमें कहा है कि–मैं पर जीवको सुखी–दुःखी कर सकता हूँ यह मान्यता महा मिथ्यात्व है। सब अपने पूर्व कर्मोंके उदय अनुसार आयु एवं संयोग लेकर आते हैं; उनमें अन्य कोई जीव फेरफार नहीं कर सकता। बृहद् सामायिक पाठमें आता है कि जब मरण आता है तब वैद्य, ब्राह्मण, स्त्री, पुत्र, माता, नौकर–चाकर या इन्द्रादि कोई भी बचा नहीं सकता। एक मात्र अपना आत्मा ही शरणभूत है–ऐसा विचार करके सज्ञनोंको आत्मिक कार्य करनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। ऐसा मनुष्य-शरीर, पाँच इन्द्रियाँ और जैनधर्म मिलने पर भी आत्महितके कार्यमें विलम्ब नहीं करना। आज ही करना। अमृतचन्द्र आचार्यदेव श्री प्रवचनसारमें कहते हैं कि आज ही अपना हित साध ले, विलम्ब न कर! ११६१.

* * *

❀ अध्यात्मग्रंथका आशय यह है जो आत्मा अपना एक अभेद नित्य शुद्ध असाधारण चैतन्यमात्र शुद्धद्रव्यार्थिकनयका विषयभूत है, सो तो उपादेय है। बहुरि अवशेष भेद पर्याय अनित्य अशुद्ध तथा साधारण गुण तथा अन्य द्रव्य ये सर्व पर्यायनयके विषय ते सर्व हेय है। काहेते? जातैं यह आत्मा अनादितैं कर्मबंधपर्यायमें मग्न है, क्रमरूप ज्ञानतै पर्यायनिकूं ही जाणै है, अनादि अनंत अपना द्रव्यत्वस्वभावका याकै अनुभव नाहीं, तातैं पर्यायमात्रमें आपा जानै है, तातैं ताकूं द्रव्यदृष्टि करावनेके अर्थि पर्यायदृष्टिकूं गौणकरि असत्यार्थ कहिकरि एकांतपक्ष छुडावनेके अर्थि जूठा कह्या है।

(पं. जयचंदजी, सर्वार्थसिद्धि-वचनिका (तत्त्वार्थसूत्र-टीका), अध्याय-१, पृष्ठ-१०४)